RNI No. : 65373/94

अंक 33, अप्रैल 2022- दिसम्बर 2024
संस्थापक : स्वंगला एरतोग, लाहुल-स्पिति में कला व संस्कृति के उत्थान हेतु सोसाईटी।
पंजीकरण संख्या : लस 42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860

सम्पादक
डॉ. छिमे शाशनी

उप-सम्पादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

प्रकाशक
सतीश कुमार

डिज़ाईन/ले आऊट
किशन श्रीमान

सम्पर्क : Website - chandertal.com
ई-मेल : editor.chandrataal@gmail.com

स्वंगला एरतोग सोसईटी (पंजी.) के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा हिमतरु प्रकाशन समिति, कुल्लू से मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश से प्रकाशित।
सम्पादक : डॉ. छिमे शाशनी।

सम्पादन एवं प्रबन्धन
अवैतनिक

चन्द्रताल सहयोग राशि
एक प्रति : रु. 100
वार्षिक शुल्क : रु 350

मुखपृष्ठ शैल चित्र : मुनचि़ तिनो, तोद घाटी, लाहुल, हिमाचल प्रदेश।

पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन हेतु हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा प्रदत्त 'साहित्यिक पत्रिका प्रकाशनार्थ वित्तीय अनुदान' योजनान्तर्गत सहायता ली गई है।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा उनमें सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं। - सम्पादक

इस अंक में

सम्पादकीय 2
कसौटी : एक बड़े सपने का समर्थन - अजेय 4
कविताएं 6
हिम प्रलय, हिमस्खलन से एक पीड़ित की आह - छाया राम
सूना घर - छिमेत
मां मुझ को जन्म लेने दो - अंकुर सिंह
बहू - सतीश बब्बा
सरहदें, इंकलाब - सलिल सरोज
आने वाले कुछ वर्षों में - लाल देवेन्द्र कमार श्रीवास्तव
एक कविता - ईशिता गिरीश
नारी - इन्ट्रोवर्ट कवि

कहानी
जिजीविषा - शेर सिंह 13
क्षेत्रीय दृष्टि : दो बातें गांव के कूंह के बहाने - सतीश कुमार लोप्पा 16
इतिहास
पेट्रोग्लिफ : लाहुल के प्रागैतिहासिक काल का स्रोत - राजेश्वर क्यरपा 17
लाहुल के वीर सिपाही-1948 के लद्दाख के रक्षक - तोबदन 26
लोकगाथा : लाहुल में गुग्गा गाथा... - सतीश कुमार लोप्पा 30
श्रद्धांजलि
हिम शिखरों के सम्राट कर्नल प्रेम चंद - छाया राम 34
अलविदा कर्नल साहब - सतीश कुमार लोप्पा 36
बी.एस. परशीरा... - कुलजीत क्रोफा 40
स्व. प्रो. बनारसी लाल जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व - ठिनले शाशनी 42
एक गुमनाम नायक : कैप्टन प्रेमजीत - धनेश्वरी शर्मा 54
धर्म
शशुर गोनपा में होने वाला छम नृत्य - नवङ नोर्बु कुकुजि 56
त्रिलोक नाथ मंदिर की गाथा - ई. राम नाथ साहनी 59
लोक संस्कृति
गांव केलंग का गोचि़ महोत्सव - नवङ छेरिङ उपासक 64
छेशु दूहछङ/ दरछे़स-मुस्कुन-लेचो़ग कुंस तीरंदाज़ी - ठिनले नमज्ञल शास्त्री 66
बराज़ा - रणवीर शाशनी 71
संस्मरण
वह यात्रा एक जंग से कम नहीं होती थी - लाल चन्द ढिस्सा 78
राजा घेपङ की 1970 की मलाणा यात्रा - प्रेम चन्द कटोच 83
स्वास्थ्य
लाहुल-स्पीति : विशेषज्ञ चिकित्सकों का अकाल - डॉ. जे.पी. नारायण 88
मिलेट्स : एक अनूठी खाद्य सामग्री - टशि छेरिङ ठाकुर 91
पर्यावरण : नदियों पर कारोबार जारी है - गणेश ग़नी 93
रंगमंच : कुल्लू का राज्य स्तरीय नाट्योत्सव - केहर सिंह ठाकुर 96
विविध
साहित्य हमारी आत्मा को झकझोरता है - कमलेश भारतीय 100
लाहुल में 1979 का हिम स्खलन... - छेप राम 103
पर्यावरण तथा पत्रकारिता - किशन श्रीमान 109
भाषा : पटन की भाषा में हिन्दी पहाड़ी शब्द - देवी चन्द ठाकुर 113
समीक्षा
हमें सोचना होगा - ञगः छेरिङ 115
जनचेतना समिति की यात्रा - टशि अंगरूप गड़फा 122
कला : चार्ली हब्दोऊ वरका - सुरिन्दर 'सूरी' 124

संपादकीय

✍ डॉ. छिमे शासनी

ज़िन्दगी गणित की किताब जैसी होती है। किताब की कवर दिखने में कितनी सुन्दर होती है, लेकिन जैसे ही इस को खोलो अंदर प्रोब्लम ही प्रोब्लम। पहली से दूसरी कक्षा- जोड़ करना और घटाना साधारण सी समस्या; पर बालमन तो खेलना चाहता है, मस्ती करना चाहता है। जमा घटाना करने से बचने की जुगत भिड़ाते-भिड़ाते कब हम पलायनवादी बनने की ओर अग्रसर हो जाते हैं, पता ही नहीं चलता। कहते हैं- जीवन संग्राम है; इस जीवन संग्राम का प्रारम्भ तो दुनिया में पहला कदम रखते ही शुरू हो जाता है। लेकिन इस का एहसास आप को तब होने लगता है, जब आप का वास्ता पहली बार घर से बाहर एक अजनबी माहौल से पड़ता है। एक अजीब-सी बेचैनी और अनजान भय से आप घिर जाते हैं। बस यहीं से जीवन संग्राम या यूं कहो संघर्ष आरम्भ हो जाता है।

इस तरह पहले पहल इस एहसास से रू-ब-रू होते हैं कि ज़िन्दगी एक सरल रेखा की तरह नहीं बल्कि गणित की तरह ही इस में जोड़-घटाव, गुणा-भाग और कोण, घन, आयतन, वर्ग जैसी गणितीय समस्याएं भी हैं। हां समीकरण भी होता है। इसी तरह जीवन एक समीकरण ही तो है। इधर जोड़ो तो उधर घटाना पड़ता है यानि चोचो ड्डग्मा की थग्- दिन भर बुनो और रात को उधेड़ो। मतलब बुनते-उधेड़ते ज़िन्दगी की शाम हो जाती है।

उपरोक्त कथन के आलोक में हमारी घाटी की शाश्वत समस्याओं को देखें तो ज्ञात होगा कि समस्याओं से भाग कर नहीं बल्कि उन का समाधान खोज कर ही यहां की निष्ठुर प्रकृति का मुकाबला कर सकते हैं। लाहुल के निवासी जन्मजात परिश्रमी रहे हैं। इसी मेहनत की बदौलत कठिन और अगम्य भौगोलिक परिस्थिति के बावजूद न्यूनाधिक खुशहाल ज़िन्दगी जीते रहे। पहले कुठ, फिर आलू की खेती यहां के निवासियों के लिए वरदान बन कर आया। लाहुलियों में परिस्थिति के अनुसार स्वयं को ढालने और नई सोच को अपनाने की अद्‌भुत क्षमता है, इसी क्षमता के कारण आज मुख्यधारा के साथ चलने में सक्षम हैं। यह सब हुआ हमारे बुजुर्गों की मेहनत और दूरदर्शिता से।

रोहतांग दर्रा हमारी घाटी के लिए एक बड़ा अवरोध और सुरक्षा कवच दोनों ही रहा है। अब रोहतांग को छेद कर अटल सुरंग बना कर लाहुल को देश के अन्य भागों से साल भर जुड़े रह सकने का ज़रिया बन गया है। रोहतांग में सुरंग बनने से जीवन एक ओर आसान हो रहा है, खुशहाली की नयी संभावनाओं के द्वार खुल रहे हैं तो दूसरी ओर घाटी पर सांस्कृतिक दुष्प्रभाव, जो पर्यटन का एक बाईप्रोडक्ट होता है, के खतरे को भी नज़रअन्दाज़ करना एक भूल होगी। साथ ही यहां की नाजुक पारिस्थितकी पर हज़ारों वाहनों के आवक-जावक से जो विपरीत प्रभाव पड़ेगा, उसको भी ध्यान में रखना होगा। आज सम्पूर्ण संसार ग्लोबल वार्मिंग से जूझ रहा है, हमारी घाटी भी इसके दुष्प्रभाव से अछूता नहीं, जगह-जगह बादल फटने की घटना, नदी-नालों में बाढ़ आना यही साबित

करता है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि लाहुल में पीने के पानी की कमी हुई हो, आज कई जगह टैंकरों द्वारा पानी पहुंचाया जा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग की वजह से मौसम में बदलाव इतना भयावह रूप लेगा कि सिंचाई के सभी स्रोत सूख जाएंगे, कृषि प्रधान क्षेत्र में नदी से पानी लिफ्ट कर खेती-बाड़ी करनी पड़ेगी, इस तरह खेती-बाड़ी करना जी का जंजाल बन जाएगी, दूसरी ओर विद्युत परियोजनाएं भी घाटी के अस्तित्व के लिए खतरा बनकर सामने आ रही हैं। जिस से एक अनजाना भय लोगों के दिलो-दिमाग में छाता जा रहा है।

चन्द्रताल का नवीनतम अंक सुधि पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। सदैव की तरह इस अंक में भी पाठकों की रुचि की कविताएं, आलेख, कहानी, रिपोर्ताज़, संस्मरण और लाहुल-स्पीति की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक धरोहरों को प्रतिबिम्बित करते लेख प्रस्तुत किए गए हैं।

इस अंक में विभिन्न कवियों की कविताओं की पुष्पगुच्छ के साथ श्री शेरसिंह की कहानी 'जिजीविषा' है तो श्री सतीश लोप्पा की लोक गाथा 'अंचे़ला-बंचे़ला' का सुस्वादु छोंक भी है। लाहुल के देशभक्त रणवांकुरों के अदम्य साहस और अद्भुत वीरता का श्री तोवदन द्वारा प्रस्तुत आलेख समस्त लाहुलियों को गर्व से भरने की क्षमता रखता है। श्री राजेश क्यरपा का पट्रोग्लिफ पर लेख लाहुल के प्रागैतिहासिक अतीत को खंगालने की दिशा में किया गया एक अनूठा प्रयास है।

श्री रामनाथ साहनी का लेख त्रिलोकनाथ मन्दिर की गाथा में मन्दिर के माहात्म्य और उस से सम्बन्धित इतिहास में झांकने का प्रयास है। श्री लाल चन्द ढिस्सा जी ने अपने संस्मरण द्वारा आजीविका के लिए संघर्षरत जीवन यात्रा का मार्मिक वर्णन किया है। स्व. श्री नवङ नोर्बु कुकुजी ने छम नृत्य के माध्यम से छम में आध्यात्मिक निहितार्थ को उद्घाटित किया है। लोक संस्कृति का जहां तक प्रश्न है- बराज़ा, छेशु, दछङ/दरचे़स-मुस्कुन लेचो़ग कुंस, गोचि़ जैसे लेखों द्वारा लेखक लोक संस्कृति का परिचय कराते हुए स्पष्ट करते हैं कि विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाज़, लोक परम्पराएं और उन से सम्बद्ध विभिन्न सांस्कृतिक आयोजनों का क्या निहितार्थ और प्रयोजन है।

कंचनजंगा विजय के नायक स्व. कर्नल प्रेम चंद को श्री छायाराम और श्री सतीश लोप्पा ने उनके अदम्य साहस एवं शौर्य, जीवट, प्रकृति और उपलब्धियों का वर्णन कर श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं।

अन्य रचनाएं जिन से यह अंक समृद्ध हुआ है, उनमें राजा घेपन की 1970 में मलाणा की यात्रा, छह महीने तक देश के अन्य क्षेत्रों से कटे रहने की पीड़ा और दुष्कर परिस्थितियों का सामना करते हुए कैसे लाहुल वासी निष्ठुर और बेरहम वातावरण में स्वयं को ढाल लेते हैं, का अत्यन्त रोचक और मर्मस्पर्शी वर्णन बरबस दिल को छू लेता है। इसी कठोर और कठिन परिस्थिति में लाहुलवासियों को अस्पताल और विशेषज्ञ डाक्टरों की कमी पर डॉ. जे. पी. नारायण ने प्रकाश डाला है। तो श्री गणेश गनी ने नदियों के जल के विचार शून्य दोहन को रेखांकित कर पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव की ओर इंगित किया है। आजकल मिलेट्स पर पूरे विश्व का ध्यान केन्द्रित है। इस सम्बंध में श्री टशी छेरिंग का लेख प्रासांगिक और उल्लेखनीय है। वहीं श्री छेप राम ने 1979 में हिमस्खलन से हुई त्रासदी का मार्मिक वर्णन कर प्रकृति के रौद्र रूप के समक्ष मानव की विवशता को अंकित किया है।

चंद्रताल परिवार इन सभी दिवंगत आत्माओं को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

– **संपादक**

एक बड़े सपने का समर्थन

✍ अजेय

पिछले कुछ वर्षों से हिमाचल में एक जन आन्दोलन तेज़ी से ज़ोर पकड़ रहा है- नो मीन्ज़ नो। इस आन्दोलन की जन्म भूमि है किन्नौर। मुद्दा है भीतरी हिमालय में मेगा जल विद्युत परियोजनाओं का विरोध। केन्द्रीय सन्दर्भ बिन्दु है प्रस्तावित जंगी ठोपन परियोजना और अन्य फुटकर प्रोजेक्ट। इस आन्दोलन की गूँज कभी कभार लाहुल स्पीति तक सुनाई दे जाती है। एक सूचना के अनुसार चिनाब बेसिन में लगातार एक के बाद एक कुल तीस के आस पास मेगा प्रोजेक्ट पाईप लाईन में हैं और जिस्पा तथा सैली परियोजना के अनुमोदन संबंधी समस्त सरकारी औपचारिकताएं लगभग पूरी हो चुकी हैं। उस के बाद तान्दी प्रोजेक्ट को प्राथमिकता पर लेते हुए उस पर काम होना प्रस्तावित है। आज्ञाकारी विकासवादियों की दलील है कि सरकार जब करने पर आती है तो कर के ही छोड़ती है। तर्क वाजिब है। लेकिन यह भी तो एक तर्क है कि जनता यदि विरोध ही न करे तो सरकार ने तो करना ही है!

पर्यावरण हितैषी विकास... क्या यह सम्भव है?

हम ठीक ठीक नहीं जानते। शायद सम्भव हो, शायद न हो! हम ने चन्द्रताल में इस पर बहसें की हैं, और सोशल मीडिया में भी। विभिन्न संगठनों ने छोटे बड़े हर तरह के सेमिनार आयोजित किए। लेकिन दशकों पुरानी इस बहस में से कुछ खास निकल कर के सामने नहीं आया। हम कुछ जान पाने की बजाय और बहस में अधिक उलझते ही गए। और न जान पाने का कारण बहुत महत्वपूर्ण है। हम तथा कथित 'विकास' का लोभ सम्वरण नहीं कर पा रहे।

बड़ा सवाल यह है कि पारिस्थितिकीय विमर्श का असल हितधारक कौन है? हमारे इस भूगोल का यह पूरा इकोसिस्टम... आदिवास। पहाड़। देहात। नदी नाले। खोह डूँगर। मौजूदा व्यवस्था के आखिरी पायदान पर खड़ा अस्तित्व के लिए संघर्षरत किसान मज़दूर। या कि जीव वनस्पति। मिट्टी खनिज पानी... या कि अन्य जीवनोपयोगी संसाधन? शायद इन में से कोई नहीं। ये सब तो इस विमर्श की जनानुकूलित प्रतीतियाँ हैं। इस सब की आड़ में यह संसाधनों पर कब्ज़ा करने और उन के दोहन की लड़ाई है। पर्यावरण चूँकि एक वैश्विक मुद्दा है और इस के असल हितधारक विश्व के दिग्गज पूँजीपति और बड़े कारपोरेट हैं। जिन के समर्थन में विश्व के सब से शक्तिशाली राष्ट्र हैं, हमारी समूची सत्ता संरचना है। वह सत्ता संरचना जो औसत से अधिक सुविधासम्पन्न, तेज़ तर्रार मनुष्यों की कुछ सुसंगठित टोलियों द्वारा संचालित है। हैं तो वे मनुष्य ही और निश्चय ही इस इकोसिस्टम का ही अविभाज्य अंग भी, पर वे आम इन्सान से कहीं ज़्यादा शातिर और कहीं ज़्यादा बुद्धिमान हैं। वे शहर और उद्योग और ऊर्जा बनाते हैं। हाईवे, रेलवे, हवाई पट्टियाँ, जहाज़रानी, नौभार, माल गोदाम, बाज़ार और पैसा बनाते हैं। नहरें और सुरंगें बनाते हैं। हथियार और युद्ध बनाते हैं। और उन्हें बेचते हैं। ये वे वणिक बुद्धि सम्पन्न मनुष्य हैं दुर्भाग्यवश जिन की सम्वेदनाएं और मानवीय ग्रहणशीलता अपने निजी मुनाफे के मद्देनज़र कुछ कुछ समय के लिए बेहद भोथरी और कुन्द हो जातीं हैं। लगभग अमानवीय।

इस विमर्श के आरम्भ में ही उस ताकतवर और शातिर सत्ता तंत्र ने कुछ ऐसी गुंझलदार पारिभाषिक शब्दावलियाँ, कुछ ऐसे पेचीदा नियम कानून, विकास के कुछ ऐसे युटोपियन नेरेटिव गढ़ दिए हैं कि आम जन की तमाम बौद्धिकता और सूझ बूझ उस

पारिभाषिक गुत्थी से बाहिर नहीं निकल पाई। सस्टेनेबल आर्थिकी, सस्टेनेबल पारिस्थितिकी, सस्टेनेबल इकोसिस्टम, ग्रीन हाऊस, ग्लोबल वार्मिंग, CO_2 ओज़ोन छिद्र, कार्बन इमिशन, कार्बनफुटप्रिंट, कार्बन न्यूट्रल, रिन्युएबल एनर्जी, ग्लेशियल रिसेशन, क्लाईमेट चेंज, केरीईंग केपेसिटी, एंवायरन्मेंटल इम्पेक्ट असेसमेंट...!

कुदरत बनाम इन्सान। इंसान बनाम मशीन। लोक बनाम सरकार। जनहित बनाम राष्ट्रहित। इनसानी कृत्य बनाम ईश्वरीय कृत्य। संसाधन बनाम पैसा। दोहन बनाम संरक्षण। अनुकूलन बनाम निवारण। ग्रोथ बनाम डिवलपमेंट। भविष्य का दायित्व बनाम वर्तमान की उत्तरजीविता... इस बहस का अंत नहीं है। इस बौद्धिक जुगाली का कोई ओर छोर नहीं है!

आम समझ के साथ इधर बड़ा अत्याचार हुआ है। वह इस आरोपित द्वैत की अंतहीन दुविधा के वशीभूत हो गई है। वह एक बड़ा ही सामान्य सा नुक्ता या सिरा नहीं पकड़ पा रही है जो इस भँवर से बाहर जा कर इसे बाहर से देखने में मदद कर सकता है। लोकवार्ता में ईश्वर को यूँ समझाया गया है... हाथी को मण और चींटी को कण पूरने वाला। अर्थात् यह ऋत है। यहाँ सब कुछ के लिए सब कुछ का प्रावधान है। चौरासी लाख प्रजातियों में से केवल इनसान में क्यों ऐसा असुरक्षा भाव ऐसा लालच आ गया है? विडम्बना यह कि सब से अधिक डर उसे अपने ही सजातीय से है! दूसरे शब्दों में यह विकसित मनुष्यता की वह पीढ़ी है जो स्वयं अपने ही वजूद से भयभीत है।

समय आ गया है कि बजाय इन पारिभाषिक शब्दावलियों और मिस लीडिंग थिअरियों में उलझने के हम सीधे सीधे 'नो मीन्ज़ नो' कहने का साहस करें। हाल ही में सम्पन्न विधान सभा उप-चुनाव की केम्पेनिंग के दौरान कुल्लू के विधायक सुंदर सिंह ठाकुर ने साफ शब्दों में इस आन्दोलन के महत्व को स्वीकारते हुए इसे समर्थन दिया। इस उप चुनाव में हमारी युवा विधायक अनुराधा राणा ने खुल कर पर्यावरण, सस्टेनेबल पर्यटन, जल संकट, आदि के साथ साथ वंचित वर्गों के सामुदायिक अधिकारों के मुद्दों पर वोट लिए और विजयी भी हुईं। खुशखबरी यह है कि तमाम तरह की चुनावी अफवाहों और अभद्रताओं के बीचोंबीच लाहुल स्पीति के वोटर ने इस अधुनातन वैचारिक तेवर को मेनडेट दिया। हम अभी से नहीं कह सकते कि इन मुद्दों में से कितनों को अमली जामा पहनाया जा सकेगा और कितना कुछ महज़ चुनावी जुमला बन कर रह जाएगा! लेकिन इन ताज़ा व युवा आवाज़ों का समर्थन कर के इन्हें भीतरी मज़बूती प्रदान करना और इन नारों को एक्शन में ट्राँस्लेट करवाना हम पढ़ने लिखने वालों का कर्तव्य है। हम ने इस वर्ष 17 मार्च को ढालपुर तथा क्वारिंग में सेव लाहुल स्पीति के बेनर तले सोनम वङ्चुक के 'क्लाईमेट फास्ट' के समर्थन में एक दिन का प्रतीकात्मक अनशन रखा था। जिस में लाहुल और कुल्लू के कवि कलाकार पत्रकार सहित स्कूल कॉलेज के छात्रों और सेवानिवृत्त कार्यरत कर्मचारी अधिकारियों तक ने खूब मन से हिस्सा लिया। हम ने इस में स्पष्ट संकल्प लिया कि यह कोई हीरो वर्शिप नहीं है और न ही इस का लद्दाख की स्थानीय राजनीति से कोई लेना देना है। साफ तौर पर यह एक ऐसे बड़े और वैश्विक स्वप्न का समर्थन था जिसे देख पाना हर किसी के बस की बात नहीं थी।

सरकारों ने आर्थिकी को सुदृढ़ बनाने के लिए स्पेशल इकॉनमिक ज़ोन चिन्हित किए हैं। क्या इसी तर्ज़ पर पारिस्थितिकी को सुदृढ़ करने के लिए स्पेशल इकोलॉजिकल ज़ोन चिन्हित नहीं किए जा सकते? क्यों न मानवता के बेहतर भविष्य के लिए कुछ ऐसे छोटे-छोटे स्पेस सुरक्षित रखे जाएं.. नन्हे इको शेल्टर्ज़; जहाँ जा कर के भविष्य का मनुष्य ज़रूरी मिक़दार में ऑक्सीजन ले सके। साँस भर हवा। घूँट भर पानी। मुट्ठी भर मिट्टी, आँचल भर छाँव! और फिर बजाय छोटे छोटे स्पेसेज़ के, क्यों नहीं वह जगह पहले से उपलब्ध कोई बड़ा इको ज़ोन, कोई बृहत्तर भूखण्ड हो सकता, मसलन दक्षिण एशिया में हिमालय... जहाँ अभी भी बहुत कुछ बचा हुआ है। सम्वेदना, करुणा, संसाधन, प्रज्ञान और नीयत भी! विश्व की तमाम सरकारों को मिल कर इस बारे विचार करना चाहिए। ■

सम्पर्क :
मो. : 8219782422

कविताएं

✍ छाया राम

1. हिम प्रलय

हर दिशा में जम रही हिम राशि तेरी धाक है।
रजत परत ज्यूं दिख रही बसुंधरा की खाक है।
हिम रमणी कहूं या कहूं जीवन रूपणी तुझे।
असमंजस में हूं, या कहूं सर्वभक्षिणी तुझे।।
जल रूप मोहक और पोषक अतिसुंदर सुखद है।
लाहुल में हिम-स्खलन होता सदा सत्यानाशी।
यों हिम प्रलय से आतंकित हुआ मार्च उन्नासी
घर एक नहीं दो नहीं मनुष्य दो चार लिए।
गांव अनेक उजाड़ दिए यों सैकड़ों प्राण लिए।।
गाड़ंग, वारिंग, यंगलिंग, गांलिग सब नष्ट हुए।
यूरनाथ, गुमलिंग और हिन्दसा ने अति कष्ट सहे।

2. हिमस्खलन से एक पीड़ित की आह!

वह एकाकी था कुछ सोच रहा,
था दृश्य भयावह वह देख रहा।।
हिमाघात को मौन वह झेल रहा,
यों उर का भार था ठेल रहा।
हिम खण्डों में वह क्या ढूंढ रहा?
खंडहरों में वह क्या खोज रहा?
हाः टुकर-टुकर वह क्या ताक रहा?
और विकल हो वह क्या देख रहा
हाय मां की ममता वह खोज रहा।
आह बाल वत्सल वह ताक रहा।
हां पितृ स्नेह को वह ढूंढ रहा
हंत! प्रणय सुख को वह देख रहा।
स्तन को मुख में था डाले बेटा।
मां का अभिरस पीते लेटा
यों मां-बेटे को मरते-मरते।
हाय दृश्य करूण वह देख रहा।
सन्तान को निर्दय! हरण किया।
हा हा कुल का दीप बुझा दिया।
आह! निर्मम वंश का यूं नाश किया।
यों... कुल हो वह प्रलाप उठा।
आह! बहन को बरबस छीन लिया।
और भाई को बरबस खींच लिया।
हो! अश्रुधार से मैं सींच गया।
यों शोकाकुल हो वह अलाप उठा।
हाए अर्धांगी को भी ग्रास लिया।
ओह! निष्ठुर असह्य त्रास दिया।
था स्वप्न में भी न यह आस किया।
यों ... हो वह चीख उठा।
कहां गई... मेरी प्यारी कुटिया।
हंसती गाती थी जीवन बगिया।।
हाए खिलते हुए सुमन दबोच लिया।
सुनसान खण्डहर कह वह कांप उठा।।
हा हा! निर्मम र्स्वस्व खंड किया।
हा! हिखण्ड को प्रचण्ड किया।।
हा! निर्दोष को असह्य दण्ड दिया।
यों पीड़क को था वह कोस रहा।।

सम्पर्क : गुरुबेहड़ (सरवरी होटल के नज़दीक), कुल्लू।
मो. : 8627016917

✍ छिमेत

सूना घर

कल तक जहां मेरी आत्मा बसती थी,
मेरी मां, जिनकी छाया में, मैं रहता था
अपने को हर जगह सुरक्षित महसूसता था
उनके स्नेह युक्त आंचल को याद कर
ज़िन्दगी कुछ व्यवस्थित, कुछ अव्यवस्थित थी
फिर भी एक डोर-सी बांधे रही थी मुझे
अब जब भी घर जाता हूं तो दीवारें
चीखती सी मालूम पड़ती है, छतें घूरने लगती हैं
और पूछती हैं, क्यों आए हो? क्या है यहां तुम्हारा?
अपने को संयत करने का निष्फल सा प्रयास करता हूं
मगर आंसू निकल ही आते हैं
इधर-उधर बिखरे पड़े सामान रोते से दिखते हैं
इनके बीच जगह बना, जल्द से गुज़र जाना चाहता हूं
पर यूं लगता है जैसे चीज़ें कह रही हों
या तो हमें सहेजो-संवारो और अगर नहीं है हिम्मत
तो दोबारा यहां कभी मत आना
तुम अपने साथ हमें भी उदास कर जाते हो
मैं घबरा कर तुरंत बाहर लपकता हूं
महसूस करता हूं कि ज़िन्दगी अब
अव्यवस्थित ही नहीं अस्त-व्यस्त हो कर रह गई है
इंतज़ार कर रहा है तो सिर्फ एक 'सूना घर'।

सम्पर्क : काज़ा, हिमाचल प्रदेश।
मो. : 9418753315

✍ अंकुर सिंह

मां मुझको जन्म लेने दो

मां मुझको जन्म लेने दो,
खुली हवा में जीने दो।
भ्रूण हत्या से बचा मुझे,
गर्भ के बाहर आने दो।।
कल्पना बन अंतरिक्ष को जाऊंगी,
प्रतिभा ताई बन देश चलाऊंगी।
मुझे कोख में मत मार मां,
मैं बापू की पहचान बनाऊंगी।।
भैया संग स्कूल जाऊंगी,
घर के कामों में हाथ बटाऊंगी।
घर के आँगन में चहकने वाली मैं,
दुल्हन लिबास ओढ़े ससुराल जाऊंगी।।
दो परिवारों का सम्मान है बेटी,
मुझको भी अच्छी शिक्षा देना।
ज़माना क्या कहता, परवाह नहीं,
मुझे बस तेरी ममता तले है रहना।।
मत मारो मुझको मां,
दो जीने का अधिकार।
तुम भी तो एक बेटी हो
जन्म दे मुझे कर उपकार।।
मां मुझे आज जन्म लेने दो,
अपने सपने को मुझे छू लेने दो।।
चलूंगी तेरे पद चिन्हों पर,
बस! मुझे आज जन्म ले लेने दो।।

सम्पर्क : हरदासीपुर, चंदवक, जौनपुर, उ.प्र.-222129
मोबाइल : 8367782654, व्हाट्सएप : 8792257267
ईमेल : ankur3ab@gmail-com

✍ सतीश 'बब्बा'

बहू

जबसे आई तू मेरे आँगन,
महक गया मेरा घर-आँगन,
तेरे आने की खुशियों से मन,
चहक उठा हमारा तन-मन!

बिटिया थी बचपन एक थाती,
चली गई हमें रोता छोड़ वह,
अब हम बंद कर दिए संझबाती,
तेरा आना, धन लक्ष्मी कहाती!

जन्मी बेटी थी पापा की बेटी,
तू बहू है दान की बेटी,
कितनी सुंदर, कितनी पावन,
तू देगी हमको पोता-पोती!

जीवन भर खुशियाँ देगी,
घर आबाद रहेगा मेरा,
तू मंगल गीत गाएगी,
बुढ़ापे की लाठी तू ही बनेगी!

बहू हमारी पिण्डदान करेगी,
चिता में मुखाग्नि दे सकेगी,
नहीं रहेंगे तब भी हर साल श्राद्ध करेगी,
बहू है बेटी से बढ़कर, पतवार बनेगी!!

सम्पर्क : सतीश चन्द्र मिश्र, ग्राम. पोस्ट- कोबरा, ज़िला - चित्रकूट, उत्तर प्रदेश, पिन-210208
मोबाइल : 9451048508, 9369255051
ई.मेल : babbasateesh@gmail-com

✍ सलिल सरोज

एक : सरहदें

आज सरहद पे जहाँ लकीरें हैं
वहाँ कभी कोई घर होगा
चाँदनी में नहाई हुई शाम होगी
रोशनी में भीगा हुआ सहर होगा

आती-जाती हवाओं में नमी होगी
पगडण्डियों पे कदमों का सफर होगा
कितनी ही मंज़िलें तय की गई होंगी
जिनमें हज़ारों किस्सों का बसर होगा

खेत-खलिहान होंगे, चौक-चौबारे और दुकान होंगे
ज़िंदगी हँसती होगी, राज़ी-खुशी गुज़र होगा
मेले-ठेले होंगे, जिनमें छैल-छबीले होंगे
फिज़ा में घुली मोहब्बत का दिलों में असर होगा

नदियों में जवानियाँ तैरती होगी
कोई राधा होगी, कोई मनहर होगा
इश्क की कितनी इबारतें लिखी गई होगी
अश्कों में भीगा हुआ कितना पहर होगा

आरतियाँ होती होगी, नमाज़ें अदा हुई होंगी
ईश्वर के रूप में राम तो खुदा की शक्ल में कोई अज़हर होगा
इंसान ही नहीं, भगवान् तक बिछड़ गए
ना जाने वो कैसा भयानक समर होगा

सिर्फ ज़मीनें ही तो नहीं बँटी होगी

कहीं कोई माँ बँटी होगी, कहीं कोई चाक जिगर होगा
कितने ही चूल्हे बुझ गए होंगे
बिखरा हुआ आँगन ना जाने किधर-किधर होगा

कुएँ से पानी नहीं, खून पीया होगा
सूखी आँखों में आँसुओं का समन्दर होगा
कितनी बच्चियों की अस्मत लुटी होगी
कितना खौफज़दा वो मंज़र होगा

जिन में कभी किताब, कभी गुलाब रहा होगा
उन हाथों में लाश तलाशता खंजर होगा
जहाँ कभी दोस्ती होगी, भाईचारे का चमन होगा
वहाँ इंसानियत का सूखा शजर होगा

वो अकेली, डरी-सहमी ज़मीं अपनों को तलाशती तो होगी
बिछड़े हुए अपनों का चेहरा तो नज़र में होगा
ये गूँगी ज़मीं कहाँ गुहार लगाएगी
कौन सुनेगा और किस पर कितना असर होगा

क्या कसूर था मेरा कि मुझे इस तरह
इतिहास में दफ्न किया गया
मेरे सीने पे मेरे ना होने का बोझ कब तलक इधर होगा
अब इस तरह से और जिया जाता नहीं
मैं बेबा हूँ, मैं अनाथ हूँ, मेरा इंतकाल अब और किस कदर होगा?

दो : इंकलाब

गरीब जब वाजिब सवाल करता है
हुक्मरानों का जीना मुहाल करता है

राज़ दफ्न हैं कई, हर चौक-चौराहे पे
कौन है यहाँ जो जाँच-पड़ताल करता है

बात आ पहुँची है जाति, धर्म, बिरादरी पे
रोटी ना मिलने पे कौन बवाल करता है

शासन उसी का ज़िंदा और महफूज़ है
जो कभी कश्मीर कभी बंगाल करता है

खून से सनी दोपहर ही आएगी हिस्से में
मेरे दोस्त, क्यूँ हर सुबह इंकलाब करता है

अब के खुशहाली हर घर तक आएगी
और ये वायदा वो हर साल करता है।

सम्पर्क : समिति अधिकारी, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली।

✍ लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

आने वाले कुछ वर्षों में...

वर्षों से शहर में रहते हुए भी
मेरा गाँव से रहता जुड़ाव है
अक्सर गाँव आता-जाता रहता हूँ
इसीलिए अपने गाँव से लगाव है
बच्चों के ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन छुट्टियों में
कुछ दिन गाँव जाकर परिवार संग रुकता हूँ
अपने खेत, खलिहान और बाग आदि देखता हूँ
उनसे मन की बातें करता हूँ, उनकी बातें सुनता हूँ...

अब आम का वो बाग नहीं रहा
जिस पर सिंदूरी, लोढ़वा और कई तरह के आम
बचपन में हम लोगों को खाने को मिलते थे
आम के पेड़ों पर हम झटपट चढ़ जाते थे
जेठ की दुपहरी में जब पके हुए आम
डालियों से गिरते थे
उसे पाने को हम लोग तेज़ी से लपकते थे
आंधी आने पर ढेरों आम पेड़ों से गिर पड़ते थे
उसे पाने के लिए झगड़ा भी किया करते थे
अब उस आम के बाग के सारे पेड़ कट कर
खेतों के रूप में बदल गए हैं...

अब मेरे गाँव की गलियाँ पिच हो गई हैं
विकास की किरणें अब गाँव में दिख रही हैं
लालटेन और ढिबरी तो अब जैसे गुम हो गई हैं
दूधिया रोशनी में अब गाँव भी जगमगा रहे हैं
चौराहों पर अच्छी दुकानें खुलते जा रहे हैं
गाँव के बूढ़े-बुजुर्ग-हमउम्र तो पहचानते हैं
पर गाँव में नई पीढ़ी के बच्चे
मुझे अपने गाँव का नहीं मानते हैं
आने वाले कुछ वर्षों में मेरे बच्चे और गाँव के बच्चे
एक दूसरे को नहीं पहचान पाएँगे
इक दूजे को नहीं जान पाएँगे
कि दोनों का गाँव एक है...

अब तो बच्चे गाँव से निकलकर
शहरों-महानगरों से होते हुए विदेशों की राह
पकड़ कर वहीं बस जा रहे हैं
आने वाले समय में
शायद हमारे बच्चों के बच्चे
अपने गाँव को ढूढ़ने और जानने के लिए
गूगल का सहारा लेंगे
ये हमारे पूर्वजों का गाँव है
वे अपने बच्चों से कहेंगे...

सम्पर्क : ग्राम-कैतहा, पोस्ट-भवानीपुर,
ज़िला-बस्ती 272124 (उ.प्र.)
मोबाइल : 7355309428

✍ ईशिता आर. गिरीश

एक कविता

एक कविता ऐसी हो,
जो
सोख पाये
उन पीड़ाओं को,
जो
पीढ़ी दर पीढ़ी
मिलती हैं-
हवाई हमलों, या फिर
गैस के रिसाव की
विरासत की तरह।

इस समय जब
बेगुनाह, अपंग बच्चों की सी
अपंग मानसिकता
फैल रही है-
टेलीविजन पर बिखरे ठण्डे ज़हर
के आसपास
खेलते बच्चों में!

लौटा पाये
गुनगुने प्रेम की चादर,
एक कविता!

कविता,
जिसमें हो इतना प्रेम,
कि बस छलक ही जाये!
इतने बलशाली हों उसके पंख
कि बच्चे उड़ पायें, दूर तक,
तोड़ लायें सपने!

कविता, जो हो
बच्चों की खिलखिलाती हँसी की तरह!
जो तितलियों की तरह,
छोड़ देती हो
मुस्कुराहट चेहरे पर,
पहाड़ी झरने सी
उमड़ उमड़
निकल आती हो- कविता,
प्रेम की
न छिप पाने वाली
खिलंदड़- जंगली
अभिव्यक्ति के जैसी!

कुछ हो ऐसा,
कि वह फैल जाये,
एकदम!
एक संक्रमण की ही तरह!
एक भी-
कोई एक भी
अछूता न रहे!
हैरान हो कर देखते रहें हम।

हर कोई
नहाये,
डुबकियाँ भर भर ,
कविता से सराबोर!
और बस,
केवल प्यार कर पाये,
और कुछ भी नहीं!

संपर्क : हाऊस नं. 105, शास्त्री नगर, कुल्लू
मो. 9816970519

नारी

भीड़ का हिस्सा बन के
मौके का फायदा उठाया
उसने नारी के तन को अपनी जागीर समझ
अपनी हैवानियत का नमूना दिखाया

नारी को देवी, मां, बेटी, बहू का रूप मानते हैं
और कुछ गलत होने पर उन्हें ही कारण मानते हैं
बेटी के कपड़ो से उसके संस्कारों को मापते हैं
ये हर दूसरे दिन एक बेटी को कूड़े में फैंक आते हैं

बोझ नहीं है वो इस पुरुष प्रधान समाज पर
तुम समझते क्यूं नहीं हो अपने घर की लक्ष्मी पर
मिट्टी का तेल छिड़कते क्यूं हो
जल कर भी वो तुम्हारा घर रोशन कर जाती है
अपने बलिदानों से वो नारी कहलाती है।

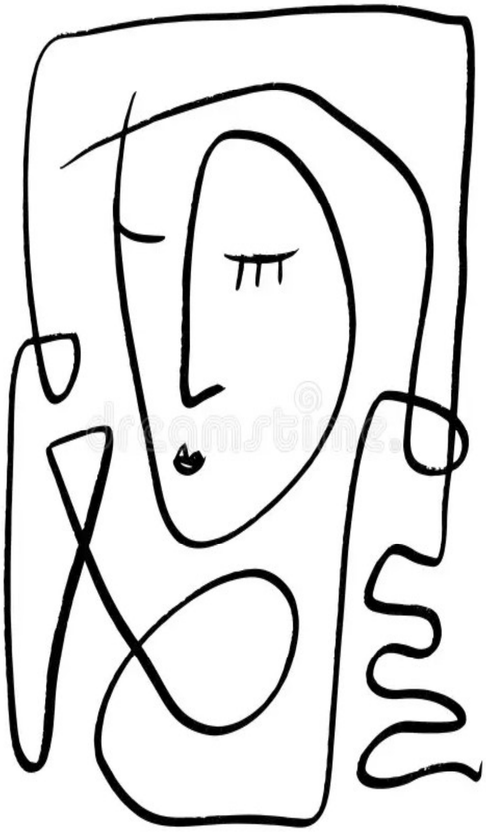

Introvert_कवि

चन्द्रताल की विज्ञापन दरें :

आवरण (रंगीन):		*अन्य (श्वेत श्याम):*	
बैक कवर 280x210mm	: रु 15000	पूर्ण पृष्ठ 210x280mm	: रु 5000
भीतर कवर पृष्ठ 1 280x210mm	: रु 12000	अर्ध पृष्ठ 140x210mm	: रु 3000
भीतर कवर पृष्ठ 2 280x210mm	: रु 10000	चौथाई पृष्ठ 105x140mm	: रु 1000
		प्रायोजन	: रु 2500

कहानी

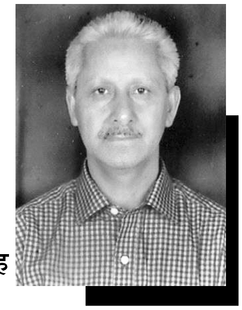

जिजीविषा

✍ शेर सिंह

"राम–राम जी!'' ऊर्मिला को देखते ही उसने अपने दोनों हाथ जोड़ते और तनिक झुकते हुए उसे प्रणाम किया। हाथों को जोड़ते ही हाथों में थामी छड़ियां उसके दोनों हाथों से छूटकर सड़क पर गिर पड़ीं। लाठियां सड़क पर गिरते ही वह लड़खड़ा गया। लेकिन किसी प्रकार से अपने शरीर को संतुलित कर गिरने से बच गया। ऊर्मिला तुरंत उसके पास पहुंची। ''ठिक सा पुन्नुआ?" उसने पूछा।

"हो३ ठिक सा३" जवाब देते हुए पुन्नू सड़क पर हाथों से छूटकर गिर पड़ी छड़ियां उठाने के लिए झुकने ही लगा था कि ऊर्मिला ने उससे पहले ही, उसकी दोनों लाठियां उठाकर उसके हाथों में थमा दी। डंडे हाथों में आते ही पुन्नू उन मोटी छड़ियों पर अपने शरीर का वज़न डालते हुए अपनी झुकी कमर को सीधा करने की कोशिश करने लगा। हालांकि ऊर्मिला उससे उम्र में बड़ी ही थी। परन्तु उसकी तरह शारीरिक रूप से कमज़ोर या दुर्बल नहीं थी। पुन्नू सत्तर से कुछ अधिक का ही था। ऊर्मिला तो पचहत्तर पार की हो चुकी थी। परन्तु अपनी उम्र से कुछ कम ही लगती थी ।

"को थि?" ऊर्मिला ने उसे ध्यान से देखते हुए पूछा।

"परे ग्रां न् नोठा थि३ घोरा वेशणवे नी अथि३" पुन्नू ने कुछ बुझे, उदास मगर अपनी आवाज़ को करुणा से न भरने देने की नाकाम कोशिश करते हुए कहा ।

"घोरा न वेशणा थि न्?" ऊर्मिला ने उसकी बेचारगी, लाचारी को देखते हुए अपने स्वर को यथासंभव नरम, कोमल करते हुए कहा।

"की केरना जी३ घोरा न् बाहर निकलना पोड़ा सा३" पुन्नू ने आह भरकर ऊर्मिला से बिना नज़रें मिलाए एक ओर देखते हुए कहा।

ऊर्मिला ने एक बार फिर उसे ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखा। बूढ़ा, जर्जर शरीर हालांकि उम्र उतनी अधिक भी नहीं थी। झुर्रियों से भरा सूखा चेहरा। चेहरे पर उगी बेतरतीव सफेद दाढ़ी। होठों को ढकते सफेद लंबी मूछे। सिर पर मैली हो चुकी गर्म टोपी। परन्तु टोपी की रंगीन पट्टी बदरंग हो चुकी थी। टोपी माथे तक लटकी–लटकी सी लग रही थी। संभवतः टोपी उसके सिर के आकार से कुछ बड़ी थी। हाथ की उंगलियां मुड़ी, टेढ़ी और गांठों से भरी हुई जैसी। इस समय हाथ की उंगलियां डंडों को जकड़े मुट्ठियों के रूप में आपस में पक्के से जुड़ी थीं। कमर से नीचे तक झूलता सा ऊनी कोट। कोट कोट न लगकर, लबादा सा लग रहा था। कई दिनों का बिना धोया पजामा। पैरों में सस्ते से प्लाकस्टिक–नाईलोन के घिसे हुए जूते। नवंबर–दिसंबर वाला सर्दी का मौसम होने के बावजूद कोई मोजें, जुराबें नहीं।

ऊर्मिला ने उसे एक नज़र ऊपर से नीचे तक देखा। उसके मन में उसके प्रति दया उमड़ पड़ी। पुन्नू उसके पड़ोसी गांव का है। वह उसको तब से जानती है, जब वह युवा था। अब युवक से बूढ़ा हो चुका है। लेकिन पहले भी वह दयनीय लगता था, अब तो उसको देखते ही दिल पसीजने लगता है। पुन्नू वैसे भी विनम्रता, दीनता की मूरत था। वह पहले से ऐसा ही था। अब तो और ज़्यादा लगता है। उसकी सूरत से ही दीनता टपकती थी जैसे। उम्र ने उसे तोड़ कर रख दिया था। उम्र से अधिक आर्थिक तंगी, दद्रिता और मुफलिसी ने उसे अधिक तोड़ा–मरोड़ा है। उसका भी परिवार है। उसकी पत्नी भी उसके जैसी ही हो चुकी है। वह अपनी युवावस्था के दौरान ही अधेड़ लगती थी। शायद जवानी को महसूस करने अथवा कुछ विशेष सोचने, करने का उसे अवसर ही नहीं मिला था। गरीबी और जाति बोध से उपजी मानसिकता ने शायद उससे कभी सिर उठाकर किसी से बात करने, नज़रें मिलाकर देखने का साहस ही छीन लिया था। पुन्नू और पुन्नी, पति–पत्नी। गरीबी और सामाजिक ताना–बाना के बोझ तले हमेशा ही दबे रहे। उनकी अपनी थोड़ी–बहुत बल्कि नाममात्र की खेती–बाड़ी थी। उससे गुज़ारा नहीं होता, तो अपने गांव

अथवा आस–पास के गांवों में लोगों के खेतों, घरों में काम करते। गांव में स्लेट–पत्थरों की छत वाला एक छोटा सा घर था । किसी तरह जीवन यापन कर रहे थे। ज़िंदगी की गाड़ी को भरसक खींचने की जद्दोजहद में लगे ही रहते थे। वह एक हाशिये का आदमी था। उसके होने या नहीं होने से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ने वाला था। उसे अपनी इस स्थिति का पता था। इसलिए वह अपनी गर्दन को अकड़ा कर नहीं, झुकाकर कदम फूंक–फूंक कर रखता था।

उनका एक बेटा है, संजू। पर बेटा उनका जैसा दीन–हीन या याचना करने वाला नहीं था। वह खुद्दार था। जब जवान हुआ, तो उन्होंने उसकी शादी कर दी थी। पुन्नू और पुन्नी अपने बहू–बेटे के साहस, उनके व्यवहार पर अचंभित होते। लेकिन उन्हें नामालूम–सा किसी अनजाने, अप्रिय घटना के घटने, अथवा किसी अनहोनी की आशंका का डर हमेशा ही बना रहता। शायद यह मनोवैज्ञानिक या काल्पनिक भय था, जो उनके अवचेतन मन में कहीं गहरे से बैठा हुआ था लेकिन उनका बेटा तेज़ स्वभाव के साथ–साथ दिलेर और हिम्मती भी था। उसका हाव–भाव कुछ अलग ही था। हमेशा ताव में लगता। उसे अपने मां–बाप की तरह दब्बू बनकर रहना पसंद नहीं था। अपने मां–बाप के ऐसे स्वभाव के कारण वह उनकी दीनता पर खीजता, कुढ़ता था। गुस्सा भी होता था। वह उन्हें सिर उठाकर चलने के लिए कहता। लेकिन वे दोनों अपने स्वभाव तथा ढलती उम्र के कारण अपने विनम्र व्यवहार आचार–विचार को छोड़ नहीं सके थे। बेटा उनकी इन्हीं आदतों, स्वभाव से चिढ़ता–कुढ़ता था।

बेटा संजू जब उन्हें उसके अपने स्वभाव के अनुरूप ढालने में असफल रहने लगा, तो उसने अपने मां–बाप का चूल्हा–चौका अलग कर दिया। अब बेटा अपनी पत्नी के साथ अलग रहता था। अपने तरीके से खाना–पीना करता। मां–बाप अलग से। वह बूढ़े मां–बाप के दायित्व से पल्ला लगभग झाड़ चुका था। परिस्थितियों और लाचारी की मार से त्रस्त, समय से पहले ही बूढ़े हो चुके माता–पिता राशन–पानी के लिए भी अब लोगों के मोहताज होने लगे थे। अपने गांव और आस–पास गांवों के कुछ लोग दयावश उनकी किसी न किसी रूप में सहायता कर लेते थे। गांव–देहात में अब भी कुछ मानवीयता, सहृदयता ज़िंदा थी। जब भी पुन्नू उनके पास जाता, उनके घर पहुंचता, तो खाली हाथ नहीं लौटता था। भटकाव जैसे उसकी ज़िंदगी की नियति थी।

ऊर्मिला दूसरे गांव की थी। वह भी अब बुढ़ापे की दहलीज़ में पहुंच चुकी थी। लेकिन वह सम्पन्न घर की भद्र महिला थी। कुलीन परिवार से होने के बावजूद उसके मन में पुन्नू अथवा उसकी जात –विरादरी वालों के लिए बहुत जगह थी। "दिल दरिया" वाला स्वभाव की उक्ति उस पर सटीक बैठती थी। दिल की भली और व्यवहार में सौम्य, शालीन।

आज उसे बहुत समय के बाद पुन्नू मिला था। बूढ़ा होने के बावजूद पुन्नू ऊर्मिला को अम्मा ही कहता था। "आओ, घर चलो।" ऊर्मिला ने कहा तो बूढ़ा पुन्नू उसके पीछे–पीछे अपने दोनों हाथों में थामे लाठियां टेकते हुए धीरे–धीरे कदम बढ़ाते चल पड़ा। ऊर्मिला के घर में पहुंचा, तो बाहर आंगन में बने सीमेंट के थड़े पर बैठ गया। हाथ की दोनों छड़ियों को गोद से टिकाकर अपने रूखे–सूखे, गांठ पड़ी उंगलियों को ध्यान से देखने लगा, मानो पहली बार देख रहा हो!

"लो पुन्नुआ३ चाय पी लो।" ऊर्मिला ने चाय का कप लाकर उसके हाथों में थमा दिया। उसने धीरे से कप को पकड़ा। बोला कुछ नहीं। फिर धीरे–धीरे कप में से चाय सुड़कने लगा। ऊर्मिला को पुराने दिन याद आ गए । वह उन दिनों उसके द्वारा निस्वार्थ भाव से किये कार्यों को अब भी भूली नहीं थी। यह वह समय था, जब युवा पुन्नू शरीर से हट्टा–कट्टा मगर दिल से बच्चा था। कोई भी काम हो, चाहे घरेलू अथवा खेती–बाड़ी से संबंधित, जब भी उसे बुलावा भेजते, तो बिना नागा हाज़िर हो जाता। उसे अपना शरीर छिपाना नहीं आता था। जो कहा या बताया जाता, वह उसे पूरे मनोयोग से करता। ना–नुकर, बहानेबाज़ी, जी चुराना अथवा उल्टा–सीधा कर जल्दी से काम निपटाने की कला, चालाकी, नौटंकी नहीं जानता था। सौंपे गए काम के प्रति पूरी ईमानदारी और पूर्ण संतुष्ट होने तक भिड़ा रहता। मेहनती था। उसे अपनी ईमानदारी तथा मेहनत का बाजिव मेहनताना मिल जाता था। जहां भी काम कर रहा होता, शाम को अपनी मेहनत से भी अधिक पुरस्कार स्वरूप कुछ न कुछ मिल जाता। वह प्रसन्न मन से शाम को अपने हाथों या कंधे पर कुछ न कुछ उठाए घर लौटता। ऊर्मिला उसको अच्छे से जानती, समझती है। उसके विनम्र स्वभाव तथा निःस्वार्थ श्रम का वह हमेशा कायल रही है। इसलिए

पुन्नू को अब इस जर्जर और दयनीय अवस्था में उसका किसी भी रूप में सहायता करना, अपना पुण्य कर्म मानती है। बेशक अब पुन्नू डंडों के सहारे ही चल–फिर पाता है, लेकिन उसके पुराने अच्छे कार्य, सद्कर्म उसे लोगों की नज़रों से उसे गिरने नहीं देते हैं। समर्थ–साधन–सम्पन्न लोग अपनी इच्छा से उसकी सहायता कर अपने को धन्य होने का अवसर मानते हैं।

"लो३ इनको लेते जाओ।" अभी वह चाय पी ही रहा था, ऊर्मिला ने एक किलो के लगभग मूंग दाल, खाने के रिफाइंड तेल का एक बंद पैकेट और कपड़े में बांधकर काफी मात्रा में कच्चा चावल लाकर उसे पकड़ा दिया। पचास रुपये का एक नोट और थमा दिया। पुन्नू का कुछ दिनों का जुगाड़ हो गया था । एक संवेदनशील व्यक्ति दूसरे की तकलीफों, दुखों, दयनीय स्थिति को देख असहज हो जाता है और उदार मन से उसकी यथा संभव सहायता करने में संकोच नहीं करता है। ऊर्मिला ऐसी ही संवेदनशील महिला थी। ऊर्मिला का भी भरा–पूरा परिवार है। लेकिन परिवार के सदस्य दूर–दूर रहते हैं। महीने में पन्द्रह–बीस दिनों के अंतराल में एक बार बारी–बारी से, अथवा कभी–कभी एक साथ भी आ जाते हैं। मगर कभी उसी दिन, कभी एकाध दिन रुक वापस अपने–अपने ठिकानों को लौट जाते हैं। इतने बड़े घर में वह अकेली रहती है। इसलिए बुढ़ापे में अकेलेपन की विवशता, मानसिकता को अच्छे से जानती, समझती है। शायद इसी सोच, मानसिकता के कारण वह पुन्नू के दर्द और विवशता को उसके बिना बताए ही समझ लेती है। उसके साथ उसकी पूरी सहानुभूति थी। इसी सोच के कारण वह उसके साथ अपना अधिक जुड़ाव मानती थी।

पुन्नू ने अभी चाय खत्म नहीं की थी। सामानों को देखा, तो चेहरे के गड्ढों में धंसी हुई उसकी आंखों में नमी उतर आई।" अम्मा ! आप सच में मेरी अम्मा ही होंगी।" रुंधे गले से उसने कहा।

आवाज़ उसके होंठों से रुक–रुक कर निकल रही थी। मानो गले में कुछ अटका हो। भावातिरेक में पुन्नू के मुंह से धन्यवाद के रूप में भीगा हुआ यही उद्गार निकला था। आंखों की नमी रूखे चेहरे पर फैल कर चेहरे को गीला कर चुकी थी।

"तुहरा बेटा किच्छ़ देया सा कि नहीं?" ऊर्मिला का जिज्ञासा भरा प्रश्न था।

"कदी कदी३ ज़्यादातर तो नहीं।" पुन्नू ने अपनी नज़रें वैसे ही नीचे ज़मीन में गाड़े हुए कहा। वह इकलौते बेटे के आचरण, व्यवहार से खिन्न और दुःखी रहता था। वो कहावत उस पर पूर्णतः चरितार्थ होती थी," जेमने कोई न पोसाए, एमने एमनु पेट पोसाए" यानी जिसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, उसकी कोख जई औलाद ही उसे नुकसान पहुंचाता है।

"लोका किच्छ़ न किच्छ़ देया सि३ गुजारा होआ सा३ यह मदन लाल त् मेरा बाप ज़ेंई सा। कदी राशन३ कदी ढाऊए३ कदी कपड़े३ झिकड़े देंदे रोहा सी।" पुन्नू ने ऊर्मिला के घर से दिखता सड़क से ऊपर मदन लाल के घर की ओर इशारा करते हुए बताया। यह सब बताते हुए उसके चेहरे में एक महीन सी आभा के साथ, प्रशंसा का भाव उभर आया था। गांव और इलाके के बहुत से लोगों को मदन लाल की उदारता का पता था। सभी कहते मदन लाल का दिल बहुत बड़ा है। आज की संकीर्ण सोच व लोभ–लालच, निजी स्वार्थ से भरे माहौल के बावजूद वह अक्सर ही पुन्नू की किसी न किसी रूप में मदद करता ही रहता था। मदन लाल की ऐसी दरियादिली और अपनत्व की वजह से उसको वह अपना बाप जैसा मान रहा था। उसकी तारीफ करते हुए पुन्नू की आंखों में एक अनोखी चमक झलक रही थीं।

पेड़ो के बीच से दिखता आसमान साफ था। दोपहर का समय था। बहुत दिनों के बाद आज धूप खिली हुई थी। पहाड़ी क्षेत्र और दिसंबर का महीना होने के बावजूद अधिक ठंड नहीं थी। पुन्नू ने थड़े पर बैठे–बैठे चाय खत्म की, तो ऊर्मिला के दिये सामानों की पोटली बांधने लगा। पोटली बनाकर उसे अपने कंधे पर से नीचे की ओर पीठ पर लटकाया। इतने भर में ही लगा कि बहुत थक गया हो! लेकिन फिर दोनों लाठियों पर हाथों का ज़ोर डालते हुए धीरे से उठा। अब वह जाने के लिए तैयार था। कदम बढ़ाने से पहले दोबारा अपने हाथ लाठियों सहित ऊर्मिला के आगे जोड़ा। ऊर्मिला उसको धीरे–धीरे कदम बढ़ाकर वापस जाते हुए एकटक देखती रही। उसे लगा, उसके दिल में कुछ रिसने लग पड़ा था।

सम्पर्क : नाग मंदिर कालोनी, शमशी, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश– 175126

E Mail: shersingh52@gmail-com

मोबाईल : 8447037777, 8580814900.

दो बातें-गांव के कूंह के बहाने

✍ सतीश कुमार लोप्पा

मेरा गांव नौ-दस घरों का छोटा सा गांव है। 2021 में कोविड के कारण कूंह त्यौहार के अवसर पर घर-घर जाकर क्वल्बि[1] करने का सिलसिला टूटा। सदियों पुरानी परम्परा में एक व्यवधान आया। इस वर्ष (2023) कोविड नहीं था, पर कुछ अन्य कारणों से गांव में क्वल्बि की परम्परा को बंद करने का निर्णय गांव वालों ने लिया। परम्परा यह थी कि कूंह सिल के दिन रिङ्-क्वल्बि अथवा ब्रह्म मुहूर्त में छत पर निकल कर समस्त देवी-देवताओं को विधि पूर्वक शुर-योउरः अर्पित करने के बाद भग्याड़ लोग अल सुबह ही आपस में उम्र की वरीयता के हिसाब से एक दूसरे के घर जाकर क्वल्बि करते थे। फिर सुबह के भोजन के बाद गांव के सबसे बुजुर्ग पुरुष/गृह स्वामी के घर में सभी गांव वासी क्वल्बि करने जाते थे। दिन का भोजन वहीं करते और शाम को उनसे छोटे व्यक्ति के घर जाते। इसी तरह उम्र के क्रम से आने वाले दिनों में हर घर में जाते, खाते, पीते, नाचते, गाते। बड़ों को सम्मान देते, कुशल क्षेम पूछते, छोटों को स्नेह बांटते, हम उम्र लोग प्रेम पूर्वक आनंद मनाते। यह सिलसिला पांच दिन तक चलता रहता, जब तक कि अंतिम घर में खान-पान नहीं कर लिया जाता। ऐसा नहीं है कि हमारे गांव में ही इस तरह की परम्पराएं टूटी हैं, और भी कई गांवों में ऐसा हुआ है। परम्पराओं को बंद किया गया है या छोटा कर दिया गया है। हर जगह अपने-अपने अलग कारण रहे हैं। जैसे कि गांव में आबादी का घट जाना। उस स्थिति में कौन इक्कठे हों, कौन खाए-पिए, कौन खिलाए-पिलाए। पूरी तैयारियों के बाद भी खाने पीने वाले न हों तो यह सब तामझाम किस खातिर? फिजूल में मेज़बान को तकलीफ मात्र होगी। खाने पीने की चीज़ें बची रह जाएंगी और व्यर्थ जाएंगी। किसी गांव में पानी की भारी किल्लत हो गई। इतने मेहमानों के लिए पानी का इंतज़ाम कहां से करें। तो चलो यह परम्परा ही बंद कर देते हैं। कहीं पर गांव में विभिन्न घरों में रखे नौकरों द्वारा खा-पी कर हंगामा करने की घटनाओं के कारण परम्परा तोड़ दी गई, और जगहों में और कारण भी हो सकते हैं।

सवाल यह है कि क्या पुरातन परम्पराओं के टूटने के मात्र यही कारण हैं जैसा कि बताए जाते हैं, या फिर गहराई में छिपे कुछ भिन्न भी कारण हो सकते हैं? कहीं आस-पड़ोस, ग्रां-नगर के प्रति दिलों में जगह सिकुड़ती तो नहीं जा रही। कहीं ऐसा तो नहीं कि भौतिक समृद्धि के दौर में बड़े-बूढ़ों के प्रति मान-सम्मान दिलों से घटता जा रहा है या फिर इतने 'रज' गए हैं कि त्यौहरों का सामूहिक खान-पान तुच्छ लगने लगा है। या इसके विपरीत आयोजन का स्तर इतना ऊंचा चढ़ा दिया गया कि अब उसको जारी रखना दर्द दे रहा है या फिर पुरातन परंपराओं और लोक संस्कृति के प्रति युवाओं का लगाव और परिचय कम होता जा रहा है और इन के प्रति उनका दृष्टि कोण किञ्चित नकारात्मक होता जा रहा है। सामाजिक आयोजनों में एक विशेष उम्र के युवाओं की भागीदारी में कमी देखी जा रही है। ये कुछ ऐसे सवाल हैं जो किसी समाज के लिए आत्म चिंतन की अपेक्षा रखते हैं। वह भी ऐसे समय में जबकि एक तरफ रीति-रिवाज़ टूट रहे हैं, दूसरी तरफ फिल्मों और टीवी सीरियलों की नकल कर ऊल जलूल बाहरी रिवाज़ों को अपनाने का क्रम भी जारी है। इससे एक दिन पहचान का प्रश्न भी समाज के समाने खड़ा होगा। ऐसे मसलों पर समाज को ज़रुर सोचना चाहिए, आत्मचिंतन करना चाहिए, समय रहते, ताकि वह सांस्कृतिक अराजकता की ओर न जाने पाएं।

फुटनोट : 1. क्वल्बि - कूंह त्यौहार के मौके पर बड़ों के पास जा कर एक विशेष रीति से किया जाने वाला चरण-वंदन एवं अभिवादन।

पेट्रोग्लिफ : लाहुल के प्रागैतिहासिक काल का स्रोत

✍ राजेश्वर क्यरपा

गत शताब्दी से पश्चिमी हिमालय के ऊपरी क्षेत्रों पर यहां के प्रागैतिहासिक काल को सुलझाने हेतु विद्वानों तथा शोधार्थियों द्वारा पुरातत्व अध्ययन हुए हैं। लिखित सामग्री की कमी के कारण इन ऊपरी इलाकों का सातवीं शताब्दी पूर्व इतिहास की अधिक जानकारी नहीं है। प्राचीन साहित्य और धार्मिक ग्रंथों के सूक्ष्म अध्ययन से थोड़ी पूरी सामग्री यहां वहां पायी जाती है परंतु उस दौर के इतिहास को प्रमाणित करने के लिए कोई ठोस साक्ष्य उपलब्ध नहीं। प्रागैतिहासिक काल की जीवनशैली को प्रमाणित करने के लिए पुरातत्वशास्त्र बहुमूल्य विज्ञान है। पुरातत्व शास्त्र वह विज्ञान है जो प्राचीन वस्तुओं का अध्ययन व विश्लेषण करके मानव संस्कृति के विकास क्रम को समझने एवं उसकी व्याख्या करने का कार्य करता है। यह विज्ञान प्राचीन काल के अवशेषों और सामग्री के उत्खनन के विश्लेषण के आधार पर अतीत के मानव समाज का सांस्कृतिक वैज्ञानिक अध्ययन करता है। पूर्व में पश्चिमी हिमालय के पुरातत्व पर पर्याप्त कार्य का अभाव रहा है। भारत का उत्तरी भाग पश्चिमी हिमालय पर्वतों से घिरा हुआ है। तिब्बत के साथ लगती सीमा के अंतर्गत लद्दाख, हिमाचल प्रदेश का लाहुल-स्पीति और किन्नौर ज़िला तथा उत्तराखंड में गढ़वाल और कुमाऊं के ऊपरी इलाके आते हैं। यह सभी क्षेत्र पश्चिमी हिमालय के भू-भाग पर अवस्थित हैं। इन क्षेत्रों की मौजूदा जनसंख्या अमूमन मंगोलियन जातीय समूह से संबंधित है। इण्डो-आर्यन जनसंख्या भी यहां पाई जाती है।

लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति, लाहुल और किन्नौर का प्रमाणित इतिहास दसवीं शताब्दी उपरांत माना जाता है। लद्दाख से कुषाण कालीन शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो ईसा के आरम्भिक शताब्दियों के हैं, इसके बावजूद इन शिलालेखों के बलबूते लद्दाख के उस काल के इतिहास को पूर्ण तौर पर प्रमाणित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार इन इलाकों का सातवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य इतिहास की भी अधिक जानकारी नहीं है। सातवीं शताब्दी पूर्व पश्चिमी हिमालय और तिब्बत के मध्य उच्च तिब्बती पठार पर जङ-जुङ सभ्यता अपने चरम सीमा पर थी। जङ-जुङ का अंत सातवीं शताब्दी के मध्य मालूम पड़ता है जब दक्षिण तिब्बत के यरलुङ राजवंश के तैंतीसवें राजा स्रोङच्चन गंपो ने जङ-जुङ के अंतिम शासक लिग ञ्या शुर को युद्ध में पराजित कर इस सभ्यता का नामोनिशान विश्व मानचित्र से मिटाना शुरु कर दिया था। इस युद्ध के उपरांत ही तिब्बत का इतिहास लिखा गया। जङ-जुङ को शिकस्त देने के पश्चात तिब्बती सेना ने पश्चिमी हिमालय के ऊपरी इलाकों पर कब्ज़ा कर इन क्षेत्रों को अपने अधीनस्थ किया। आगे की शताब्दियों में तिब्बती मूल के लोग स्थाई तौर पर यहां बसते गए और यहां के मूल निवासी (मोन) नई आबादी में खप गए या दूसरे क्षेत्रों को पलायन कर गए। सातवीं शताब्दी पूर्व जङ-जुङ एक विस्तृत प्रदेश था जिसका मुख्यालय पश्चिमी तिब्बत के ख्युङलुङ में स्थापित था। ख्युङलुङ राजधानी कैलाश पर्वत से दक्षिण पश्चिम पर स्थित थी। जङ जुङपा बोन धर्म के पूजक थे जिसमें प्रकृति एवं देवी देवताओं की पूजा प्रचलित थी और इसके अनुयायी देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिए कई प्रकार की बलियों के लिए प्रसिद्ध थे। जङ-जुङ सभ्यता की वास्तविक भौगोलिक सीमाएं कहां तक फैली थी इसमें सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान पश्चिमी हिमालय के ऊपरी इलाकों को इस सभ्यता का हिस्सा मानते हैं जिनमें बल्तिस्तान, लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति, लाहुल, किन्नौर आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं। पुरातत्व शोध आरंभिक चरण में होने से इन क्षेत्रों का जङ-जुङ से क्या संबंध था, स्थिति स्पष्ट नहीं है। जङ-जुङ सभ्यता पर हमारा ज्ञान भी अल्प है। सीमावर्ती

क्षेत्र होने के कारणवश उपरलिखित स्थानों पर प्रागैतिहासिक काल से ही मध्य एशिया और पश्चिम तिब्बत (जङ-जुङ) का अधिक प्रभाव हो सकता है।

पश्चिमी हिमालय के अनसुलझे प्रागैतिहासिक काल के शोध कार्य को गति पिछली शताब्दी में पश्चिमी खोजकर्ताओं, मिशनरियों एवं विद्वानों ने प्रदान की जब लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति और लाहुल में मौजूद शिला आकृतियों पर सर्वप्रथम इनका ध्यान आकर्षित हुआ। इन मानव निर्मित आकृतियों का निर्माण काल सातवीं शताब्दी पूर्व माना गया है। ऐसा इसलिए क्योंकि उस समय तिब्बती साम्राज्य और वहां से लाए बौद्ध धर्म का विस्तार अभी नहीं हुआ था। इन शिला आकृतियों को पुरातत्व भाषा में पेट्रोग्लिफ (Petroglyph) तथा साधारण अंग्रेज़ी भाषा में रॉक कार्विंग या इंग्रेविंग कहते हैं। पेट्रोग्लिफ को रॉक कला (Rock art) की श्रेणी के अंतर्गत रखा जाता है। पेट्रोग्लिफ लगभग दुनिया के अधिकांश देशों में पाए जाते हैं। भारत की उत्तरी सीमा में यह विभिन्न चट्टानों एवं शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। पेट्रोग्लिफ (petro+glyph) यूनानी भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है जिसमें पैट्रो का अर्थ है 'शिला' तथा ग्लिफ का अर्थ है 'उत्कीर्ण', इस प्रकार इसका शाब्दिक अर्थ है 'शैलोत्कीर्ण'। पेट्रोग्लिफ प्रायः प्रागैतिहासिक मानी जाती है और मानव द्वारा पत्थर और धातु औज़ारों से सपाट शिलाओं पर कुरेदी गई हैं। पेट्रोग्लिफ मानव द्वारा प्रचलित कलात्मक अभिव्यक्ति का सबसे पुराना रूप है। प्रागैतिहासिक काल की गतिविधियों को समझने के लिए यह अहम स्रोत है।

पश्चिमी हिमालय के पेट्रोग्लिफ पर अनुमानतः सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन बीसवीं सदी के आरंभ में मोरावियन मिशनरी अगस्त फ्रैंके द्वारा किया गया। उनके पश्चात् कई पश्चिमी खोजकर्ताओं एवं विद्वानों की नज़र इन शिला आकृतियों पर पड़ी जिनमें रोरिक, फिलिप्पी डी, डेल टेरा, टुच्ची, स्टेन, पीसेल आदि प्रमुख रहे। पिछली शताब्दी के अंतिम दशकों में लद्दाख, ज़ंस्कर और स्पीति में मौजूद इन शिला आकृतियों पर विस्तृत अध्ययन हुए। इन आकृतियों में विभिन्न प्रकार के चित्रण शिलाओं एवं चट्टानों के बाहरी सतह को कुरेद कर बनाई गई थी। इनमें अमूमन जंगली जानवरों का चित्रण दर्शाया गया है जिनमें याक, ड्रोङ (जंगली याक), टंगरोल (आईबेक्स), हिरण, नाबो (ब्लू शीप), बाघ, बर्फानी तेंदुआ, घोड़ा, ऊंट, कुत्ता, शंकु, ख्युङ (बाज़), भेड़ प्रमुख हैं। शिकार के दृश्यों में आईबेक्स के शिकार, याक के शिकार, तथा ब्लू शीप को शिकार करते दर्शाया गया है। अन्य चित्रों में स्वस्तिक, स्तूप, चांद, सूरज, बिंदु, फूल, स्क्रॉल, कुंडली, हस्त छाप, पद चिन्ह, मुखौटा, रथ तथा मनुष्य की विभिन्न आकृतियां अंकित हैं। इनकी बनावट हेतु पाषाण रुपी औज़ार का प्रयोग किया गया है। रॉक आर्ट विशेषज्ञों द्वारा इनका निर्माण काल कांस्य युग से ऐतिहासिक काल के 12वीं-13वीं शताब्दी तक माना गया है। इनके निर्माणकर्ता संभवतः मध्य एशिया की प्राचीन घुमंतू जातियां एवं यहां के मूल निवासी रहे होंगे।

लाहुल पश्चिमी हिमालय में एक संकरी गहरी घाटी है जिसके दोनों ओर गगनचुंबी पर्वत श्रृंखलाएं विद्यमान हैं। उत्तर में लद्दाख और ज़ंस्कर से इसकी सीमाएं जुड़ी हैं तो पूर्व में स्पीति, लाहुल को घेरे हुए है। दक्षिण और पश्चिम दिशा में कुल्लू और चंबा इसके प्रहरी हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य (सन् 1856) में धर्म परिवर्तन के उद्देश्य से मोरावियन मिशनरी मंगोलियन मिशन के तहत 84 वर्ष लाहुल में रहे। इनके कई प्रमुख मिशनरी हुए, जो लाहुल के हेडक्वार्टर केलंग में यीशु मसीह के मज़हब को लाहुलियों पर प्रचारित करने को बाध्य थे। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में अगस्त फ्रैंके कुछ वर्ष लाहुल में बतौर मिशनरी रहे। इस दौरान फ्रैंके ने लाहुल के इतिहास और पुरातत्व का अध्ययन किया। केलंग के उपरी ढलानों में उन्हें शिलाओं पर खुदे हुए प्राचीन नक्काशी दिखे, जिनमें शिकार संबंधी आकृतियां अंकित थीं। लद्दाख और स्पीति में भी फ्रैंके ने ऐसी ही शिला आकृतियां अपने ऐतिहासिक यात्राओं के दौरान खोजी थी। बौद्ध धर्म से भिन्न इन शिला आकृतियों की पहचान कर फ्रैंके ने इनका निर्माण काल सातवीं शताब्दी पूर्व माना है।

सन 1929 में कुल्लू की प्राचीन राजधानी नग्गर में बसे रूस के विख्यात चित्रकार निकोलस रोरिक अपने परिवार सहित लाहुल की यात्रा पर निकले थे। उनके अलावा पत्नी हेलेना, पुत्र जॉर्ज और स्वेत्सलोव भी साथ रहे। 1929 से 1932 तक रोरिक परिवार रोहतांग दर्रे (13051 फीट) को पार कर पुनन घाटी

के गुङशेल (केलंग के पश्चिम में अंदरूनी घाटी) नामक स्थान पर गर्मियां बिताते रहे। वहां रोरिक ने अपना निजी आर्ट स्टूडियो बना रखा था। समय का सदुपयोग करते हुए निकोलस रोरिक ने लाहुल के गगनचुंबी शिखरों, बौद्ध गोन्पाओं, प्राचीन ग्राम, जल-प्रपातों एवं ऐतिहासिक धरोहरों की उत्कृष्ट चित्रकारी की। उनके ज्येष्ठ पुत्र जॉर्ज इस दौरान लाहुल के पुरातत्व पर कार्य करते रहे। लाहुल के पहाड़ों में विचरते निकोलस रोरिक की नज़र वहां मौजूद शिला आकृतियों पर पड़ी। इन शिलाओं पर वही शिकार की आकृतियां अंकित थे, जो दो दशक पूर्व फ्रैंके ने सर्वप्रथम देखे थे। यह पेट्रोग्लिफ भागा घाटी के दक्षिण पश्चिम सीमा में खोजे गए थे। फ्रैंके और रोरिक के अलावा टूची, स्टेन, डेल टेरा, पीसल आदि ने हिमालय यात्राओं के दौरान हूबहू वही आकृतियां देखी जो फ्रैंके और रोरिक को दिखे थे। इन सभी पेट्रोग्लिफ में विषय एक समान था जिनमें आईबेक्स (जंगली बकरा) की आकृतियां अत्यधिक मात्रा में पाई गई थीं। उत्तरी पाकिस्तान में कराकोरम और हिंदुकुश की घाटियों में भी ऐसे ही मिलते जुलते पेट्रोग्लिफ्स देखे गए। इन पर कार्ल जेतमर और ए. दानी ने लंबा अनुसंधान किया है। मध्य एशिया और ऊपरी तिब्बत/पश्चिमी तिब्बत में भी इस प्रकार के रॉक कला का भंडार है। 1971 में भोट शास्त्री डेट लेफ लोफ ने भी लाहुल में इन आकृतियों का ज़िक्र किया था। इन आकृतियों को उन्होंने दरद जाति से संबंधित माना था।

2016 में गुङशेल स्थित रोरिक स्टूडियो के जीर्णोद्धार के दौरान लाहुल के इतिहासकार स्वर्गीय छेरिङ दोर्जे ने सर्वप्रथम इन चित्रों से मुझे रूबरू करवाया। रोरिक स्टुडियो के पीछे संपर्क मार्ग के बगल में चट्टान पर उत्कीर्ण आईबेक्स की आकृति से अवगत करा वो हमें करगा ले गए जहां मार्ग के बाईं ओर अर्ध खंडित सपाट शिला पर आईबेक्स की दो समांतर आकृतियां दिखलाई। उनके अनुसार इन रॉक कला के निर्माणकर्ता जङ-जुङ सभ्यता के लोग थे। जङ-जुङ संस्कृति पर शोध करने वाले अमरीकी पुरातत्व विशेषज्ञ तथा सांस्कृतिक इतिहासकार जॉन बैलेज़ा ने दो दशक से ऊपर पश्चिमी तिब्बत के गुगे-रुथोग् क्षेत्र पर वहां के रॉक कला पर सराहनीय कार्य किया। स्पीति में रॉक कला पर पूर्व में लक्ष्मण ठाकुर, हांडा, बैलेज़ा, छेरिङ नोर्बु, माइकल डोवाड, एकता सिंह तथा भारतीय पुरातत्व विभाग ने अनुसंधान किए। लद्दाख और ज़ंस्कर में स्नेलग्रोव, स्कोपुरोस्की, फ्रैंकफर्ट, मस्कल, क्लोडज़िंस्की, बी आर मणि, जमवाल, वरनियर, ब्रूनो, डेवर्स, विराफ मेहता, टशी दवा शंग्स्पा, लिनरोथ, वोहरा, सोनम पलज़ेस, दुबे पाठक और भारतीय पुरातत्व विभाग ने सराहनीय कार्य किए हैं। इसके विपरीत फ्रैंके और रोरिक के आरंभिक ज़िक्रों के बावजूद लाहुल के पेट्रोग्लिफ पर किसी भी शोधार्थी का ध्यान नहीं गया। कुछ वर्ष पूर्व लाहुली इतिहासकार तोबदन और पुरातत्ववेत्ता छेरिङ दोर्ज़े ने तोद घाटी में अपने गांव के बगल पर स्थित एक-एक साईट पर कार्य किया।

लाहुल के संदर्भ में पेट्रोग्लिफ साइट्स मुख्य घाटियों में विभिन्न स्थानों पर समतल एवं स्वच्छ चट्टानों पर शिलाओं पर अंकित हैं। तोद-पुनन तथा तिनन-रङ्लो लाहुल का ऊपरी इलाका है। मनछद (पट्टन) लाहुल का निम्न इलाका है। भागा घाटी में पेट्रोग्लिफ की संख्या सर्वाधिक है जिनमें से साईट्स नदी के दोनों छोर पर कुछ समतल भूमि परन्तु अधिकतर पहाड़ी ढलानों पर पाई जाती हैं। इनमें कुछ साइट्स तोद घाटी तो कुछ पुनन घाटी में स्थित हैं। तोद घाटी के आठ पेट्रोग्लिफ साइट्स निम्नलिखित हैं : गोनच़ग-दीं योगमा, नमचिन थंगका, तलमे तुक्सा, मिलङ थंगका, हरिपुर-गोन्पा थङ, मंगलक, मुनचि़, कारिंग मिलांग थंगका। पुनन घाटी के तेरह साइट्स निमिनलिखित हैं : डोलमा फु थङ, तेङरी-बार, तेवारङ-तयुल, ते थङ, गोनपा थङ, गुङशेल, निलिंङ थङ, तिङ्चे, चो़कसि बे, बरचि़, बिलिङ थङ, कोरा अमचि़, ज़ा मुर्चि़।

तिनन और रङ्लो चंद्रा घाटी के अंतर्गत इलाके हैं। तिनन के तीन पेट्रोग्लिफ साइट्स इस प्रकार हैं : तिरङ, खले, खोरपाणी-शुलिङ के ऊपरी पहाड़। रङ्लो घाटी में शशिन और तेलिङ पेट्रोग्लिफ साइट्स हैं। यहां दोनों साइट्स पर एक-एक शिला है। तिनन और रङ्लो घाटी के समस्त साइट्स चंद्रा नदी के दाएं छोर पर हैं। मनछद इलाका जिसे चंद्रभागा घाटी भी कहते हैं, चंद्रा एवं भागा नदी के मिलन से अस्तित्व में तङति से नीचे लाहुल का निम्न इलाका है, जिसके मध्य चंद्रभागा नदी तेज़ वेग से बहती हुई चंबा के पांगी घाटी में प्रवेश करती है। मनछद के पेट्रोग्लिफ साइट्स घाटी के ऊपरी भाग

पर स्थित हैं। यहां छह साइट्स पाई गई हैं जो क्रमशः करगा, सुमनम, रिबलिङ, यङरङ, टेलङ्बे तथा लिंडूर हैं। करगा और लिंडूर को छोड़ संपूर्ण साइट्स गांव के ऊपर पहाड़ी ढलानों पर निर्मित हैं, फिलहाल इनके वास्तविक नामों की पुष्टि नहीं हो पाई है। सभी साइट्स चंद्रभागा नदी के दाएं छोर पर हैं। करगा साईट मनछद घाटी और पुनन घाटी की सीमा पर अवस्थित है। निम्न मनछद और मयाड़ घाटी में अभी पेट्रोग्लिफ की खोज आरंभ नहीं हुई है। संपूर्ण लाहुल में अब तक 32 पेट्रोग्लिफ साइट्स मिले हैं, जिनमें 510 शिलाओं एवं चट्टानों पर लगभग 2035 चित्र उकेरे गए हैं। यह साइट्स समुद्रतल से 2900 मीटर से लेकर 4000 मीटर तक स्थित हैं। इन पेट्रोग्लिफ के निर्माण हेतु विभिन्न प्रकार की शिलाओं का इस्तेमाल किया गया है। इन शिलाओं की बाहरी सतह को कुरेदकर या खुरचकर पाषाणनुमा एवं धातु के औज़ार से सुंदर आकृतियां उत्कीर्ण की गई हैं। कई स्थानों पर चित्र खुरदरी हैं। उत्कीर्णन के लिए पेक्किंग (pecking) तथा स्क्रैचिंग (scratching) तकनीक अमूमन प्रयोग में लाई गई है जिसके लिए एक फुट छोटी शिला से लेकर बड़ी शिलाओं का भी चयन किया गया है।

पेट्रोग्लिफ साइट्स में गोनचग-दीं योगमा, मंगलक, ते थङ, निलिङ थङ, च़ोकसि बे, तिरङ और सुमनम प्रमुख स्थल हैं। बाकी लघु साइट्स हैं। कुछ साइट्स पर एकाध आकृति पाई गई है। दिसंबर 2022 तक 32 साइट्स खोजे जा चुके हैं। इनमें मुख्यतः आईबेक्स चित्रित हैं, जिसे तोद, पुनन और तिनन बोली में 'किन' तथा मनछद बोली में 'दन' कहते हैं। आईबेक्स के चित्र अधिकतर अकेले, समूह में, या शिकार करते हुए पाए गए हैं। इनमें आमतौर पर दो प्रकार की बनावट है, जिसमें एक लीनियर (linear) तो दूसरा बाईट्राइएंगुलर (bitriangular) आकृतियां हैं। लाहुल के पेट्रोग्लिफ में नर आईबेक्स पाए गए हैं, जिनकी पुष्टि इनके लंबे अर्धगोलाकार सींगों एवं गुप्तांग के द्वारा होती है।

अधिकतर चित्रों में टंगरोल को गुप्तांग के साथ भी दर्शाया गया है। एकाध ा चित्र के अलावा मादा आईबेक्स उत्कीर्णित नहीं है। आईबेक्स के अलावा याक या ड्रोङ (जंगली याक), घोड़ा, पक्षी, ख्युङ (बाज़)? कुत्ता इत्यादि उत्कीर्ण हैं। नाबो (ब्लू शीप) की कोई भी आकृति मौजूद नहीं, वैसे भी लाहुल में नाबो पाए नहीं जाते। इसके विपरीत लद्दाख, ज़ंस्कर और स्पीति में नाबो के चित्रण मौजूद हैं। जानवर पशुचित्रीय (Zoomorphic) श्रेणी में आते हैं। इस के अलावा मानवाकृतीय (Anthropomorphic figures) भी पाए गए हैं, जिनमें आइबेक्स के शिकार, घुड़सवार, सूर्य प्रकाशित मानव, हस्थ छाप, पद चिन्ह तथा पंक्तिबद्ध नाचते लोग दर्शाए गए हैं। भौतिक वस्तुओं (Material Objects) में कंपार्टमेंट्स, स्तूप अंकित हैं, जिनमें अधिकतर स्तूप बौद्ध ध ार्म पूर्व के हैं। गैर आलंकारिक आकृतियों (non figurative) में स्वस्तिक, कुंडली (spiral) सूर्य, चांद, फूल, बिंदु इत्यादि चित्रित हैं। इस के अतिरिक्त बुम्पा (vase), वुल्फ और शीप खेल, प्राचीन वृक्ष और खड्ग की आकृति भी पाई गई है। कुछ आकृतियों की पहचान कर पाना कठिन है। एक-दो साईट पर भोटी शिलालेख हैं, जिनमें नाम लिखे हैं। भोट लिपि में ओम शब्द कुछ स्थानों पर अंकित है। कुछ साइट्स पर ग्राइंडिंग होल्स (grinding holes) शिलाओं पर खुदे हैं, जो संभवतः खाद्य पदार्थों को कूटने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। सुमनम गांव के ऊपरी ढलान में इनकी मात्रा अधिक है, जिनमें एक शिला पर 27 छिद्र हैं, जिनका अधिकतम व्यास 20 सेंटी मीटर और गहराई 39 सेंटी मीटर है। पिक्टोग्राफ (pictograph) की प्राप्ति फिलहाल लाहुल में नहीं हुई है, हालांकि स्पीति के कुछ साइट्स (गुफाओं) में इनका चित्रण है। पिक्टोग्राफ रंगों द्वारा बनाई गई चित्रकारी है, जिसमें अमूमन लाल रंग का इस्तेमाल किया जाता है। इसे पत्थर के सतह पर बनाया जाता है। लद्दाख और ऊपरी तिब्बत में भी पिक्टोग्राफ की पहचान हुई है।

लाहुल के पेट्रोग्लिफ कुछ प्राचीन, तो कुछ हाल के प्रतीत होते हैं। इनके निर्माण के पीछे क्या मकसद रहा होगा, निश्चितता से कह नहीं सकते, पर इनके सूक्ष्म अध्ययन से इनके धार्मिक महत्व को अवश्य समझा जा सकता है। आईबेक्स तथा उसके शिकार संबंधी चित्र, स्वस्तिक एवं स्तूप सम्भवतः धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदेश बयान करते हैं। तिब्बती बौद्ध धर्म से पूर्व काल के ये अवशेष चिन्ह, आदिम

विश्वास और पुरातन संस्कृति से जुड़े हैं। लाहुल के पेट्रोग्लिफ में मूल विषय आईबेक्स की कृतियां हैं, जो सभी महत्त्वपूर्ण साइट पर उपलब्ध हैं। इस जानवर की 637 आकृतियां सभी साइटों के शिलाओं पर अंकित हैं। इस जंगली बकरे की शिलाओं पर उपस्थिति को लाहुल की संस्कृति और प्राचीन धर्म के माध्यम से भी समझा जा सकता है, जिसमें इस जानवर की विशिष्ट भूमिका है। लाहुल के कुछ गांवों में मक्खन या गूंधे आटे का आईबेक्स अमूमन देवी-देवताओं को बलि या भेंट के तौर पर तीरंदाज़ी द्वारा निशाना लगाते हैं। निशाना लगने पर नवविवाहित युवक को अगले वर्ष पुत्र प्राप्ति होती है। इसके अलावा अतीत में मनछद घाटी में दछङ उत्सव पर आटे के आईबेक्स एवं उसके अंगों पर तीर से निशाना साधते थे। यह प्रथा अब समाप्त है। तिनन-रङलो घाटी में लहमोई/पुणा त्यौहार में आटे/काठू का आईबेक्स या फिर भोजपत्र के कागज़ पर कोयले से ड्रोङ की आकृति बना उसे भेदने की प्रथा है। आईबेक्स के संदर्भ में तिनन घाटी में इसे 'किंच़ थेप्चि़' कहते निशाना लगाते हैं। ऐसे ही 'आईबेक्स हंटिंग सीन' लाहुल के प्राचीन काल में निर्मित पेट्रोग्लिफ पर अंकित हैं। रोपसङ पूणा के दौरान नवविवाहित औरतों तथा नए जन्मे पुत्रों की माताओं को आटे से निर्मित आइबेक्स भेंट करने की प्रथा है। मयाड़ में भी गूंधे आटे का आईबेक्स एक दूसरे को भेंट किया जाता है। ऊपर लिखित त्यौहारों में आईबेक्स स्पष्ट तौर पर उर्वरता (fertility) का प्रतीक है। लाहुल के देव मंदिरों और घरों के छत पर स्थापित आइबेक्स के सींग की ढेरियां

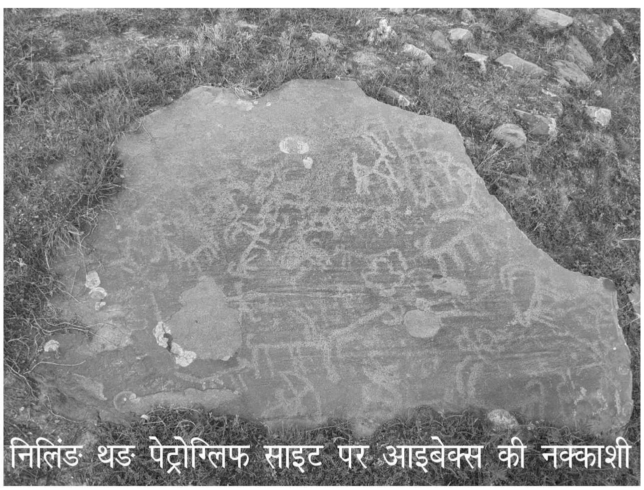
निलिंङ थङ पेट्रोग्लिफ साइट पर आइबेक्स की नक्काशी

देने की प्रथा है। कुस (नव वर्ष) में लोगों के घरों के अंदरूनी दीवार पर बराज़ा/शिस्कर अपः चित्रण में सूर्य, चांद, स्वस्तिक के अलावा आईबेक्स की आकृति को दर्शाया जाता है। लोसर/हल्ड़ः (नव वर्ष) में भी अन्य जानवरों के साथ आटे का आईबेक्स बना उसे कमरे के अलमारी के तख़्तों पर सजाते हैं। तोद घाटी के खङसर ग्राम में लोसर (नव वर्ष) के आखिरी दिन, जिसे पूणा के नाम से जाना जाता है, कागज़ पर आईबेक्स अथवा याक के चित्र पर स्थानीय लोग हैं। मान्यता है जिस युवक का निशाना सबसे पहले लगेगा उसे अगले वर्ष त्यौहार तक पुत्र प्राप्ति होगी। अनुमानतः अतीत में जीवित आईबेक्स पर निशाना दागते होंगे, अब मात्र प्रतीक रूप ही दर्शाते हैं। मनछद घाटी के योबरङ कोठी में कुस त्योहार में पूणा के दौरान आटे से निर्मित आईबेक्स तथा उसके विभिन्न अंगों को स्थानीय देवता को अर्पित करते हैं। मयाड़ घाटी के उड़गोस गांव में चेत्रोड़ि के उपलक्ष्य पर आईबेक्स की प्रतिमा एवं काठू-आटा द्वारा निर्मित चांद-सूरज पर जिसे ल्हथो कहते हैं, देवी देवताओं के चिन्ह रूप हैं।

लाहुल की आकृतियों में फिलहाल ड्रोङ/याक हंटिंग के चित्र प्राप्त नहीं हुए हैं, फिर भी इस जानवर की आकृतियां कुछ स्थानों पर अंकित हैं। ड्रोङ हंटिंग भी यहां के शीतकालीन त्यौहारों का हिस्सा है। इसका तात्पर्य भी पुत्र प्राप्ति है। ड्रोङ हंटिंग ऊपरी तिब्बत से संबंधित लगता है जहां जङपा समुदाय अमूमन याक और ड्रीमो को पालतू जानवरों के तौर पर उपयोग करते हैं। 'गोचि़' पुत्र प्राप्ति का

त्यौहार है जिसका जश्न पुनन घाटी में हर्षोल्लास से मनाया जाता है। लाहुल की अन्य घाटियों में गोचि़ उत्सव मनाने की परंपरा नहीं है। करदङ और छेलिङ गांव में गोचि़ के दौरान भोजपत्र के कागज़ पर कोयले से बने ड्रोङ चित्र पर तीर से निशाना साधते हैं। निशाना लगने पर आगामी वर्ष गांव में पुत्र प्राप्ति होती है। यदि निशाना ड्रोङ के सिर पर लगे तो गांव के ऊपरी भाग में पुत्र प्राप्ति, मध्य हिस्से में तीर लगने पर गांव के मध्य भाग में पुत्र प्राप्ति, निचले हिस्से में तीर लगने पर गांव के निचले भाग में पुत्र प्राप्ति होगी, ऐसी मान्यता है। सभी त्यौहारों में देव पुजारी (लब्दग) सर्वप्रथम निशाना साधता है। ड्रोङ और आईबेक्स हंटिंग का संबंध फर्टिलिटी (fertility) से है, जिसमें पुत्र प्राप्ति की कामना सर्वोपरि रहती है। पुत्र प्राप्ति की इच्छा संभवतः रुस (clan) की वृद्धि एवं रक्षा के मद्देनज़र हो सकती है, जिसे आदि मानव द्वारा देवी-देवताओं से वरदान के तौर पर मांगा जाता होगा।

पूर्वी लद्दाख और ऊपरी तिब्बत के पेट्रोग्लिफ में अमूमन याक अथवा ड्रोङ उत्कीर्णित हैं। स्पीति में नाबो की आकृति अधिक प्रचलित है। निचले लद्दाख, ज़ंस्कर समेत लाहुल में आईबेक्स की प्रधानता है। उत्तरी पाकिस्तान के कबाइली इलाकों में दरद जाति एवं वाख़ी समुदाय के लोक-विश्वास में आईबेक्स अहम जानवर है जिन्हें वहां की जोगणियों का प्रिय पशु माना जाता है। ज़ंस्कर के घरों के बाहरी दीवारों पर लीपापोती पश्चात आईबेक्स की आकृति बनाने की प्रथा है। इसके द्वारा दुर्भावनापूर्ण आत्माओं को घरों से दूर रखा जाता है। लद्दाख में भी आईबेक्स 'फर्टिलिटी कल्ट' से संबंधित है। वहां आईबेक्स हंटिंग अनुष्ठान को 'थुमा सालिङ' कहते हैं। लोसर (नव वर्ष) में आटे का बना आईबेक्स, जिनकी संख्या सात होती है, घरों की अल्मारियों के तख्तों पर सजाते हैं। लद्दाख में नवजात शिशु के जन्म पर गांव वाले और रिश्तेदार बच्चे के माता-पिता को आटे द्वारा निर्मित आईबेक्स भेंट स्वरूप देते हैं।

मध्य एशिया के सभी देशों तथा मंगोलिया-साइबेरिया में भी पेट्रोग्लिफ पर मुख्यतः आईबेक्स दर्शाया गया है। नियोलिथिक (neolithic) काल में आईबेक्स पुरानी सभ्यताओं के पॉटरी (pottery) में चित्रित हैं। आईबेक्स की पॉटरी चित्रकला मेसोपोटामिया के समारा संस्कृति (5500) ईसा पूर्व में भी पाई गई है, जिसमें चित्रकला मिट्टी के बर्तन पर निर्मित है।

सिंधु घाटी सभ्यता में भी पॉटरी पर आईबेक्स के चित्र उकेरे गए हैं। इज़रायल तथा ईरान की शिला आकृतियों में भी मूल विषय आईबेक्स तथा आईबेक्स हंटिंग है। इज़राइल में आईबेक्स को फर्टिलिटी कल्ट और सिन (Sin = moon goddess) का प्रतीकात्मक रूप मानते हैं। इन सभी उदहारण द्वारा प्राचीन सभ्यताओं में आईबेक्स की पहचान 'फर्टिलिटी कल्ट' से संबंधित मालूम होती है।

लाहुल के शिलाओं पर स्वस्तिक दोनों दिशाओं में घूमने वाले प्राप्त हुए हैं। स्वास्तिक की चार भुजाएं, चार दिशाओं को इंगित करती हैं। तिब्बती बौद्ध धर्म से पूर्व दोनों दिशाओं वाले स्वस्तिक प्रचलन में थे। स्वस्तिक विश्व का अत्यंत प्राचीनतम प्रतीक है, जिसे सभी सभ्यताओं में मान्यता प्राप्त है। इसका धार्मिक महत्त्व कहीं इसे सूर्य देव तो कहीं समृद्धि और मंगल का प्रतीक माना जाता है। स्वस्तिक को लाहुल की पुनन बोली में 'युमरिम', तिनन में 'ञुंरुल' और मनछद में 'युङरुङ' तथा 'खोगलाणु' कहते हैं। तिब्बती भाषा में इसे 'युङड्रुङ' तो जङ-जुङ भाषा में 'ड्रुङमु' कहते हैं। बोन धर्म में घड़ी की विपरीत दिशा एंटी क्लॉकवाइज़ (anticlockwise) स्वस्तिक प्रचलन में था। इस तरह के एक दर्जन स्वस्तिक रुपी चित्र लाहुल की विभिन्न साइट्स में मिले हैं। इसमें सबसे प्रमुख स्वस्तिक (एंटी क्लॉकवाइज़) निलिङ थङ साइट पर, पुरातन स्तूप के निचले हिस्से में उत्कीर्णित है। लाहुल में नव वर्ष के दौरान बराज़ा/शिस्कर अपः चित्रण में स्वस्तिक चिन्ह बनाने की परंपरा है। पुनन घाटी में करदङ योर एवं मनछद घाटी में योबरङ योर के दौरान काष्ठ मोहरों पर स्वस्तिक चिन्ह (clock-wise) को चित्रकारी द्वारा दर्शाया जाता है। योबरङ योर में वार्षिक भविष्यवाणी के लिए भी स्वस्तिक चिन्ह को अनुष्ठान वस्तु के तौर पर प्रयोग किया जाता है। एक स्लेट के गोलाकार टुकड़े (फाल) जिसमें दोनों तरफ स्वास्तिक चिन्ह बने होते हैं को खुरिङ्ज़ः (काष्ठ मोहरा वाला व्यक्ति जिसे गांव का रक्षक माना जाता है) तीन दिशाओं के देवी देवताओं को तीन-तीन दफा हवा में उछाल धरती पर फैंक आगामी वर्ष की भविष्यवाणी करता है। इस दौरान

फाल के ज़मीन पर गिरने उपरांत यदि अलंकृत स्वस्तिक दिखे तो आगामी फसल उम्दा होने का संकेत मिलता है। यदि सादा स्वस्तिक दिखे तो कम फसल का संकेत माना जाता है। इसी प्रकार लाहुल के ऊनी जुराब, जो मोरावियन मिशनरी की देन रही है, पर भी स्त्रियां स्वस्तिक चिन्ह को बुनती हैं। घड़ी की दिशा में घूमने वाला क्लॉकवाइज़ (clockwise) स्वस्तिक वर्तमान में तिब्बती बौद्ध धर्म एवं हिंदू धर्म का प्रतीक है। पेट्रोग्लिफ पर क्लॉकवाइज़ स्वस्तिक (बिंदु समेत) की बनावट आठवीं शताब्दी पश्चात की है। बिंदु रहित स्वस्तिक बौद्ध पूर्व काल का है।

लाहुल के साइट्स में बौद्ध स्तूप कम मात्रा में, तो प्राचीन स्तूप की भांति दिखने वाली आकृतियां अत्यधिक दिखती हैं। इस प्रकार की आकृतियां लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति, उत्तरी पाकिस्तान, पश्चिम तिब्बत में भी अंकित हैं। इनमें भी प्राचीन स्तूपों की बनावट एक दूसरे से भिन्न लगती है। लाहुल के पेट्रोग्लिफ में स्तूप जैसी दिखने वाली आकृति के ऊपर आईबेक्स भी दर्शाया गया है। यह एक प्रकार से ब्रंग्यस (सतू निर्मित त्रिकोणनुमा आकृति) का रूप धारण करता है। करदङ गोचि़ में ब्रंग्यस के ऊपर बकरा सवार रहता है, जिसे स्थानीय देवता (युल्हा) को भेंट स्वरूप चढ़ाया जाता है। लाहुल के शीत त्यौहारों में बर्फ का त्रिकोण नुमा ढांचा तैयार किया जाता है जिसे 'राश' कहते हैं। देखने पर यह आकृति भी प्राचीनतम स्तूप की भांति है। गांव के देव स्थलों या घरों के छतों पर अमूमन आईबेक्स के सींगो की ढेरियां (ल्हाथो) रहती है, यह अनुमानतः स्तूप की प्राचीनतम बनावट शैली रही होगी। यह पुरातन स्तूप संभवतः आदिम बोन धर्म या उससे प्रभावित प्राचीन धर्म का प्रतीक है। बोन सातवीं शताब्दी पूर्व मध्य एशिया, तिब्बत, कराकोरम तथा हिमालय के उच्च पहाड़ी जनजातियों का मुख्य धर्म था, जिनके शास्ता तोन्पा शेनरब मिवोचे मध्य एशिया के ओल्मो लुङरिङ नामक स्थान से संबंधित माने जाते थे। बौद्ध स्तूप अथवा छोरतेन सातवीं शताब्दी पश्चात अंकित है और कुछ जगहों पर इनके साथ तिब्बती मंत्र भी उत्कीर्ण हैं। कुछ पेट्रोग्लिफ की पहचान कर पाना कठिन है, इन चित्रों का प्राचीन लोगों की मान्यताओं में क्या भूमिका रही, शोध का विषय है।

लाहुल में प्राप्त पेट्रोग्लिफ तथा लद्दाख, गिलगित-बल्तिस्तान, ज़ंस्कर, स्पीति और पश्चिम तिब्बत के पेट्रोग्लिफ में काफी समानता पाई गई है। लाहुल में पेट्रोग्लिफ की संख्या पड़ोसी राज्य लद्दाख और स्पीति के मुकाबले कम मात्रा में हैं, इन आंकड़ों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण इनका यहां पाया जाना है, जिसे इनके आपस में प्राचीन सांस्कृतिक एवं धार्मिक संबंध स्पष्ट होते हैं। अनुमानतः सातवीं शताब्दी पूर्व लाहुल और उपरलिखित स्थानों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएं मिलती-जुलती थी। संभवतः लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति के पेट्रोग्लिफ का निर्माण काल कांस्य युग से लेकर 12/13 वीं शताब्दी तक है। ऐसा अनुमान इनके मध्य एशिया में मिले रॉक कला से तुलात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है। यही काल लाहुल के लिए भी मान्य हो सकता है, हालांकि लद्दाख और ज़ंस्कर में पाए जाने वाले कांस्य युग की अधिकतर कृतियों का लाहुल में अभाव है। लाहुल के इतिहासकार स्वर्गीय छेरिङ दोर्जे़ ने निलिङ थङ की आकृतियों की निर्माण अवधि 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व से 10वीं शताब्दी ईसा बाद माना है। लाहुल के कुछ पेट्रोग्लिफ संभवतः ऐतिहासिक काल, तो कुछ हाल में बने प्रतीत होते हैं। कुछ चित्रों में पटीना (पत्थर की सतह पर पतली परत जो ऑक्सीडेशन की प्रक्रिया से बनता है) अधिक होने से उनके प्राचीन होने के संकेत मिलते है, फिर भी लद्दाख, ज़ंस्कर और स्पीति की तुलना में लाहुल के चित्रों में पटीना कम मात्रा में है। पटीना के बलबूते किसी चित्र के निर्माण अवधि के निष्कर्ष पर पहुंचना गुमराह कर सकता है। खड्ग या कटार की आकृति छोड़ सभी मुख्य आकृतियां लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति और पश्चिमी/ऊपरी तिब्बत से मेल खाती हैं। पुनन घाटी और मनछद घाटी में कुछ स्थानों पर खड्ग उत्कीर्ण है जो लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति और पश्चिम तिब्बत में अनुमानतः नहीं पाए गए हैं। निकोलस रोरिक ने लाहुल यात्रा के दौरान खड्ग निर्मित चट्टान की चित्रकारी की। उन्होंने खड्ग को महाकाव्य नायक गेसर खान के साथ जोड़ा तथा साइबेरिया मिनूसिंस्क के कांस्य खड्ग से इसकी समानता पाई, हालांकि इस निष्कर्ष पर उन्होंने पूर्ण हामी नहीं भरी थी।

लाहुल में पुरातत्व कार्य अभी आरंभिक चरण में है। रॉक कला में पेट्रोग्लिफ के अध्ययन के ज़रिए लाहुल के

प्रागैतिहासिक काल पर प्रकाश डाला जा सकता है। इसके सूक्ष्म अध्ययन से इसके निर्माणकर्ता के बारे में जान सकते हैं। लाहुल के प्रागैतिहासिक मानव किन्नर और किरात अथवा 'मोन' कहलाए हैं। इसी प्रकार ऊपरी लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति और पश्चिम तिब्बत के प्राचीनतम लोग भी मोन थे। लद्दाख और ज़ंस्कर के निम्न इलाकों में दरद जाति भी प्राचीन काल से निवास करती आई हैं। मोन शब्द का नामकरण तिब्बती भाषी लोग हिमालय के इस ओर रहने वाले प्राचीन लोगों के लिए प्रयोग करते थे। मोन किसी विशेष जाति का नाम नहीं बल्कि हिमालय के दक्षिण में रहने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त शब्द था जो संभवतः मिश्रित जातियों के थे। पश्चिम तिब्बत सातवीं शताब्दी पूर्व तिब्बत से भिन्न राज्य था जिसे जङ–जुङ के नाम से ख्याति प्राप्त थी। इनकी भाषा तिब्बती से भिन्न थी और यह किन्नर और किरात (जङ–जुङ/तिबेटो बर्मन) भाषा का दैनिक जीवन में प्रयोग करते थे। लाहुल की मनछद, तिनन और पुनन घाटियों में किन्नर और किरात भाषा का प्रयोग आज भी यहां के जनजातीय लोग करते हैं। कुल्लू के दूरस्थ गांव मलाणा, जिनकी बोली कणाशी है, किन्नौर के मध्य एवं निचले इलाके जिनमें हमस्कद, छितकुली, जंग्रामी, शुमछो, सुन्नमी बोलियां तथा उत्तराखंड के सीमावर्ती इलाकों में गढ़वाल के नीती–माणा घाटी में तोलछा–मारछा और कुमाऊं के ब्यांगसी, चौदंगसी, रंगकस और दरमा बोलियां भी जङ–जुङ से मिलती जुलती हैं।

पूर्व में लाहुल के कुछ एक स्थानों पर कृषि संबंधी कार्यों, गृह निर्माण के दौरान मृतक समाधियां प्राप्त हुई हैं। खुदाई पश्चात् इन मृतक समाधियों में कंकाल के अलावा मिट्टी के बर्तन तथा पालतू जानवर मिले हैं। जॉर्ज रोरिक ने अपने लाहुल प्रवास के दौरान भी कुछ कब्रों की आंशिक खुदाई की थी। उन्होंने लाहुल के कब्रों को तीन श्रेणी में बांटा था जिनके अंदर कांसे के बर्तन, वाणाग्र, ज़ी, शंख के मनके, टूटी फूटी हड्डियां प्राप्त हुई थी। आदिम काल की प्राचीन सभ्यताओं में मुर्दों को दफनाने का रिवाज़ था। बरचि़ में प्राप्त शव को पूर्व–पश्चिम दिशा में दफनाया गया था, जिसमें मृतक का सिर पूर्व दिशा की ओर स्थापित था। बर्तनों में अनाज़, ज़ी और अन्य बहुमूल्य वस्तु प्राप्त हुए हैं। पूर्व में ऐसी मृतक समाधियों की सूचना गुंदला, गुस्क्यर, ठोलोंग एवं तोद–खङसर गांव से भी प्राप्त हुई हैं। बरचि़ से प्राप्त कंकाल आधुनिक इंसान के मुकाबले अधिक ऊंची तथा खोपड़ी दीर्घ कपाल है। 1948 में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने किन्नौर यात्रा के दौरान लिप्पा गांव में कब्रों से प्राप्त ऐसे ही दीर्घ कपाल खोपड़ी का ज़िक्र किया था। उनके अनुसार यह लंबे मुखाकृति वाले लोग खस जाति के थे। राहुल सांकृत्यायन के मुताबिक खश और शक जाति एक ही थे, जो मध्य एशिया से हिमालय के पर्वतीय इलाकों में फैलते चले गए। लद्दाख, स्पीति, गढ़वाल और कुमाऊं में भी ऐसी ही मृतक समाधियां प्राप्त हुई हैं। गढ़वाल विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग को स्पीति में मिलते–जुलते मृतक समाधियां प्राप्त हुई हैं। लाहुल में बरची़ (चो़कसी बे) ऐसा साइट है, जहां पेट्रोग्लिफ और मृतक समाधियां एक दूसरे के परस्पर नज़दीक हैं। हालांकि यह स्पष्ट नहीं कि पेट्रोग्लिफ के निर्माणकर्ता और मृतक समाधि वाले लोग एक ही थे। मूल किन्नर और किरात लोगों द्वारा लाहुल के पेट्रोग्लिफ के निर्माण की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता, हालांकि मलाणा किन्नर्जन और पूर्वी हिमाचल के किन्नौर वासी जो प्राचीन किन्नर जन हैं, वहां से फिलहाल पेट्रोग्लिफ का कोई विवरण प्राप्त नहीं हुआ है। किन्नर/किरात एवं जङ जुङ भाषा के पूर्वज पश्चिमी हिमालय और पश्चिमी तिब्बत में संभवतः पूर्व की ओर से नियोलिथिक काल (4500 वर्ष पूर्व) में पहुंचे थे। किन्नर और किरात जाति के समकालीन मध्य एशिया की कोई घुमंतु जाति भी इस घाटी पर गुज़र–बसर रहे थे जो शायद इन पेट्रोग्लिफ के निर्माता रहे होंगे। लाहुल के पेट्रोग्लिफ निर्माता यहां के मूल निवासी भी हो सकते हैं, जो मध्य एशिया एवं पश्चिमी तिब्बत के सांस्कृतिक तथा धार्मिक विचारों से प्रभावित थे। अनुमानतः लाहुल के पेट्रोग्लिफ निर्माता लद्दाख और ज़ंस्कर के मूल निवासी भी हो सकते हैं, जो तिब्बती सेना के आक्रमण पश्चात् अपने मूल स्थान छोड़ दूसरे क्षेत्रों को पलायन कर गए। जङ–जुङ राज्य के बिखरने के पश्चात इनमें कुछ मूल जातियां लाहुल प्रवेश कर गई होंगी, जहां इन्होंने प्राचीन शिला आकृतियों को बनाने की परंपरा को जीवित रखा। लाहुल की शिला आकृतियां लद्दाख और ज़ंस्कर से प्रभावित दिखती हैं, इनमें अधिकतर शिला आकृतियां दारचा से करगा के मध्य हैं। यह इलाका

तङति संगम से ऊपर तथा (ऊपरी लाहुल) के अंतर्गत आता है। बौद्ध धर्म का आगमन लाहुल में पहली शताब्दी ईसा पूर्व माना गया है, उसके बावजूद बुद्ध वाणी यहां की आदिम धर्म की जड़ों को हिलाने में नाकाम रही थी ऐसा पेट्रोग्लिफ को देखकर आभास होता है। ईसा के प्रथम सहस्राब्दी में यहां भारतीय बौद्ध धर्म के अस्तित्व के प्रमाण के अलावा पेट्रोग्लिफ के सौजन्य से पुरातन धर्म (संभवतः बोन/पोन) के प्रमाण भी मिलते हैं। लाहुल के संदर्भ में हम पुरातन धर्म को 'Ibex cult' की संज्ञा दे सकते हैं जिसे प्राचीन काल में इज़राईल, मैसोपोटामिया, ईरान, मध्य एशिया, उत्तरी पाकिस्तान तथा उत्तरी भारत के ज़ंस्कर, लद्दाख, स्पीति में भी मान्यता प्राप्त थी। लाहुल के निचले पड़ोसी राज्यों में इस रॉक कला (Ibex cult) के अस्तित्व की फिलहाल कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है, इसके बावजूद कुल्लू में देव मंदिरों के शीर्ष दरवाज़े के ऊपर तथा दीवार में आईबेक्स के सींग टंगे रहते हैं। 'Ibex cult' के अवशेष आज भी लाहुल के विभिन्न घाटियों में विशेषकर लाहुली त्यौहारों, धार्मिक अनुष्ठानों और सांस्कृतिक प्रथाओं में जीवित हैं। लाहुल के पुरातन धर्म को 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश ऐसिस्टेंट कमीश्नर ए. हारकोर्ट ने 'लुङ पे छोस' कहकर परिभाषित किया था।

जॉर्ज रोरिक के पश्चात राहुल सांकृत्यायन ने सन् 1933/37 में लाहुल यात्रा के दौरान यहां के पुरातत्व के अहमियत को समझा, इसके बावजूद आज तक यहां शोधार्थियों द्वारा पुरातत्व की पहल नहीं की गई। लाहुल घाटी में पिछले दो वर्षो के पेट्रोग्लिफ सर्वे में प्राप्त आकृतियों ने लाहुल को भी लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति, उत्तरी पाकिस्तान और पश्चिम तिब्बत की भांति रॉक कला के मानचित्र में ला खड़ा कर दिया है। इसी सर्वे के दौरान मुझे ऐसे कई संदिग्ध स्थल भी दिखे जहां मृतक समाधियां होने की प्रबल सम्भावना है। बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दौर में मिशनरी फ्रैंके ने केलंग के ऊपरी पहाड़ी ढलान पर मृतक समाधि का ज़िक्र किया था। भविष्य में स्पीति और किन्नौर की तर्ज़ पर लाहुल में भी पुरातत्व विभाग इन मृतक समाधियों के अवशेषों पर शोध आरंभ कर, यहां के प्राचीनतम इतिहास की पहेली को सुलझा सकते हैं। आगामी वर्षों में नए पेट्रोग्लिफ साइट्स की प्राप्ति की भी प्रबल संभावना है। इसके अलावा मृतक समाधियां भी मिले तो कोई हैरानी नहीं होगी। इस प्रकार लाहुल के अंधेरयुक्त प्रागैतिहासिक काल पर रोशनी पड़ेगी तथा उसके पड़ोसी राज्य लद्दाख, ज़ंस्कर, स्पीति, उत्तरी पाकिस्तान और पश्चिम तिब्बत से प्राचीन संबंध स्पष्ट हो सकेंगे।

संदर्भ :

BELLEZZA . J : Tibet Archaeology.
BELLEZZA . J and Bruneau . L . 2013. The Rock art of Upper Tibet and Ladakh : Inner Asian Cultural adaptation, regional differentiation and Western Tibetan Plateau style.
BRUNEAU . L . 2011. Influences of Indian Cultural area in Ladakh in the 1st millenium AD. The Rock Inscription evidence.
FRANCKE . A : The Ancient History of Lahoul , Unpublished
LINROTHE . R . 2017. Seeing into Stone : Pre Buddhist Petroglyphs and Zanskar's earliest inhabitants.
MAILLAND . F and BASTONI . R . 2015. The Har Karkom Plateau as an open air worshipping place during Chalcolithic and Bronze age.
MAILLAND . F. 2015. Ibex, Crescent and Swastika as symbols of a Lunar God in the Rock art of the Ancient Near East and Central Asia.
MANI B. R . 2001. Rock art of Ladakh : Glimpses of Economic and Cultural Life.
ROERICH .N. 1933 . Fiery Stronghold.
SMITH .D.R. The Ibex as an Iconographic Symbol in Ancient Near East.
Stutchbury E. 1991. Rediscovering Western Tibet : Gompa, Chorten and the continutity of Practice with a Tibetan Buddhist Community in the Indian Himalaya.
VAN DRIEM.G . 2009 . Zhangzhung and its next of kin in the Himalayas .
WIDMER . M . 2021. Reconstructing the Linguistic prehistory of Western Himalayas : endangered minority languages as a window to the past.
WIKIPEDIA . Archaeology Definition
DORJE -T- 2011- सनातन बोन धर्म और जङ जुङ भाषा
LOPPA - S - 2003 - दछङ : तीरन्दाज़ी का पर्व
NAMGYAL- T- साक्षात्कार
SANKRITYAYAN- R -1948- किन्नर देश में

सम्पर्क : ग्राम गुंदला (लाहुल)
मो. : 7018369494

लाहुल के वीर सिपाही - 1948 के लद्दाख के रक्षक

✍ तोबदन

सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ। इसके साथ ही एक अलग देश पाकिस्तान का निर्माण हुआ। पाकिस्तान ने तुरन्त कश्मीर में घुसपैठ किया। बलतिस्तान और गिलगित को अपने कब्ज़े में कर लिया। अगला आक्रमण लद्दाख पर होना निश्चित था। परन्तु लद्दाख में तुरन्त सैन्य बल भेजना भी संभव नहीं था।

लद्दाख चारों ओर से पर्वत शृंखलाओं से घिरा हुआ है। यहां के लोगों का बाह्य क्षेत्रों से आना-जाना केवल पर्वत शृंखलाओं पर स्थित जोतों को पार कर के ही होता था। सर्दी का मौसम था। इन पर भारी बर्फ की तह जमी हुई थी और बर्फ लगातार गिर भी रही थी। ये सभी जोत बन्द थे। लद्दाख के युवाओं ने प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को तार से प्रार्थना भेजी कि उन्हें सामान और सैनिक भेजा जाए। हम लड़ने के लिए तैयार हैं। इधर डोगरा रेजीमेंट में एक बटालियन में लाहुल और लद्दाख से सिपाही और अधिकारी थे। दूसरे महायुद्ध के बाद अधिकतर सेवा मुक्त होकर घर चले गए थे। लगभग 15–20 ही रह गए थे। मेजर पृथीचंद, मेजर खुशहाल चन्द और सूबेदार भीम चन्द अफसर थे। बाकी सिपाही व एनसीओ थे। ये अभी कश्मीर में लड़ रहे थे। उन्होंने आपस में सलाह-मशवरा किया। मेजर पृथी चन्द इसके लीडर थे। निर्णय हुआ कि लद्दाख को बचाना आवश्यक है। अब नहीं बचा पाए तो लद्दाख सदा के लिए हमारे हाथ से चला जाएगा। इसलिए हमें तैयार होना है और तुरन्त कार्यरत होना है। रक्षा अधिकारियों से भी अनुमति मिल गई। आवश्यक सैनिक सामान श्रीनगर से मिलने का आदेश हुआ। इस पार्टी में कुल 16 सदस्य थे : 15 सैनिक और एक असैनिक। इनमें प्रथम आठ, तीनों अधिकारियों सहित, लाहुल से थे। इस युनिट को 'X Column' of 'Z Division' नामित किया गया।

इस कॉलम के सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं।

1. मेजर (बाद में कर्नल) पृथी चन्द, महावीर चक्र, कमांडर।
2. मेजर (बाद में ले. कर्नल) खुशाल चन्द, महावीर चक्र।
3. सूबेदार (बाद में केप्टन) भीमचन्द, वीरचक्र, बार।
4. नायक मिंडोल।
5. लांस नायक नवंग।
6. लांस नायक कर्म सिंह।
7. सिपाही फुन्छोग।
8. सिपाही (बाद में हवलदार) तोबगे राम, वीरचक्र। सभी लाहुल से।
9. सिपाही सोनम।
10. सिपाही लोबज़ङ।
11. सिपाही टशि छेरिङ।
12. सिपाही टशि, ज़ंखर। ये सभी लद्दाख से।
13. सिपाही बहादुर सिंह, किन्नौर से।
14. सिपाही दलीप सिंह।
15. नायक पटवारी मल, सिगनल रेजिमेंट। दोनों कांगड़ा से।
16. डिविजनल इंजिनियर, सोनम नोर्बु। लद्दाख से।

इनमें कर्नल पृथी चन्द का गांव खंगसर है।

ले. कर्नल खुशाल चन्द का गांव गेमुर है।

केप्टन भीमचन्द का गांव मेह, खंगसर है।

हवालदार तोबगे राम का गांव नुकर, तिनन घाटी है।

शेष में से कुछ का हम परिचय

प्राप्त करने में सफल हुए हैं-

1. नं 4 पर नायक मिंडोल, घर का नाम मेफा योगमा, गांव मेह।

2. लांस नायक नवंग, करा योगमा, जिस्पा।

3. लांस नायक कर्म सिंह, करा योगमा, जिस्पा।

इन सब में से तोबगे राम गांव नुकर, तिनन घाटी से हैं। शेष सभी स्तोद से हैं।

यह बहादुर जवानों का कालम सामान भी बहुत कम था।

इन्हें आर्मी डिविज़न की ओर से निम्न प्रकार के निर्देश दिये गये थे।

1. तुम लद्‌दाख की ओर जाओगे।

2. तुम वहां अस्थायी फौज तैयार करोगे और उन्हें प्रशिक्षित करोगे।

3. तुम शत्रु के घुसपैठियों को रोक कर लद्‌दाख को बचाओगे। महत्वपूर्ण स्थानों की सुरक्षा करना और पुलों को बचाना तुम्हारी ज़िम्मेवारी होगी।

4. तुम हवाई पट्‌टी का निर्माण करोगे। के निवासियों को युद्ध की परिस्थिति की जानकारी दी, उसके लिए तैयार होने और उस में काम करने के लिए प्रेरित किया। नौजवान युवकों को सेना में भर्ती के लिए प्रेरित किया और उन्हें ट्रेनिंग दी। इनमें लड़ने वालों की संख्या हज़ारों में थी। उनमें से 200 को रेगुलर आर्मी के लिए तैयार कर 7 जे-के मिलिशिया यूनिट बनाया। यह यूनिट पक्का होकर लद्‌दाख सकाउट्स बना। यही प्रशिक्षित योद्धा

कैप्टन भीम चन्द के नेतृत्व में गठित पहली लद्‌दाखी नागरिक सेना

14 फरवरी को श्रीनगर से चला और 26 को जोज़ीला पार किया। यात्रा में कुल 23 दिन लगे, जिसमें से वे 13 दिन चले और शेष दिन बर्फ के कारण उन्हें रास्ते में रुकना पड़ा। वे 9 मार्च को लेह पहुंचे। यह टुकड़ी श्रीनगर से मध्य शीत काल में जोज़िला पार करके लेह पहुंचा। आज तक कभी किसी ने इस मौसम में जोज़ीला पार नहीं किया था। सर्दी से बचने का सोनम नोरबू, डिविजनल इंजिनियर की सहायता से।

5. जब तक सामान्य सैन्य बल नहीं पहुंचते तुम गोरिल्ला युद्ध से दुश्मन को दूर रखोगे।

6. करगिल तक तुम संचार का साधन चालू रखोगे।

7. अधिकतर तुम्हें स्थानीय संसाधनों पर निर्भर रहना होगा।

यहां सर्वप्रथम उन्होंने लद्‌दाख 1962—63 में चीन के साथ लड़े और इन्होंने ही फिर लद्‌दाख को बचाया।

सोनम नोरबु के मार्गदर्शन से एक महीने में कच्चा हवाई ग्राउंड तैयार किया। मिलिशिया फौज और अन्य बहुत से युवकों को प्रशिक्षण देने के साथ साथ गोरिल्ला युद्ध भी लड़ते रहे। रेगुलर सेना के आने के बाद उनको साथ लेकर लड़े। उनसे भी ये

अगुआई में रहे और इस प्रकार लद्दाख को बचाया। केप्टन भीमचन्द युद्ध में सबसे माहिर थे। हर कठिन परिस्थिति में उनको बुलाया जाता था। वे पहाड़ के ऊपर चोटी पर होते और दुश्मन नीचे होते थे। वे दुश्मन को छोड़ कर उनके पीछे पहुंच जाते और उन पर मार करते थे। लाहुल के चार बहादुर सिपाहियों को इसमें मैडल मिले हैं।

लाहुल के इन X Column के सैनिकों को लद्दाख के रक्षक अर्थात 1948 में पाकिस्तान से लद्दाख को बचाने वाले कहा जाता है। कहा जाता है कि अगर लाहुल के ये सिपाही नहीं होते तो देश का नक्शा, आकार और परिदृश्य भिन्न होता।

उक्त सूची के अलावा हमें दो और सूचियां प्राप्त होती हैं, जिनमें लाहुल से इसी लड़ाई में लड़ने के लिए लद्दाख को गए, और वास्तव में वे यहां लड़े भी, ऐसे योद्धाओं के नामों की सूची है।

प्रथम सूची X Column के सदस्यों की सूची है। यह सूची हमें कर्नल पृथी चंद, जो इस युद्ध के कमांडर थे, के द्वारा प्राप्त होते हैं।

ये वे वीर सैनिक हैं जिन्होंने स्वेच्छा से मध्य शीत काल में भी जोज़ीला पार करके, जो उस समय तक कभी किसी ने नहीं किया था, लद्दाख जाने और वहां जाकर दुश्मन से लड़ने के लिए स्वयं तैयार हुए और फिर उन्होंने ऐसा किया। उन्होंने पूरी तरह से अपने आप को न्योछावर कर दिया था। इन्होंने लद्दाखियों को तैयार किया और फिर ये सब मिलकर लड़े। इन्होने लद्दाख ऑप्रेशन का शुभारम्भ किया और इसको नेतृत्व दिया। ये लद्दाख के वास्तविक रक्षक हैं।

उन्होंने दोहरा खतरा मोल लिया था। एक तो लड़ाई का और दूसरा मध्य सर्दी के मौसम में जोज़िला पार करने का जो पहले किसी ने कभी नहीं किया था। लेकिन सब लड़े सब बहादुर थे। यह सूची सन 1948 में उनके श्रीनगर सें 14 फरवरी को चलने से पहले बनी होगी। यह मूल सूची है।

दूसरी सूची संभवतः सन् 2000 के लगभग बनी होगी। इस सूची का शीर्षक है, 'लाहुल के उन बहादुर योद्धाओं की यादगार में जिन्होंने सन 1948 में लद्दाख को बचाया था'। यह एक मौका था समारोह का जो उनकी यादगार और सम्मान में मनाया गया था। इस सूची में नीचे एक उल्लेख दिया गया है, जिसमें लिखा है, 'उनका सहयोग, भारत के भीतर लद्दाख को लद्दाखियों के लिए बचाने में, कभी नहीं भुला पाएंगे। 1947—49 में उनके नेतृत्व ने लद्दाख को बचाया। अन्यथा भारत का मानचित्र भिन्न आकार औार भिन्न दृश्य का होता।'

यह व्यक्तियों की सूची है जिनमें ग्यारह लाहुल से बताए गए हैं। शेष अन्य जो पहली सूची में हैं, वे सभी है। इसमें लाहुल के उन सभी योद्धाओं के नाम हैं जिनका नाम प्रथम सूची में है। परन्तु यहां लाहुल से आए व्यक्तियों की संख्या 8 से बढ़ा कर 11 हो गई है। यहां संख्या 4 पर एक नया नाम सिपाही अंगरूप जोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त सोनम और सिपाही लोबज़ङ जो प्रथम सूची में लद्दाख में थे यहां लाहुल की सूची में जोड़ा गया है।

तीसरी सूची सैनिक वैलफेयर आफिस कुल्लू ने 2021 में जारी किया है। इसका शीर्षक है, 'लाहुल-स्पिति के सैन्य जवान जो पाकिस्तानी घुसपैठियों को पीछे भगाने में कामयाब रहे और लद्दाख को 1948 के सैनिक कार्यवाही में बचाने में कामयाब रहे।' इनमें 15 व्यक्तियों के नाम हैं और सभी लाहुल से बताए गए हैं दूसरे स्थानों से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम यहां नहीं हैं। इस सूची में सभी सैनिकों के नाम के साथ उसका पूरा पता जैसे गांव का नाम डाकखाना आदि दिया गया है।

तीनों सूचियों में चारों मैडल प्राप्तकर्ताओं के नाम हैं। परन्तु प्रथम सूची में मेडल धारकों के नाम के साथ उनके उस समय के औहदे लिखे गए हैं, जैसे मेजर पृथी चन्द परन्तु

बाद के दोनों सूचियों में इनको कर्नल लिखा गया है। जो कि उनका यह अन्तिम उच्चतम ओहदा है। ऐसे ही अन्य तीन मैडल प्राप्तकर्ताओं के हैं।

तीनों स्रोत विश्वसनीय हैं। ये तीनों सूचियां अलग अलग समय पर भिन्न-भिन्न स्रोतों से प्राप्त हुए हैं। यहां हम यह कह सकते हैं कि तीनों सूचियां अपनी अपनी जगह सही हैं। ये जो तीनों सूचियों में नाम हैं और लाहुल से बताए गए हैं, सभी लाहुल से हैं, सिवाय दूसरी सूची में दिये गये दो नामों के जो लद्दाख की बजाए लाहुल से दिखाये गये हैं। वे भारतीय सेना के सैनिक थे। वे लद्दाख में 1948 में पाकिस्तान के विरुद्ध लड़े। सब बहादुर थे। परन्तु जिनका नाम दूसरी और तीसरी सूची में जोड़ा गया है, वे ऐसे ही हैं जैसे कि लद्दाख में अन्य सभी सैनिक लड़े थे। उनका X column से कोई संबंध नहीं है। जो सम्मान और गौरव X column के सदस्यों को प्राप्त है वह अन्य किसी को उपलब्ध नहीं है। उनकी उपलब्धि असामान्य है।

इनमें सम्भवतः कुछ लोग वे हैं जो द्वितीय महायुद्ध के बाद सेना की सेवा छोड़ कर घर आ गए थे। परन्तु 1948 में एमरजैंसी होने से वे दोबारा से सेना में सम्मिलित हो गए और फिर वे रेगुलर गोरखा फौज के साथ, जो लाहुल से होकर गई थी, के साथ लद्दाख गए। वे ऐसे ही हैं जैसे कि अन्य बहुत से सैनिक लड़े थे।

इस मौके पर लाहुल के एक और बहादुर योद्धा ने लद्दाख में लड रहे सेना की सहायता करने में बहुत अग्रता दिखाई। सेना के लिए रसद कुल्लू और लाहुल से होकर जानी थी। सेठ पंछी राम बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति थे। वे लाहुल के ज़ोखङ गांव, पट्टन, से हैं और मनाली में सरकारी ठेके का काम करते थे। सेना को सामान ले जाने के लिए बहुत से घोड़े और कुली चाहिए थे। सरकारी विभाग और संस्थाएं बहुत कम मदद कर पाए थे। इसलिए उन्होंने पंछी राम से सम्पर्क किया और उन्होंने यह मांग पूरी की। सेना के विभाग ने उन्हें उनके इस बहुमूल्य योगदान की सराहना करते हुए उन्हें प्रमाण पत्र जारी किया है। उसका अनुवाद यूं है।

प्रमाण पत्र :

मनाली के श्री पंछी राम ने सेना की बहुत सहायता की है। उन्होंने बड़ी संख्या में घोड़ों और कुलियों का प्रबंध किया। सन 1948 में पाकिस्तान के विरुद्ध अभियान में भारतीय सेना के एक बटालियन के लिए सामान ले जाना था।

भारत सरकार ने कांगड़ा, मंडी और कुल्लू के स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों को आदेश दिया था कि वे सेना की रसद को मनाली से लेह प्रस्थान करने में मदद करें। मुझे सैनिक अधिकारियों द्वारा सिविल अधिकारियों से सम्पर्क करने के लिए अधिकृत किया गया है और यह निश्चित करने के लिए कि भारत सरकार द्वारा निर्देशित आदेशों का वे अनुपालन पूरी तरह से करें।

लगभग 2200 कुली और 1200 घोड़ों की आवश्यकता थी। इस कार्य के लिए यह बहुत बड़ी भारी मात्रा होने के कारण सिविल प्रशासन इसका केवल एक अंश ही जुटा पाई। क्योंकि यह प्रस्थान बहुत आवश्यक था, पंछी राम, जो क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, से व्यक्तिगत रूप से मिला और उनसे सहायता के लिए आग्रह किया। उन्होंने तुरन्त अपने आदमी दूर-दूर तक भेजे और बड़ी संख्या में घोड़ों और कुलियों की सेना खड़ी कर निश्चित तिथि तक उपलब्ध करवा दी।

इस प्रस्थान को सफल बनाने में उनके संसाधनयुक्त होने और उनके कठिन परिश्रम के फलस्वरूप यह सब हो सका। इसमें उनका कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं है।

बटालियन हेड क्वार्टर
पठानकोट 7—11—48
चन्दर सिंह मेजर
सम्पर्क अधिकारी

सम्पर्क : तोबदन,
मियां बेहड़, ढालपुर, कल्लू - 175101
मो. : 8219244428

✍ सतीश कुमार लोप्पा

लाहुल में गुग्गा गाथा- अंच़ेला-बंच़ेला का गीत

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भू-भागों में गुग्गा देवता या गुग्गा जाहर पीर की बड़ी मान्यता है। उनकी सांपों से रक्षा करने वाले तथा बुरी शक्तियों और जादू-टोने के दुष्प्रभावों से निजात दिलाने वाले देवता के रूप में मान्यता है। रक्षा बन्धन और गूगा नवमी के बीच गायक मण्डलियों द्वारा लोगों के घरों में जाकर गुग्गा गाथा गा कर सुनाने की परम्परा प्रदेश के कई भागों में प्रचलित है। यद्यपि लाहुल क्षेत्र में इस तरह की परम्परा तो नहीं है और न ही कहीं गुग्गा देवता के मंदिर पाए जाते हैं। फिर भी गुग्गा गाथा का एक प्रसंग लाहुल में घुरे गीत में पाया जाता है, जिसे अंच़ेला और बंच़ेला के गीत के रूप में देख सकते हैं। इस गीत में गुग्गा देवता के जन्म और उनकी माता बंच़ेला यानि बाछला के साथ विमाता अंच़ेला यानि आछला द्वारा छल किए जाने का प्रसंग आता है। किसी भी अन्य घुरे के समान ही इस गीत की भी गायन शैली यही है कि पहले एक या दो मुख्य गायक गीत की एक पंक्ति को दो बार गाते हैं और फिर शेष जन समूह उसी पंक्ति को दो बार दोहराता है। यही सिलसिला अंत तक चलता है। इस गीत को गाने के लिए किसी समय विशेष का बंधन नहीं है, कभी भी कहीं भी गाया जाता है। यह घुरे गीत इस प्रकार है-

ए अंच़ेला बंच़ेला दुये सोदुरू बेइणी जी।

अंच़ेला और बंच़ेला यानि आछला और बाछला दो जुड़वां बहनें थीं।

ए बंच़ेला राणी गडूदेला ब्यायेला।
ए अंच़ेला राणी गोड़ा बंगड़ा ब्यायेला।

बंच़ेला रानी गडूदेला राज्य में ब्याही गई और अंच़ेला रानी जो है गोड़ बंगड़ा राज्य में ब्याही गई।

ए बंच़ेला रानी पूतरू फाला नायी जी
बंच़ेला रानी को पुत्र फल की प्राप्ति नहीं हो सकी।
ए पाधा ए पंडीता शदी कारी आणी जी
हेरा ओ पंडीता पातीरी हेरो जी।
ए बंच़ेला रानी पूतरू फाला नायी जी।

पाधा और पंडित बुला कर लाए गए और उन से निवेदन किया गया कि हे पंडित कृपया पत्री देखें और बताएं कि क्या कारण है कि रानी बंच़ेला पुत्र फल से वंचित हैं।

ए पाधा ए पंडीता पातीरी हेरी जी।
ए पातीरी अन्दूरे करमे फाला नयां जी।
ए पातीरी अन्दूरे धरमे फाला होन्दे जी।

पाधा पंडितों ने पत्री बांचने पर पाया कि पत्री के अन्दर लिखा था कि रानी के लिए कर्मफल अनुसार पुत्र योग नहीं है। पत्री में यह भी लिखा था कि धर्म फल अनुसार ऐसा योग होने की संभावना है अर्थात् यदि रानी ऐसे धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त हो जाएं और उस से विधाता प्रसन्न हो जाएं तो पुत्र फल प्राप्ति के योग बनना संभव है।

ए कुलूजे री प्रोहीता शदी कारी आणी जी।
हेरा ओ प्रोहीता पातीरी हेरो जी।
ए कुलूजे री प्रोहीता पातीरी हेरी जी।

तो फिर कुल पुरोहित को बुला कर लाया गया। उन से भी यही निवेदन किया गया कि हे कुल पुरोहित, आप भी अपनी पत्री देखें। ऐसा निवेदन करने पर कुल पुरोहित ने अपनी पत्री बांची।

ए पातीरी अन्दूरे करमे फाला नयां जी।
ए पातीरी अन्दूरे धरमे फला होन्दे जी।

कुल पुरोहित ने भी पत्री में यही पाया कि रानी के लिए कर्मफल अनुसार पुत्र योग नहीं है लेकिन धर्मफल अनुसार पुत्र योग होने की संभावना है।

ए बंच़ेला ए राणी धरूमा चालाया जी।
ए धरूमेरी खबूरा दूरा दूरा गेया जी।

पाधा पण्डित और कुल पुरोहित की भविष्यवाणी जान लेने के बाद बंचे़ला रानी ने स्वयं को पूरी तरह धर्म की ओर प्रवृत्त कर लिया और प्राणपण से धर्म और परोपकार के कार्यों में लग गई। शीघ्र ही उनकी इस धर्मचर्या की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई।

ए गुरू ए गुरखूनाथा गुरखू टीला होन्दे जी।
ए धरूमेरी खबूरा गुरखू टीला भुये जी।

और पुकार लगाई कि हे परोपकारी, परोपकार हेतु हमें अन्न का दान दें। शिष्यों की पुकार सुन कर बंचे़ला रानी ने परोपकार हेतु अन्न का दान दिया।

ए देया ओ धरामी सोने दाना लोड़ी।
ए बंचे़ला ए राणी सोने दाना दिया जी।

शिष्यों ने पुनः पुकारा, हे परोपकारी, मुझे सोने का दान चाहिए। इस पर बंचे़ला रानी ने सोने का दान

ऐ जोड़ी ए चे़ला ठाःठाना भुया जी।
ए जोड़ी ए चे़ला गोरखू टीला गेया जी।
ए गूरू ए गुरखू नाथा खबूराना पूछे।
ऐ जोड़ी ए चे़ला ठाःठाना भुये जी।
ए बंचूले री धरूमा अन्ताये पारे।

परोपकार के प्रति रानी के समर्पण को देख कर दोनों शिष्य दंग रह गए। फिर वे दोनों वापिस गोरख टीले पर चले गए। गुरु गोरख नाथ ने उनसे समाचार बताने को कहा। दोनों चेलों ने बताया कि हे गुरुदेव बंचे़ला

योगी गुरु गोरखनाथ तथा उनका प्रण

उस समय गुरु गोरखनाथ गोरख टीले पर वास कर रहे थे। गोरख टीले पर भी रानी के धर्म और परोपकार की खबर हो गई। गुरु गोरख नाथ ने रानी के परोपकार की बातों की सच्चाई पता लगाने के लिए अपने दो शिष्यों को वहां जाने का ओदश दिया।

ए जोड़ी ए चे़ला बंचूलेरी प्रोउढ़ी जी।
ए देया ओ धरामी धरूमेरी सेरा।
ए बंचे़ला ए राणी धरूमेरी सेरा दिया जी।

गुरु का आदेश पाते ही दो शिष्य बंचे़ला के द्वार पर जा पहुंचे

दिया।

ए देया ओ धरामी रूपे दाना लोड़ी।
ए बंचे़ला ए राणी रूपे दाना दिया जी।

शिष्य पुनः- पुनः पुकार लगाने लगे, हे परोपकारी, मुझे चांदी का दान चाहिए। बंचे़ला रानी ने उन्हें चांदी का दान दिया।

ए देया ओ धरामी कपूड़े री दाना लोड़ी।
ए बंचे़ला ए राणी कपूड़े री दाना दिया जी।

हे परोपकारी, हमें कपड़े का भी दान दें। बंचे़ला रानी ने उन्हें वस्त्र भी दान किए।

के धर्म और परोपकार के कार्यों का कोई अंत नहीं है, जिसे देख कर हम दोनों दंग रह गए हैं। शिष्यों के मुख से ऐसा सुन कर गुरु गोरख नाथ ने स्वयं जा कर बंचे़ला के धर्म-कर्म और परोपकार की थाह लेने का निर्णय लिया।

ए गूरू ए गुरखू नाथा बंचूले री प्रोउढ़ी जी।
ए गूरू ए गुरखू नाथा साधू रे भेषे।

गुरु गोरख नाथ बंचे़ला रानी के द्वार पर साधू के भेष में उपस्थित हो गए

और पुकार लगाई।

ए देया ओ धरामी धरूमेरी सेरा।
ए बंचे़ला ए राणी धरूमेरी सेरा दिया जी।

हे परोपकारी, परोपकार हेतु अन्न का दान दें। बंचे़ला रानी ने परोपकारार्थ अन्न का दान दिया।

ए देया ओ धरामी दूधे दाना लोड़ी।
ए बंचे़ला ए राणी दूधे दाना दिया जी।

गुरु रूपी साधू ने फिर पुकारा, हे परोपकारी, मुझे दूध का दान दें। रानी बंचे़ला ने तब दूध का दान दिया।

ए देया ओ धरामी सोने दाना लोड़ी।
ए बंचे़ला ए राणी सोने दाना दिया जी।

हे परोपकारी, मुझे सोने का दान चाहिए। बंचे़ला रानी ने सोने का दान दिया।

ए देया ओ धरामी रूपे दाना लोड़ी।
ए बंचे़ला ए राणी रूपे दाना दिया जी।

हे परोपकारी, मुझे चांदी का दान चाहिए। बंचे़ला रानी ने चांदी का दान दिया।

ए देया ओ धरामी कपूड़ा ए लाणा।
ए बंचे़ला ए राणी कपूड़ाना दिया जी।

हे परोपकारी, मुझे पहनने के लिए वस्त्र दें। बंचे़ला रानी ने वस्त्रों का दान दिया।

ए देया ओ धरामी घोड़े दाना लोड़ी।
ए बंचे़ला ए राणी घोड़े दाना दिया जी।

हे परोपकारी! मुझे घोड़े का दान चाहिए। बंचे़ला रानी ने घोड़े का दान दिया।

ए गुरु ए गुरखू नाथा कोढ़ी भेषा किया जी।
ए घोड़े री दाना हटी कारी दिया जी।
ए कुणू चरेला कुणू मेरे स्वरेला।

अब गुरु गोरख नाथ ने कोढ़ी का भेष बनाया और घोड़े का दान लौटाते हुए कहा मेरा कौन इस घोड़े को चारेगा और कौन इस पर सवारी करेगा।

ए बंचे़ला ए राणी कोढ़ी सेवाना किया जी।
ए सेवा ऐ कीती मवे दूखा पेया जी।

इस तरह अब बंचे़ला राणी उस कोढ़ी की सेवा में जुट गई। उस सेवा से असंतुष्ट होकर कोढ़ी रूपी गोरख नाथ ने कहा कि तुम जिस ढंग से सेवा कर रही हो उससे मुझे बहुत पीड़ा हो रही है।

ए शिरे दिती बोउहारा जीह्बे दीती चोउका।
ए गुरु ए गुरुखू नाथा प्रगूड़ा ना भुये जी।

पीड़ा की बात सुन कर रानी बंचे़ला उस कोढ़ी के ज़ख्मों को अपने सिर के बालों से बुहारने लगी और अपनी जीभ से चाट कर ज़ख्मों को साफ करने लगी। रानी के सेवाभाव की पराकाष्ठा को देख कर गुरु गोरख नाथ अपने असली रूप में प्रकट हुए।

ए बंचे़ला ए राणी गुरु सेवना किया जी।
ए गुरू ए गुरखू नाथा बोलूंदे लागी।
ए बंचे़ला ए रणी किजी ताएं धरूमा।

अब बंचे़ला रानी गुरु की सेवा में लीन हो गई। इस पर गुरु गोरख नाथ ने कहा कि हे बंचे़ला रानी, इतना धर्म-कर्म और परोपकार के कार्य जो तुम कर रही हो, इसका प्रयोजन क्या है।

ए गुरू ए गुरखू नाथ पूतुरु फाला नयां जी।

रानी ने उत्तर दिया कि हे गोरख नाथ जी, मेरे भाग्य में पुत्र फल नहीं है। पुत्र फल की इच्छा से ही मैं यह सब धर्म-कर्म कर रही हूं।

ए गुरू ए गुरखू नाथ टीले जगे जी।
ए गुरू ए गुरखू नाथा शवे शाठा चे़ला जी।
ए शवे शाठा चे़ला गुरखू टीला होन्दे जी।
ए बंचे़ला ए राणी गुरखू टीले अये जी।

गुरु गोरख नाथ ने कहा कि तुम्हारी इस कामना के निमित्त तुम गोरख टीले पर जग का आयोजन करो और बताया कि मेरे एक सौ साठ चेले अथवा शिष्य हैं जो गोरख टीले पर रहते हैं। हे बंचे़ला रानी तुम अमुक समय पर गोरख टीले पर आ जाना। ऐसा कह कर गुरु गोरख नाथ अदृश्य हो गए।

ए अंचे़ला ए राणी अगे ध्याड़ी गेया जी।

लेकिन बताए गए समय से एक दिन पहले बंचे़ला की बहन अंचे़ला रानी गोरख टीले पर पहुंच गई। गुरु ने उसे बंचे़ला रानी समझा और कहा कि तुम्हें तो एक दिन बाद आना था। पर अंचे़ला ने अपनी बातों से गुरु को पतिया लिया और गुरु ने उसे पुत्र फल प्रदान कर दिया और वह अपने घर लौट गई। गुरु के आशीष से अंचे़ला को पुत्र और पुत्री रूप में संतान प्राप्ति हुई।

ए बंछ़ेला ए राणी गुरखो टीले गेया जी।
ऐ भोजणा लेये गुरखो टीले गेया जी।

अगले दिन यानि गुरु द्वारा बताए दिन बंछ़ेला रानी गोरख टीले पर पहुंच गई। वह अपने साथ गुरु और उनके शिष्यों के लिए नाना प्रकार के व्यंजन/ भोजन लेकर पहुंची ताकि जग किया जा सके।

ए गुरू ए गुरखू नाथा नागा लोका गेया जी।
ए शवे शाठा छ़ेला एकी नाये देखी।

बंछ़ेला को दोबारा गोरख टीले पर आया देख कर गुरु गोरख नाथ अपने शिष्यों सहित नाग लोक में चले गए। एक सौ आठ चेलों में से एक भी वहां दिखाई नहीं दिया।

एक बाराये बरूषे जपे तापा बैठी जी।
ए बंछ़ेला ए राणी नैणा कोपा बैठी जी।

गुरु गोरख नाथ और उनके शिष्यों को टीले से नदारद पा कर बंछ़ेला रानी वहीं बैठ कर लगातार बारह वर्षों तक तपस्या करती रही। फिर भी गोरखनाथ प्रकट नहीं हुए तो रानी वहीं पर बेतहाशा आंसू बहाने लगी।

इस तरह गीत तो इस मोड़ पर आकर खत्म हो जाता है या यह भी संभव है कि गायक आगे की पंक्तियां भूल गए हों। लेकिन आगे की कहानी इस प्रकार कही जाती है।

कहते हैं कि अंछ़ेला रानी ने अपनी बहन बंछ़ेला रानी से छल किया था। उसे गुरु द्वरा बंछ़ेला को दिए जाने वाले पुत्र फल की बात मालूम हो गई थी। वह एक दिन पूर्व जाकर अपने लिए पुत्र फल प्राप्त कर लेती है। अगले दिन जब बंछ़ेला रानी गोरख टीले पर पहुंचती है तो गोरख नाथ सोचते हैं कि यह औरत कल ही आकर इच्छित फल प्राप्त कर चुकी है अब फिर से और कुछ मांगने आ पहुंची है। इस के मन में अब लालच जाग गया है। एक जैसी शक्ल होने के कारण गुरु गोरख नाथ से अंछ़ेला को पहचानने में चूक हो गई थी, वे उसे बंछ़ेला रानी ही समझ लिए थे। इस तरह नाराज़ होकर गुरु गोरख नाथ अपने शिष्यों सहित गोरख टीले से प्रस्थान कर नाग लोग में जाकर जप तप में लीन हो गए। उधर रानी बंछ़ेला गोरख टीले पर ही बैठ कर गुरु को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करने लगी। गुरु और शिष्यों के लिए जो भोजन लाया गया था, वो भी वहीं रखा रहा। रानी के तप के प्रताप से ही भोजन बारह वर्षों तक वैसा ही ताज़ा और गर्म रहा, उसमें भाप उठता रहा। फिर भी गुरु गोरखनाथ नहीं प्रकट हुए तो रानी बहुत रोने लगी। उसके आंसुओं से गोरख टीला भीग गया और धरती तर हो गई। रिसता हुआ आंसुओं का पानी नाग लोक तक पहुंच गया। गुरु गोरखनाथ ध्यान में बैठे थे। अचानक पानी की एक बूंद उनके कंधों पर गिरी तो उस अंग पर छाला पड़ गया। जलन से गुरु की आंख खुल गई। गुरु ने अपने दो शिष्यों को आदेश दिया, जाओ जाकर देखो कि गोरख टीले पर क्या हो रहा है। शिष्य गोरख टीले पर पहुंचे तो देखा कि बंछ़ेला रानी बारह वर्षों से गुरु की प्रतीक्षा में वहीं बैठी हुई आंसू बहा रही है, कौए उस के शरीर से मांस नोच लिए जा रहे हैं। और वहां रखा हुआ भोजन अभी तक ताज़ा है और उस पर से भाप उठ रही है। शिष्यों ने नाग लोग जाकर सारा हाल गुरु गोरख नाथ को सुनाया। यह सब सुनते ही गुरु गोरख नाथ अपने शिष्यों सहित गोरख टीले पर प्रकट हो गए। रानी ने खुद को धन्य हुआ मानकर गुरु की सेवा की। और सारा माजरा भी गुरु को बताया। यह सब किस्सा जान लेने पर गुरु गोरख नाथ ने बंछ़ेला रानी को पुत्र फल का वरदान दिया और छल से प्राप्त अंछ़ेला की संतान के लिए फिटकार दे दिया, जिसके प्रभाव से वे दुनिया में खाना-बदोशों की तरह यहां-वहां भटकने लगे।

गुरु से वरदान प्राप्त कर बंछ़ेला रानी घर लौट आई और उस के पुत्र और पुत्री के रूप में संतान प्राप्ति हुई। रानी बाछला की यही संतानें बाद में गुग्गा और गुगड़ी के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुई। यद्यपि यह भी सत्य है कि अंछ़ेला और बंछ़ेला की आछला और बाछला के रूप में पहचान अथवा इस घुरे गीत का गुग्गा गाथा के साथ किसी सम्बन्ध के बारे में लाहुल के लोक गायकों को कोई भान नहीं है।

सम्पर्क :
मो. : 9418350878

हिम शिखरों के सम्राट कर्नल प्रेमचंद

✍ छाया राम

भारत ही नहीं, सारे विश्व में 'कंचनजंगा के हीरो' कर्नल प्रेमचंद के नाम से ख्याति प्राप्त और अनेक विजय पदकों, जैसे कीर्ति चक्र, सेवा मेडल, विशिष्ट सेवा मेडल, मेक्ग्रेगोर पदक, इण्डियन-माऊंटेनियरिंग फाउंडेशन मेडल आदि अनेक सम्मानजनक पदकों से अलंकृत और सम्मानित कर्नल प्रेम जी आज हमारे बीच नहीं रहे। आज इस दुःख भरी घड़ी के अवसर पर उनकी दिवंगत आत्मा को हार्दिक श्रद्धांजलि।

मेरे विचार से उनकी उत्कृष्ट उपलब्धियों को देखते हुए कंचनजंगा के हीरो से भी ऊंचा दर्जा 'हिमशिखरों के सम्राट कर्नल प्रेमचंद' के नाम से याद किया जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। एक सैनिक अधिकारी के रूप में देश-विदेश के हिम-शिखरों की जोखिम भरी जानलेवा चढ़ाइयों पर चढ़ कर उनकी चोटियों पर भारत का विजय तिरंगा फेहराना उनके लिए एक खेल जैसा था। वास्तव में पर्वतारोहण उनका एक कौशल था। विश्व की सर्वोच्च चोटी एवरेस्ट उनके जीवन का लक्ष्य था पर भाग्य ने उनके स्वप्न को साकार होने में साथ नहीं दिया। एवरेस्ट पर उनके स्वयं चढ़ने से पहले महिला पर्वतारोही दल की नेत्री सुश्री बछेन्द्री पाल के एवरेस्ट चढ़ाई में मार्गदर्शन करने की ज़िम्मेदारी कर्नल प्रेम को सौंपी गई थी, जिसे कर्नल साहब से पूरी ईमानदारी और कुशलता से निभाया और इस तरह सुश्री बछेन्द्री पाल भारत की प्रथम महिला एवरेस्ट विजेता बनी। उसके बाद एक पर्वतारोहण अभियान में कर्नल साहब ने स्वयं चढ़ना था पर दुर्भाग्यवश दिल्ली में एक कार दुर्घटना में उनके बाजू और टांग में फ्रेक्चर आ गया, जिसमें कई महीने अस्पताल में रहना पड़ा। फलस्वरूप उनका एवरेस्ट का सपना अधूरा रह गया।

विश्व के कठिन व जोखिम भरे कंचनजंगा के अतिरिक्त उन्होंने नंदादेवी, कङरी, कुनकुन, चोमो ल्हरी, कोलाहोई और मध्य उत्तरी भूटान की चोटियों को विजय करने का सम्मान प्राप्त किया। कर्नल प्रेम की उपलब्धियों को देख कर मेजर जनरल सी. एस. नुग्याल ने उनको स्नो टाइगर का नाम देते हुए डोगरा रेजिमेंट 13 के उच्च्य अधिकारियों से सिफारिश की कि महान भारत के महान सपूत कर्नल प्रेम की जीवनगाथा को रेजिमेंट के म्यूज़ियम में संजो कर रखा जाए, ताकि भारतीय सेना की भावी पीढ़ियां उसे पढ़ कर प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

ये तो रहे कर्नल साहब के सैनिक जीवन के शानदर कार्यकाल और सम्मानजक उपलब्धियां। अब आएगा इनके विद्यार्थी जीवन के आज के विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय विशेषताओं का संक्षिप्त-सा परिचय।

सन् या वर्ष तो मुझे याद नहीं, पर वह जब छठी कक्षा में दाखिला लेने के लिए केलंग हाई स्कूल में आए, तब मैं वहां एक सीनियर टीचर के रूप में कार्यरत था। मैं उन दिनों स्कूल के मिडल क्लासों को गणित और एक दो अन्य विषयों को पढ़ाता था। कर्नल साहब उन दिनों अपने गुरुजनों के लिए एक आज्ञाकारी शिष्य के रूप में जाने जाते थे और अनुशासित विद्यार्थी थे। अपनी पढ़ाई के प्रति एकाग्रचित्त और पूरी लग्न उनके स्वभाव की विशेषता थी। बच्चों का बचपन से लेकर किशोर अवस्था तक प्रायः शरारती स्वभाव किसी न किसी रूप में दिखाई देने लगता है। विशेषकर अध्यापक की अनुपस्थिति में सारा कमरा शोर-शराबों से गूंज उठता है, पर प्रेमचंद किताब या कॉपी उठाकर पढ़ने में व्यस्त दिखाई देते। शरारत के मामले में वे अन्य विद्यार्थियों के मुकाबले में एक अपवाद स्वरूप थे। जहां तक मेरा अनुभव है छठी से लेकर मैट्रिक पास करने तक उन्होंने

चाहे पढ़ाई हो और चाहे अनुशासन, कभी भी शिकायत का मौका नहीं दिया। एक स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थी के बारे अपने मन-मस्तिष्क में एक नाम ज़रूर आता है। इस दृष्टि से प्रेमचंद मेरे प्रिय शिष्यों में से एक थे। मैट्रिक की परीक्षा उन्होंने केलंग स्कूल से प्रथम श्रेणी में पास की। उसके बाद उच्च शिक्षा के लिए कुल्लू चले गए थे। कॉलेज शिक्षा के दौरान ही उनका चयन सेना में एक अधिकारी के रूप में हो गया था।

कंचनजंगा की चोटी विजय करने के बाद वह एक बार अपने स्कूल और अपने गुरुजनों से मिलने केलंग स्कूल में आए। तब वह कंचनजंगा के हीरो के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे। हाई स्कूल में तत्कालीन सभी गुरुजनों के आग्रह करने पर वह सारे स्कूल को सम्बोधन करने के लिए राज़ी हो गए। इस तरह उन्होंने अपने सम्बोधन में विद्यार्थियों को पर्वतारोहण, वन्य प्राणियों की सुरक्षा तथा पर्यावरण का हमारे जीवन में महत्त्व को लेकर लाभकारी टिप्स दिए, जो कि जिज्ञासू छात्रों के लिए काफी महत्त्वपूर्ण था।

वह सेना से सेवानिवृत्त होकर सार्वजनिक जीवन में अपना योगदान देने में भी पीछे नहीं रहे। विशेषकर लाहुल का आलू सहकारी सोसाइटी (एल.पी.एस.) में मुझे भी उनके साथ काम करने का सुअवसर मिला था। वह सन् 1993 से 1996 तक एल. पी.एस. के अध्यक्ष थे और मैं उनकी कार्याकारिणी में एक सदस्य था। अध्यक्ष पद संभालते ही उन्होंने सोसाईटी में पाई जाने वाली त्रुटियों की गहराई से छानबीन की और उन्हें दूर करके सुधारने के लिए अनेक कदम उठाए। सर्वप्रथम सोसाईटी पर होने वाले अनावश्यक खर्चों पर रोक लगाई गई। इसके अतिरिक्त एल.पी.एस. की जन-कल्याणकारी सहकारी योजनाएं जैसे ट्रांसपोर्ट, मेंबर्ज़ के लिए सस्ते दामों पर राशन आपूर्ति, पेट्रेल-डीज़ल की सप्लाई, शिरढ़ बिहाल में मशरूम उत्पादन के साथ जूस, आचार, जाम, प्लांट को पूरी ईमानदारी और अनुशासित ढंग से संचालित करवाना आदि शामिल है। संस्था के कार्यालय में पाई जाने वाली छुटपुट अनियमितताओं पर अंकुश लगाना इनके कार्यकाल के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। पारदर्शिता और स्पष्टवादिता कर्नल प्रेमचंद के स्वभाव की प्रमुख विशेषता थी।

आज उनका हमारे बीच न होना हम सब को खल रहा है। ऐसी दुःखद घड़ी में उनके आत्मीयजनों को इस कष्ट को कम करने और सहन करने की भगवान शक्ति दें, ऐसी कामना है।

सम्पर्क : गुरुबेहड़, ढालपुर, कुल्लू।
मो. : 9418916917

चन्द्रताल परिवार स्व. कर्नल साहब को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

- सम्पादक

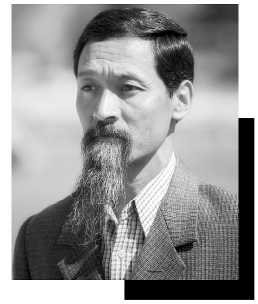

अलविदा कर्नल साहब

✍ सतीश कुमार लोप्पा

विश्व विख्यात पर्वतारोही भारतीय सेना के एक बहादुर समर्पित सैनिक और जांबाज़ अफसर कर्नल प्रेम साहब हमारे बीच नहीं रहे। 4 अक्तूबर, 2022 को उन्होंने अपने कुल्लू स्थित आवास में अंतिम सांसें ली और इस मर्त्य लोक को सदा के लिए अलविदा कह कर परमधाम को प्रयाण कर गए। यह उनका 81वां वर्ष था, वे कुछ अर्से से बीमार चल रहे थे। संभवतः तीन या चार सप्ताह पूर्व मैं उनसे मिलने और कुशल-क्षेम जानने के लिए गया था। कोविड के लॉकडाउन आदि शुरु होने के बाद से ही हम लोग मिल नहीं पाए थे। इसी बीच उनका स्वास्थ्य भी खराब होने लगा था। उस दिन कर्नल साहब काफी प्रसन्नचित्त लग रहे थे। काफी देर तक उन्होंने हम से बातें की। इस बातचीत के बीच ही उन्होंने कहा था सतीश, लगता है यह ढांचा अब खड़ा नहीं हो पाएगा और वे मुस्कुरा रहे थे जैसे उन्हें अपने प्रारब्ध का आभास हो गया था। मुझ से कुछ कहते हुए नहीं बना।

कर्नल साहब का जन्म हिमाचल प्रदेश के लाहुल तहसील के एक दूर-दराज़ छोटे से गांव ल्हिण्डुग् (लिन्डूर) में 7 जून, 1942 को हुआ। उनके पिता का नाम श्री छेराम और माता का नाम श्रीमती देकिद् था। इनकी ग्यारह संतानें हुई थीं जिनमें से दो की मृत्यु अल्पायु में ही हो गई थी। शेष जीवित संतानों में सबसे बड़ी बेटी थी और उनसे छोटे थे कर्नल साहब। उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा जाहलमा स्कूल से प्राप्त की और बाद में उच्च्व विद्यालय केलंग से मेट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उसके बाद उन्होंने पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना में प्रवेश लिया, द्वितीय वर्ष की पढ़ाई के दौरान ही उन्हें शॉर्ट सर्विस कमीशन के माध्यम से भारतीय सेना में जाने का मौका मिला और 3 मई 1964 में थल सेना में कमीशन प्राप्त हुआ। 1991—92 में कूल्हें की हड्डी टूट जाने के कारण वे ब्रिगेडियर के रूप में पदोन्नति को ग्रहण नहीं कर पाए। उसके बाद उन्होंने यह कहते हुए सेवानिवृत्ति लेने का निर्णय लिया कि मेरे लिए अपने से जूनियर्ज़ को सेल्यूट करने के लिए अब सेना में बने रहना उचित नहीं होगा। 8 अप्रैल, 1992 को वे सेना से कर्नल रेंक से सेवानिवृत्त हुए। सेना में रहते हुए पर्वतारोहण के क्षेत्र में उन्होंने पदार्पण किया और अपना सारा जीवन उसी के लिए समर्पित कर दिया। पर्वत शिखरों के प्रति कर्नल साहब का दृष्टिकोण सामान्य पर्वतारोहियों से बिल्कुल भिन्न था। उन्होंने खुद लिखा है- "मुझे पता है इन ऊंची-चोटियों को सैकड़ों वर्षों से हमारे पूर्वज पूजते आए हैं। मैं हमेशा भक्ति व विनम्रता के सम्मिश्रित भाव से इन के पास गया। यह देव स्थान हैं और मेरे अभियान उन पर की गई तीर्थ यात्राएं हैं।"

अपने कई दशकों लंबे पर्वतारोहण के करियर में वे शोहरत की तमाम बुलंदियों को हासिल करते चले गए। उन्होंने 1975 में नंदादेवी 7816 मीटर तथा 1976 में नंदा देवी पूर्व (7434 मी.) पर सफल चढ़ाई की। नंदा देवी की दोनों चोटियों को चढ़ने वाले वे एक मात्र भारतीय थे। 31 मई, 1977 को कंचनजंगा (28028 फीट/ मीटर) की चोटी पर पांव रखने वाले वे पहले इंसान बने और बाद में भी वे इस रास्ते से कंचनजंगा पर पहुंचने वाले दुनिया के एक मात्र जीवित पर्वतारोही थे क्योंकि उनके सह आरोही एनडी शेरपा पहले ही दुनिया से रुखसत हो चुके थे। इन्होंने सिक्किम की ओर से कंचनजंगा के जिस पूर्वी छोर के रास्ते शिखर की चढ़ाई की थी वह सबसे खतरनाक मार्ग माना जाता है इस चढ़ाई के बाद कर्नल साहब (उस समय मेजर) का नाम पूरे विश्व में विख्यात हो गया था। भारत सरकार

ने उनकी इस महान उपलब्धि पर कंचनजंगा पर विजय शीर्षक से एक रुपए तथा 25 पैसे की दो डाक टिकटें जारी की थी। 1984 का एवरेस्ट अभियान कर्नल साहब के पर्वतारोही जीवन का सब से महत्वपूर्ण पड़ाव था, कई मायनों में कंचनजंगा से भी अधिक महत्वपूर्ण। क्यों कि इस बार उन्हें पहाड़ से नहीं खुद और अपनी अन्तरात्मा से लड़ना था। सोचिए 100 मीटर से भी कम दूरी पर एवरेस्ट की चोटी दोनों बाहें फैला कर उन्हें बुला रहा था। सुबह के 10 बजे रास्ता बनाते हुए कर्नल साहब उस ऊंचाई पर पहुंच गए थे। और 1 बजकर 45 मिनट तक वहीं पर बैठे अपने दल के दूसरे सदस्यों की प्रतीक्षा करते रहे। वे उस दलके नेता थे। 28000 फीट की ऊंचाई पर उन की यह एकाकी प्रतीक्षा कैसे आंतरिक उथल-पुथल से भरी रही होगी हम कल्पना नहीं कर सकते। जिस जीवट और उत्साह से लबरेज़ वे उस ऊंचाई पर खड़े थे, हम आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि एकल चढ़ाई करते हुए इन करीब चार घण्टों में तो वे एवरेस्ट की चोटी पर झण्डा गाड़ कर दोबारा उस स्थान पर लौट आते। उन्होंने स्वयम् कहा है कि तीन बार वे चढ़ने के लिए उठ खड़े हुए थे, लेकिन देश, दल और अभियान के उद्देश्य की खातिर यह जानते हुए भी कि ऐसा मौका उन्हें फिर नहीं मिलेगा, अन्ततः उन्होंने अपने जीवन भर के लक्ष्य को तिरोहित कर दल के शेष सदस्यों को शुभकामनाएं देकर चोटी की ओर रवाना कर दिया और यह अभियान इतिहास बन गया। ऐसे कठिन मोड़ पर व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा पर विजय पाने के लिए किस किस्म के चरित्र की आवश्यकता होती होगी, हम अनुमान ही लगा सकते हैं। चारित्रिक दृढ़ता और ऊंचाई को कर्नल साहब फतेह कर चुके थे। ऐसे ही थे हमारे कर्नल साहब! कराकोरम से लेकर धुर पूर्व में लोहित नदी तक समस्त हिमालय की ऊंचाइयों को अपने कदमों से नापने वाले कर्नल साहब की अगर किसी से तुलना की जा सकती है तो वह है खुद 'हिमालय'। हिमालय की ही तरह सुदृढ़, अडिग, स्वाभिमान से ऊंचा उठ हुआ मस्तक, वाणी में एक अलग किस्त का ओज और मुख पर एक विशिष्ट मुस्कान, और हद दर्जे की साफगोई। ऐसी ही छवि बनती है कर्नल साहब की। जहां उन का व्यक्तित्व इतना बड़ा था वहीं उन में एक सहज सरलता थी। हम ने उन्हें अपने पोते की उम्र के लोगों के साथ भी बड़ी सहजता से मिलते-जुलते देखा है। जो लोग उन्हें भा जाते, उन पर अपना स्नेह लुटाने में कभी कंजूसी नहीं करते थे।

कोई सैन्य अभियान हो या पर्वतारोहण, दल का नेतृत्व करते हुए हमेशा दल के अन्य सदस्यों की सुरक्षा और कुशलता को खुद से पहले और ऊपर रखते थे। 1984 का एवरेस्ट अभियान इस की ज़िन्दा मिसाल है। वे अपने नीचे काम करने वालों पर पूरा विश्वास जताते थे। एक घटना याद आती है जो मैंने विश्वस्त लोगों से सुनी थी। प्रसिद्ध पर्वतारोही और कर्नल साहब के शिष्य स्व. अमर

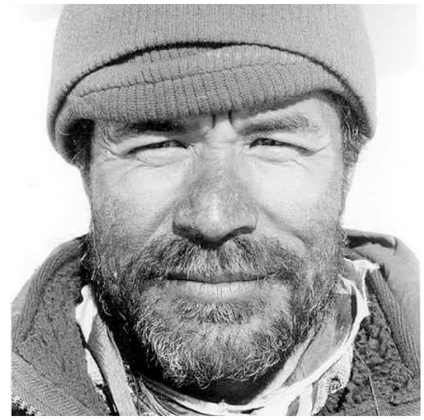

प्रकाश का चयन एवरेस्ट अभियान के लिए हुआ था। उस समय अमर लाहुल में छुट्टियां बिता रहा था, सर्दियों का समय था। उसे प्रशिक्षण शिविर में शामिल होने के लिए जाना था। हेलीकॉप्टर सेवा का दौर था और उसे सीट नहीं मिल पा रही थी। हेलीकॉप्टर के लिए बड़ी सिफारिशें करनी पड़ती थी। फिर किसी ने कर्नल साहब को सम्पर्क किया और पूछा कि क्या यह लड़का वाकई एवरेस्ट दल में है या कहीं झूठ तो नहीं बोल रहा। इस पर कर्नल साहब का उत्तर था, ''हम अफसर लोग झूठ बोल सकते हैं, पर हमारा सिपाही कभी झूठ नहीं बोल सकता।''

कर्नल साहब खेलों में भी हमेशा आगे रहे हैं। विश्वविद्यालय स्तर तक वे वॉलीबॉल और बेडमिन्टन के अच्छे खिलाड़ी रहे हैं। बादमें स्कीइंग में उन्होंने महारथ हासिल की। 1972 के सप्पोरो (जापान) विंटर ओलंपिक्स के लिए पहले भारतीय ओलंपिक टीम के वे कैप्टन सह मैनेजर नियुक्त किए गए थे, लेकिन किन्हीं कारणवश यह टीम जापान रवाना नहीं हो पाई।

कर्नल साहब ने हिमालय में

कई अत्यंत जोखिम भरे बचाव अभियानों को अन्जाम दिया। अभियानों के दौरान लगता है जैसे वे अतियों को जीते थे। दुनिया के सब से ऊंचे युद्ध क्षेत्र सियाचिन में भारतीय सेना द्वारा अन्तिम रूप से बढ़ने और काबिज़ होने से पहले उस की तकनीकी व्यवहार्यता अध्ययन का कार्य भी कर्नल साहब के ही ज़िम्मे सौंपा गया था। जिसे उन्होंने बखूबी अंजाम दिया था।

जहां कर्नल साहब के पांच दशक लम्बे सैन्य एवं पर्वतारोही जीवन की उपलब्धियों की बात है, वह इतना व्यापक और वृहत् है कि मेरी कलम खुद को बौना महसूस कर रही है। उन का यह निम्न लिखित बायोडाटा अपनी कहानी खुद बयां करता है-

किए गए कोर्स :

1. विंटर वार फेयर हाई अल्टीचूड वारफेयर स्कूल – 1965–66
2. माऊंटेन वारफेयर हाई अल्टीचूड वारफेयर स्कूल – 1966
3. विंटर वारफेसर एडवांस हाई अल्टीचूड वारफेयर स्कूल – 1967
4. माऊंटेन वारफेयर एडवांस हाई अल्टीचूड वारफेयर स्कूल – 1970
5. एण्टीटैंक एण्ड कमाण्डो इन्फेन्ट्री स्कूल, महो (एम.पी.)
6. जूनियर कमाण्ड एण्ड सीनियर कमाण्ड कॉलेज ऑफ कम्बेट, महो (एम. पी.)
7. थर्ड रीजनल ट्रेनिंग सेमिनार ऑन आईस एण्ड स्नो हाईड्रोलोजी

यूनेस्को एवं सासे द्वारा आयोजित (मनाली)– 1986

8. डिप्लोमा इन टूरिज़्म एण्ड ट्रेवल मेनेजमेंट कोर्स (मिनिस्ट्री ऑफ डिफेन्स) – 1992.

जिन चोटियों पर चढ़ाई की :

1. हरमुख 5425 मी. जे.एण्ड के. 1969
2. कोलहोई 5148 मी. ज.एण्ड के.
3. माऊंट लशी 5900 मी. कराकोरम
4. मामोन्स्तंग कङरी 7516 मी. कराकोरम– 1969
5. माऊंट उम्बा 19600 फीट ज.एण्ड के. 1969
6. चोमो ल्हरी 22,997 फीट भूटान–1970
7. परि कङ 22,300 फीट भूटान–1971
8. चोमो ल्हरी कङरी 23,000 फीट भूटान –1971
9. गङ्गेर पुनसुम साऊथ 20,000 फीट भूटान–1972
10. थेलु 6000 मी. उत्तरांचल– 1972
11. कोटेश्वर 6035 मी. उत्तरांचल – 1973
12. पीक वेस्ट ऑफ बन्दर पुंच वेस्ट 5800 मी. उत्तरांचल–1974
13. जाओं ली 6632 मी. उत्तरांचल–1974
14. नन्दा देवी 7816 मी. उत्तरांचल–1975
15. नन्दा देवी ईस्ट 7434 मी. उत्तरांचल–1976
16. सिनिआल चू 22,800 फीट सिक्किम–1976
17. कंचनजंगा 28,028 फीट सिक्किम–1977
18. नून 7135 मी. जे./के. 1978
19 ससेर कङरी 7672 मी. कराकोरम 1979
20. हनुमान टिब्बा 5928 मी. हिमाचल प्रदेश 1980
21. मेन्थोसा 6300 मी. हिमाचल प्रदेश 1980
22. फलुङ कङ 5900 मी. सिक्किम – 1981
23. मन्ना 7274 मी. उत्तरांचल 1983
24. एवरेस्ट 8848 मी. नेपाल 1984 (समिट कैम्प बतौर उप नेता)
25. के–12 7428 मी. करोकोरम 1984
26. थाजियावास पीक 5800 मी. जे./के. 1984
27. माऊंट मचोई 6000 मी. जे./के. 1984
28. एवरेस्ट 8848 मी. नेपाल 1985 (दल के नेता नियुक्त लेकिन चोट के कारण नेतृत्व फिर नहीं किया। दल के साथ दुर्घटना होने के पश्चात् शामिल हुए।)
29. रिमो 7385मी. कराकोरम 1989
30. तम्बो और जोड़ी 6096 और 5996 मी. हि.प्र. 2003

प्राप्त अलंकरण :

1. कीर्ति चक्र – 1978
2. सेना मेडल – 1981
3. विशिष्ट सेवा मेडल – 1972
4. मेन्शन–इन–डिस्पेचिज़– 1972
5. ज्योर्ज मेकग्रगोर मेडल 1970 (1947 के बाद मेडल पाने वाले पहले सेन्य अधिकारी)
6. इण्डियन माऊटेनियरिंग फाऊंडेशन गोल्ड मेडल
7. इण्डियन माऊटेनियरिंग फाऊंडेशन सिल्वर मेडल
8. फ्रेंच मेडल नन्दा देवी चढ़ाई के लिए
9. सर्टीफिकेट ऑफ एप्रीसिएशन, सिक्किम सरकार, पर्यटन मंत्रालय (1977

में कंचनजंगा पर चढ़ाई के समय सिक्किम के लोगों की परम्पराओं और भावनाओं का सम्मान अक्षुण्ण रखने के लिए।)

अनुदेशकीय ज़िम्मेदारियां :

1. अनुदेशक, हाई अल्टीच्यूड वारफेयर स्कूल 56 ए.पी.ओ. 1968–70
2. अनुदेशक, इण्डियन मिलिटरी ट्रेनिंग टीम भूटान 1971–72
3. वाईस प्रिंसीपल, नेहरु इंस्टीट्यूट ऑफ माऊंटेनियरिंग, उत्तरकाशी, 1974
4. वाईस प्रिंसीपल, हिमालयन माऊंटेनियरिंग इंस्टीट्यूट, दार्जीलिंग, 1974
5. डाईरेक्टर, डाईरेक्टोरेट ऑफ माऊंटेनियरिंग इंस्टीट्यूट एण्ड एलाईड स्पोर्ट्स, मनाली, 1986–1989
6. डाईरेक्टर, हाई अल्टीट्यूड ट्रेनिंग सेंटर, शिलास, शिमला, 1989–90
7. डाईरेक्टर, आर्मी एडवेंचर सेल, सेना भवन, नई दिल्ली, 1991 से सेवानिवृत्ति तक

सेवानिवृत्ति पश्चात् जो कोर्स और कैम्प करवाए :

1. इण्डियन माऊंटेनियरिंग फाऊंडेशन (कैम्पों की श्रृंखला)
2. विंटर गेम फेडरेशन ऑफ इण्डिया
3. नेशनल एडवेंचर फाऊंडेशन
4. टाटा एडवेंचार फाऊंडेशन
5. सिंगापुर एन.सी.सी.
6. मेलशियन चौखम्बा अभियान 1996
7. मलेशियन एवरेस्ट 1997
8. चाइना एवरेस्ट फ्रॉम डव्ल्यू. बी.
9. इण्डो–नेपलीज़ वमेन एक्सपीडिशन
10. वाई.पी.एस. चण्डीगढ़
11. मालवा स्कूल गिद्दरवाह (पंजाब)
12. बी.एस.एस. शिमला
13. ई एण्ड ए मुम्बई
14. डिपार्टमेंट ऑफ टूरिज़्म एण्ड सिविल एविएशन हि.प्र.

(जनजातीय युवाओं के लिए कोर्सिज़ की श्रृंखलाएं)

15. अर्थ वाच ग्रुप यू.के.

शीतकालीन खेल

1. विंटर ओलंपिक्स 1972, सोप्पोरो, जापान के लिए पहली भारतीय टीम के कप्तान सह–मनेजर नियुक्त। लेकिन किन्हीं कारणवाश यह टीम भेजी नहीं गई।
2. 1969 में अकेले रोहतांग दर्रे की उतराई को स्की किया।
3. माऊंट चोमो ल्हरी के लगभग 20,000 फीट ऊंचाई से नीचे बेस कैम्प तक की उतराई को स्की किया। 1970 में।
4. मनाली में आयोजित इण्डियन नेशनल विंटर गेम्ज़ और पहले हिमाचल कप के मौके पर को–चेयरमेन रहे, टेक्नीकल कमेटी के चेयरमेन और ज्यूरी सदस्य रहे।
5. शमशकी इंटरनेशनल जूनियर विंटर गेम्ज़, ईरान, 1997 में जूनियर टीम का नेतृत्व किया।
6. अनुभवी पूर्व आईस हॉकी खिलाड़ी। सेवेन्टीज़ में वे 3 इंफेन्ट्री डिवीजन चेम्पियन टीम के प्लेइंग केप्टन रहे।

सदस्यताएं :

1. इण्डिन माऊंटेनियरिंग फाऊंडेशन, दिल्ली (पूर्व वाईस प्रेसीडेंट)
2. हिमालयन माऊंटेनियरिंग इंस्टीट्यूट, दार्ज़ीलिंग
3. नेहरु इंस्टीट्यूट ऑफ माऊंटेनियरिंग, उत्तरकाशी
4. नॉन आफीशियल मेम्बर टूरिज़्म डवेलपमेंट कौंसिल, मनाली।
5. मेम्बर एग्ज़ेक्यूटिव कमेटी, लाहुल–स्पीति जन कल्याण समिति, बदाह, कुल्लू।
6. मेम्बर एग्ज़ेक्यूटिव कमेटी, सोसाईटी फॉर प्रिज़र्वेशन ऑफ बुद्धिस्ट कल्चर, बदाह, कुल्लू।
7. प्रेसीडेन्ट, सोसईटी फॉर कंज़र्वेशन एवं प्रिज़र्वेशन ऑल कल्चर इन लाहुल–स्पीति।
8. देश के बहुत से साहसिक कलबों की मानद सदस्यता।
9. रेड क्रॉस, कुल्लू की आजीवन सदस्यता।
10. पूर्व प्रेसीडेंट और मानद सदस्य, हिमाचल विंटर गेम्ज़ ऐसोसिएशन।
11. पूर्व प्रेसीडेंट और सदस्य, मनाली स्पोर्टस क्लब।

अलविदा कर्नल साहब! आप का जाना लाहुल–स्पीति, हिमाचल प्रदेश, रेजीमेंट, भारतीय सेना, भारतवर्ष के लिए ही नहीं अपितु विश्व पर्वतारोहण के लिए भी एक अपूर्णीय क्षति है, जिस की भरपाई कभी नहीं हो सकती। आप का जीवन और आप की उपलब्धियाँ आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करती रहेंगे। हमारी यादों में आप ज़िंदा रहेंगे।

विनम्र श्रद्धांजलि!!

बी.एस. परशीरा : अन्दाज़ ए ज़िन्दगी का एक जीता जागता ट्यूटोरियल

✍ कुलजीत क्रोफा

जुदा भी हो के वो इक पल
कभी जुदा न हुआ
यह और बात है कि
देखे ज़माना हुआ

मेरे एक अज़ीज़ दोस्त और सच्चे शुभ चिंतक श्री बी. एस. परशीरा को दिवंगत हुए एक साल से कुछ ऊपर का समय हो गया है। इस दौरान दुनिया अपनी सामान्य गति से चलती रही। फिर भी, उन का जाना बहुत से लोगों के लिए सामान्य घटना नहीं रही होगी। वे बहुत से लोगों के लिए बहुत कुछ रहे होंगें, लेकिन जिस किसी के जीवन को उन्होंने ज़रा सा भी छुआ था, उस के लिए निश्चय ही वे एक बेहद अच्छे इनसान थे।

उन लोगों के लिए, जो उन के बारे में नहीं जानते हैं, वे लाहुल के रंगबे गाँव के एक प्रतिष्ठित परिवार से सम्बन्ध रखते थे। लाहुल में आरम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के बाद वे कुल्लू गए, जहाँ से उन्होंने ग्रेजुएशन की। फिर उन्होंने सिविल सेवा की परीक्षा दी और 1973 में पहले भारतीय पुलिस सेवा में गए, और 1978 में भारतीय प्रशासनिक सेवा में। अकसर उन के बारे में कहा जाता है कि वे स्कूल और कॉलेज के दिनों में गम्भीर छात्र नहीं रहे। यहाँ तक कि सिविल सेवाओं की परीक्षा के लिए भी उन्होंने पर्याप्त तैयारी नहीं की। ज्ञानार्जन केवल स्कूल या कॉलेज के क्लास रूम तक सीमित नहीं होता। इस सब के बाहर भी आप अपने आस पास की चीज़ों से बहुत कुछ सीख सकते हो, बशर्ते कि आप अपनी आँखें और कान खोले रखो। यह हो सकता है कि परशीरा जी किताबी कीड़ा नहीं रहे। लेकिन वे अच्छी तरह से जानते थे कि मूल्यवान और प्रासंगिक चीज़ क्या है, और वे उन्हीं चीज़ों पर मेहनत करते थे। यह उन की बौद्धिक प्रखरता का ही द्योतक है। कोई भी व्यक्ति, जिस के पास ये तमाम खूबियाँ न हों, लगातार एक के बाद एक सिविल सर्विसेज़ की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाता।

एक मुद्दा हमेशा उठाया जाता है कि लाहुल के जो लोग बड़ी और ऊँची सेवाओं में गए, उन्होंने अपने गृह ज़िलों के लिए क्या किया? वहाँ की लोगों की उन्नति या उन के सुधार में क्या योगदान दिया? शायद यह सवाल ही भ्रामक और असंगत है। जब कोई बाहर का अफसर लाहुल स्पिति में तैनात होता है, तो हम उस से यह कभी नहीं पूछते हैं कि उस ने अपने गृह ज़िला और वहाँ के निवासियों के लिए क्या योगदान दिया? बल्कि हमारी उन से यही अपेक्षा रहती है कि वे लाहुल स्पिति और यहाँ की जनता की सेवा अच्छी तरह से करे। ठीक इसी तरह जब हमारे लोग दूसरे राज्यों में काम करने के लिए जाते हैं तो वाजिब सवाल यह बनता है कि क्या उन्होंने उन राज्यों में यथा सामर्थ्य अपनी सेवाएं प्रदान की हैं?

परशीरा जी ने आन्ध्र प्रदेश सरकार एवम् भारत सरकार में अपनी सेवाओं के दौरान निश्चित रूप से बेहतरीन कार्यों को अंजाम दिया, और इस तरह से अपनी एक अलग पहचान बनाई। छोटे से अरसे के लिए वे हिमाचल में भी डेपुटशन पर रहे और महत्वपूर्ण पदों पर ज़िम्मेदारी सम्भाली। निपट अपनी प्रतिभा तथा सामर्थ्य के दम पर वे भारत सरकार में सचिव के पद तक पहुँचे। एक ऐसा पायदान जहाँ तक पहुँचने का ख्वाब तो भारतीय प्रशासनिक सेवा का हर अधिकारी देखता है, किंतु पहुँच कोई बिरला ही पाता है। नौकरी में रहते हुए लाहुल स्पीति के लिए उन्होंने जो कुछ भी बेहतरीन वे कर सकते थे, किया। हमें याद है जब लाहुल हॉप्स सोसाईटी अपना उत्पाद बेच नहीं पा रही थी, क्यों कि बीयर कम्पनियों ने माल खरीदने से इनकार कर दिया था; परशीरा जी ने यह सारा माल जनजातीय मामले मंत्रालय के अधीन एक निगम TRIFED के माध्यम से खरीदवा लिया था। जिस की वजह से उन्हें बाद में काफी व्यक्तिगत दिक्कतें भी पेश आईं थीं।

दूर दराज़ के आदिवासी इलाकों में स्तरीय शिक्षा की उपलब्धता को प्रोत्साहन देने के ''एकलव्य मॉडेल रेज़िडेंशियल'' योजना की परिकल्पना इन्होंने ही तैयार की थी, जो सरकार द्वारा सफलता पूर्वक अपनाया गया और आज की तारीख में ऐसे 690 स्कूल भारत के दूरस्थ कोनों में कार्य कर रहे हैं। ऐसा काम एक महान

विजनरी अफसर ही कर सकता था। परशीरा जी की दिली ख्वाहिश थी कि इस योजना के तहत पहला स्कूल लाहुल स्पीति में ही खुले। इसी मंशा से उन्होंने ज़िला प्रशासन को अग्रिम सूचना दे दी थी लेकिन दुर्भाग्यवश प्रशासन को उपयुक्त स्थल खोजने में बीस साल लग गए। फलतः 1997—98 में परिकल्पित यह स्कूल आखिरकार 2019—20 में जा कर बारिंग गाँव में खुल सका।

अपने इलाक़े के सरोकारों और अपने लोगों के हितों की उन्हें सदैव चिंता रहती थी। मसलन सम्पत्ति के उत्तराधिकार में बेटियों के हक़ूक, जनजातीय रिवाज़ ए आम (Customary Law and Practices) में वांछित संशोधन, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, भू अर्जन मामलों में पर्याप्त मुआबज़ा...ये उन के मुख्य मुद्दे रहे। विभिन्न सोशियल मीडिया ग्रूप्स में इन विषयों पर उन की टिप्पणियों ने महत्वपूर्ण चर्चाओं को जन्म दिया है, यद्यपि इन चर्चाओं का किसी समुचित समाधान पर पहुँचना अभी बाक़ी है।

हर गेट-टुगेदर पर हम उन्हें शिद्दत से याद करते हैं। सोशल मीडिया में उन का हस्तक्षेप हमेशा एक ज्ञानी व्यक्ति जैसा रहता था। वहाँ उन की सूझबूझ से भरी टिप्पणियों की कमी हमें बहुत खलती है। उन की बेतक़ल्लुफी, स्पष्टवादिता बहुत याद आती है। उन के घर पर मौज मस्ती भरी बैठकें याद आतीं हैं। इस सब से बढ़ कर उन की वो शांत, मिलनसार और चमकती हुई मुखाकृति, जो हमेशा ज़िंदादिली का एक खुशनुमा अहसास सम्प्रेषित करती रहती थी, हम कभी नहीं भूल पाएंगे!

उन की संगत महज़ मौज मस्ती और शुगल मेला नहीं बल्कि अन्दाज़-ए- ज़िन्दगी का सम्पूर्ण ट्यूटोरियल हुआ करती थी... कि परेशानियां ख्वाह लाख सहीं, बगैर किसी परवाह के, भरपूर जोश और हर लम्हे को एक रसिक बन कर जिया! उन की संगत जीवन की एक ऐसी सबक होती थी, जिसे हमेशा दिल में सहेज रखने का मन करता। उन के साथ बैठते हुए आप बहुत सहज महसूस करते थे। आप अपने सभी मुखौटों व लबादों को उतार कर आराम से निश्चिंत हो कर बैठ सकते थे। क्यों कि आप को पता होता था कि आप का आकलन नहीं किया जाएगा। आप 'जज' नहीं किए जाओगे। वे आप को उसी रूप में स्वीकार करते, जो आप वास्तव में हो। अपने खुले मन, उदार हृदय व खिलन्दड़ स्वभाव के कारण वे किसी भी भीड़ में घुलमिल जाते थे और सभी पीढ़ियों में आसानी से जुड़ जाते थे। वे बौद्धिकों के साथ बुद्धिमान व सूझवान हो जाते। युवाओं के साथ जीवंत और विनोदपूर्ण जब कि बच्चों के साथ बेहद नटखट और स्नेहपूर्ण। मेरे लिए पर्सनली, वे बेहद स्नेहमयी और परवाह करने वाले पेट्रन थे। मेरे हालिया दुश्वारियों और परेशानियों की उन्हें बेहद और बहुतों से कहीं अधिक चिंता थी। अलग अलग जुंडलियों में, अलग अलग मौकों पर और अलग अलग परिस्थितियों में वे जिस सलीके से पेश आते थे। एक स्वाभाविक शिष्ठता, भरपूर आत्मसंयम, और पूरी सुघढ़ता एवम् गरिमा के साथ; वह सचमुच काबिल-ए-तारीफ होता था। जितनी बार उन की संगत में बैठना हुआ हर बार खुद को पहले से अधिक भरा हुआ और समृद्ध पाया। उन के साथ हुए हर सम्वाद से मैं बहुत लाभांवित हुआ हूँ। मुझे इस बात का हमेशा खेद रहेगा कि जब वे बीमार थे, मैं उन से मिल नहीं पाया। लेकिन इस बात का संतोष भी है कि उन की अंतिम यात्रा के समय उन को अलविदा कहने के लिए मैं वहाँ था।

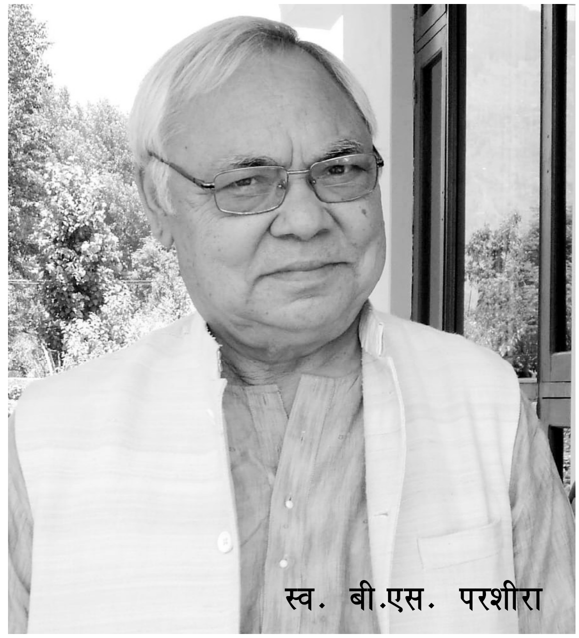
स्व. बी.एस. परशीरा

हमें उम्मीद है कि आप की अगली दुनिया की यात्रा शांतिपूर्ण रही होगी, और यह भी कि अपने स्वभाव के अनुकूल आप ने मित्रों का एक बहुत बड़ा दायरा वहाँ भी बना लिया होगा। लेकिन अपने उस विशाल जमावड़े में थोड़ी सी जगह इस ओर के कुछ पुराने दोस्तों के लिए भी ज़रूर रखिएगा! तब तक के लिए अलविदा! ■

चंद्रताल परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि। -संपादक

स्वर्गीय प्रो. बनारसी लाल जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

✍ ठिनले शाशनी

...पिछला शेष

{नोट : गत अंक में आपने स्व. बनारसी लाल जी के व्यकितत्व एवं उनकी विभिन्न गतिविधियों के बारे में पढ़ा। अब उनकी रचनाओं और शैक्षणिक उपलब्धियों के बारे में विस्तार से जानें। -सम्पादक-।}

प्रो. बनारसी लाल जी की रचनायें एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ–

प्रकाशित एवं सम्पादित ग्रन्थ–

1. आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति–अमृतकणिका एवं उद्योत सहित, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 1994
2. लुप्त बौद्ध वचन संग्रह– भाग–1, (सह–सम्पादक) के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, 1990
3. कालचक्रतन्त्र अभिषेक– स्मारिका, रिन्छेन जङ्पो सोसायटी, केलंग, हि० प्र०, 1994
4. लुप्त बौद्ध वचन संग्रह– भाग–2, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, 2001
5. हिमालयी संस्कृति और भोटी भाषा– हिमालयी संस्कृति संरक्षण सभा, नई दिल्ली, 2003
6. बौद्धतन्त्र वाङ्मय– भाग–1, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, 2005
7. गुरु पद्मसम्भव– भाग– 1, पद्मसम्भव जिङ्मा–पा बौद्ध सभा, रिवालसर, मण्डी, हि0 प्र0, 2008
8. गुरु पद्मसम्भव– भाग– 2, पद्मसम्भव जिङ्मा–पा बौद्ध सभा, रिवालसर, मण्डी, हि0 प्र0 ।
9. बोधिपथप्रदीपम्– सम्पादक, प्रकाशक– लब–क्यब–गोन रिनपोछे, सेरा जे डासंग, कर्नाटक, 2010
10. अद्भुतकोश नामक श्रीसाक्यपीठ की वंश परम्परा का संक्षिप्तजीवन वृत्तान्त– सपण् ट्रान्सलेशन एण्ड रिसर्च फाउंडेशन, देहरादून, 2016
11. भारतीय एवं भोट आचार्यों की संक्षिप्त जीवनी– प्रकाशक– लोक ज्योति बौद्ध विहार, गैमुर, हि0 प्र0, 2016
12. दशतत्त्वसङ्ग्रहः– सम्पादन, (विस्तृत भूमिका सहित), केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान, सारनाथ, 2017
13. गरजा (डाकिनियों का हृदय स्थल,पवित्र लाहुल का दिक्काल दर्पण)– सम्पादन, प्रकाशक– गरजा युवा डुगपा संघ, केलङ, हि0 प्र0, मार्च, 2018
14. गुरुपञ्चाशिका व्याख्या शिष्य आशा परिपूरणी– अनुवाद एवं सम्पादन, केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय, सारनाथ, वर्ष– 2019–20

सह–सम्पादक के रूप में दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग से प्रकाशित ग्रन्थ–

1. गुह्यादि अष्टसिद्धिसंग्रह (संस्कृत एवं भोट), 1988
2. ज्ञानोदयतन्त्रम् (संस्कृत), 1988
3. डाकिनीजालसंवररहस्यम् (संस्कृत), 1990
4. वसन्ततिलका–टीका सहित (संस्कृत–भोटी), 1990
5. कृष्णयमारितन्त्र–पंजिका सहित (संस्कृत–भोटी), 1992
6. महामायातन्त्र–गुणवती टीका सहित (संस्कृत–भोटी), 1992

7. अभिसमयमञ्जरी (संस्कृत–भोटी), 1993
8. योगिनीसञ्चारतन्त्रम्–टीका सहित (संस्कृत–भोटी), 1998
9. कालचक्रतन्त्रटीका विमलप्रभा, भाग–2–3 (संस्कृत), 1994
10. चर्यामेलापकप्रदीपम् (संस्कृत–भोटी), 2000
11. सिद्धैकवीरमहातन्त्रम् (संस्कृत–भोटी), 1998
12. तत्त्वज्ञानसंसिद्धि–टीका सहित (संस्कृत–भोटी), 2000
13. अध्यात्मसारशतकम्–सटीक (संस्कृत), 1997
14. कुरुकुल्लाकल्प (संस्कृत–भोटी), 2001
15. चक्रसंवरतन्त्रम्–टीका सहित (संस्कृत–भोटी), 2002
16. श्रीगुह्यसमाजमण्डलविधिः (संस्कृत–भोटी), 2010
17. बौद्धस्तोत्ररत्नाकर (संस्कृत), 2012
18. कालचक्रतन्त्रलघुग्रन्थसंग्रह– भाग–1, (संस्कृत), 2014
19. कालचक्रतन्त्रलघुग्रन्थसंग्रह– भाग–2, (संस्कृत–भोटी), 2016

स्वर्गीय प्रो. बनारसी लाल

सह–सम्पादक (विभागीय शोध–पत्रिका 'धीः')–

वर्ष 1986 से अद्यावधि शोध–पत्रिका 'धीः' के 60 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। 61वां अंक प्रकाशनाधीन है ।

पाण्डुलिपि–अध्ययन एवं सर्वेक्षण यात्राएँ–

1. वर्ष 1982, 1990 एवं 1994 में काठमाण्डू नेपाल स्थित राष्ट्रीय अभिलेखालय तथा केसर विहारों में संगृहीत प्राचीन पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण एवं शोध ।
2. वर्ष 1991 में ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा में पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण ।
3. वर्ष 1998 में कलकत्ता स्थित एशियाटिक सोसायटी, बंगीय साहित्य परिषद्, संस्कृत कॉलेज तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय आदि के पुस्तकालयों में पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण ।
4. 20–6–2002 से 23–7–2002 तक शैक्षणिक आदान–प्रदान कार्यक्रम के तहत तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना की यात्रा ।
5. दिनांक 31–3–2013 से 04–04–2013 तक पटना–म्युज़ियम में राहुल–संकलन की स्थिति पर रिपोर्ट देने के लिए गठित समिति के सदस्य के रूप में पटना जाकर रिपोर्ट प्रस्तुत की।
6. दिनांक 19–11–2013 से 01–12–2013 तक पटना–म्युज़ियम के राहुल–संकलन में संरक्षित फोटो प्रिन्ट के रूप में उपलब्ध बौद्ध संस्कृत पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण करने एवं उनका रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु गठित समिति के सदस्य के रूप में नियुक्त हुआ तथा रिपोर्ट प्रस्तुत किया।

अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, सेमिनारों में सहभागिता एवं प्रस्तुत लेख–

1. प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन 'बौद्ध धर्म तथा राष्ट्रीय संस्कृतियाँ' 10–15 अक्टूबर, 1984, नई दिल्ली, प्रतिभागी के रूप में सम्मिलित।
2. यूथ सेमिनार ऑन वर्ल्ड रिलिजन्स, जुलाई–अगस्त 1985, न्यूयार्क, अमेरिका । प्रतिभागी के रूप में सम्मिलित ।
3. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'लाहुल की संस्कृति तथा कला का संरक्षण तथा संवर्धन', 19–26 जुलाई, 1986, बौद्ध दर्शन संस्कृत विद्यालय, केलंग, हि० प्र०। प्रस्तुत निबन्ध 'भोटी भाषा एवं लाहुल'।
4. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'वज्रयान मार्गगमन की विधि', 5–10 अगस्त, 1987, केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह, लदाख, प्रस्तुत निबन्ध 'बौद्धतन्त्र का प्रवर्तन एवं बुद्धवचनत्व'।
5. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'पश्चिमोत्तर हिमालय की बौद्ध कला एवं संस्कृति', सितम्बर 1988, आयोजक बौद्धदर्शन संस्कृत विद्यालय केलंग, मनाली, हि० प्र०, प्रस्तुत लेख 'हिमालय संस्कृति में शिक्षा एवं भाषा का महत्त्व'।
6. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'हिमालयी संस्कृति : समस्या एवं समाधान' 3–7 अक्टूबर, 1989, शिमला, हि० प्र०, प्रस्तुत आलेख 'हिमालय की संस्कृति : समस्या और सम्भावनाएं'।

7. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'हिमालय की संस्कृति एवं भाषा : समस्या एवं सम्भावनाएं', 21 दिसम्बर 1990, सारनाथ, वाराणसी, प्रस्तुत लेख 'सीमान्त प्रदेशों की सामाजिक कुरीतियाँ'।

8. अखिल भारतीय कार्यशाला 'भारतीय तन्त्रशास्त्र' 6–12 फरवरी, 1992, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, प्रस्तुत लेख 'कालचक्रतन्त्र : अद्वयतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में'।

9. इण्टरनेशनल सेमिनार ऑन रिन्छेन ज़ङ्पो एण्ड हिज़ वर्क्स, जून 1996, करुणा फाउण्डेशन, दिल्ली द्वारा आयोजित, तावो, हि० प्र०, प्रस्तुत लेख 'महानुवादक रिन्छेन ज़ङ्पो एवं उनकी अनूदित रचनाएँ'।

10. 'बौद्ध दर्शन, संस्कृति एवं साहित्य : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का योगदान' अखिल भारतीय संगोष्ठी, अक्टूबर 1993, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, प्रस्तुत लेख 'भोटलिपि का नागरीकरण एवं राहुल जी का अवदान'।

11. 'अभ्युदय एवं निःश्रेयस समाजविज्ञान एवं बौद्ध दृष्टि'– अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी, 7– 9 सितम्बर, 1997, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, प्रस्तुत लेख 'अभ्युदय एवं निःश्रेयस के सन्दर्भ में महाराग की अवधारणा'।

12. 'बौद्धतन्त्र के आयाम'– अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, 3–4 अप्रैल 1999, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, प्रस्तुत लेख 'बौद्धतन्त्रों में पीठों की अवधारणा'।

13. हिमालयी संस्कृति और भाषा : परम्परा और परिवर्तन, अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी, 11–13 अगस्त, 2000, काज़ा, हि० प्र०, आयोजक क्यी गोन्पा, हिमाचल कला एवं संस्कृति अकादमी तथा हिमालय संस्कृति संरक्षण सभा दिल्ली, प्रस्तुत लेख 'हिमालयी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में भोटी भाषा का महत्त्व'।

14. 'त्रि–संवर : विनय–संवर, बोधिसत्त्व–संवर एवं मन्त्र–संवर' अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी, दिनांक 20–24 अगस्त, 2001, के० बौ० वि० सं० लेह, लदाख, प्रस्तुत निबन्ध 'कालचक्रतन्त्रानुसार व्रत–संवर एवं मूलापत्ति'।

15. 'हिमालयी जनजातीय समाज के विकास में बौद्ध धर्म का योगदान' राष्ट्रीय संगोष्ठी 10–11 अक्टूबर 2001, तवांग, अरुणाचल प्रदेश, प्रस्तुत लेख 'हिमाचल प्रदेश में बौद्ध धर्म का इतिहास'।

16. 'डायमेंशन ऑफ माइंड इन बुद्धिस्ट थॉट' राष्ट्रीय संगोष्ठी, आयोजक– बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 7–8 मार्च, 2003, प्रस्तुत लेख 'वज्रयान में बोधिचित्त का विकास' ।

17. वर्कशॉप ऑन हिमालयन कल्चरल इनसायक्लोपीडिया, 6–7 जनवरी, 2003 सारनाथ, आयोजक– के० बौ० वि० सं०, लेह–लदाख।

18. 'सोशल एण्ड कल्चरल अस्पेक्ट ऑफ नागार्जुनाज फिलॉसफी' राष्ट्रीय संगोष्ठी, 6–8 अप्रैल, 2003, आयोजक– सलारजंग म्यूज़ियम हैदराबाद, प्रस्तुत लेख 'नागार्जुन रचित पञ्चक्रम'।

19. 'द सोर्सस ऑफ हिस्ट्री ऑफ सब–हिमालयन रीजन्ज़ ऑफ लद्दाख एण्ड हिमाचल प्रदेश' त्रि–दिवसीय संगोष्ठी, 26–28 जून, 2003, आयोजक– के० बौ० वि० सं० एवं आइ० सी० एच० आर० दिल्ली, प्रस्तुत लेख 'द सोर्सस ऑफ हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज़्म इन हिमाचल प्रदेश'।

20. 'इण्टरनेशनल सेमिनार ऑन बुद्धिज़्म फॉर 21वीं सेंचुरी : ऐन इण्टरनेशनल पर्सपेक्टिव', 25–29 अगस्त, 2004, के० बौ० वि० सं० लेह, लद्दाख, प्रस्तुत लेख 'इक्कीसवीं शताब्दी के विहान में बौद्धतन्त्रों का अध्ययन'।

21. 'द भोटी लैंग्वैज इट्स रिवाइटालायज़ेशन' 6–8 अक्टूवर, 2004, आयोजक– प्रज्ञा (एन० जी० ओ०) गुड़गाँव एवं भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला। प्रस्तुत लेख–1. भोट लिपि का उद्‌भव एवं उसका स्रोत, 2. हिमालयी संस्कृति एवं भोटी भाषा ।

22. नेशनल सेमीनार ऑन 'बुद्धिस्ट मोनास्टरीज़ एण्ड इट्स ट्रेडिशन एण्ड इम्पोर्टेंस', 10–14 अगस्त, 2005, केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह, लद्दाख, प्रस्तुत निबन्ध – 'छोस–खोर गोन्पा : एक ऐतिहासिक गोन्पा के मिटते अवशेष'।

23. बुद्ध–महोत्सव संगोष्ठी, 14 मई, 2006, आयोजक– यू० पी० टूरिज़्म, सारनाथ, वाराणसी ।

24. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'प्राचीन बौद्ध विद्वान् एवं विहारों का हिमालयी संस्कृति एवं इतिहास में योगदान' 22–26 जुलाई, 2006, बौद्ध दर्शन संस्कृत महाविद्यालय एवं लोक ज्योति विहार, केलंग, हि०प्र०। प्रस्तुत शोध पत्र– 'लाहुल में बौद्धधर्म के प्रचारक आचार्य एवं उनका ऐतिहासिक योगदान'।

25. 2550वीं महापरिनिर्वाण महोत्सव संगोष्ठी, 28–30 अक्टूबर, 2006, आयोजक– हिमाचल भाषा एवं संस्कृति विभाग, रामपुर, बुशैहर

प्रस्तुत पत्र– 'बौद्धतन्त्रों का उद्भव और विकास'।

26. 'इन्टरनेशनल कान्फ्रेंस ऑन बुद्धिज़्म एण्ड 21वीं सेंचुरी' 3–7 फरवरी, 2007, बोधगया, आयोजक– संस्कृति विभाग, भारत सरकार।

27. नेशनल सेमिनार ऑन 'नैशनल एजुकेशन पॉलिसी एण्ड भोटी लैंग्वैज' आयोजक– ट्रान्स हिमालय पारल्यामेन्ट्री फोरम एण्ड हिमालयन कल्चर एसोसियशन, 17–18 मार्च, 2007, नयी दिल्ली। प्रस्तुत लेख– 'भोटी भाषा हिमालयी क्षेत्रों की मातृभाषा'।

28. इन्टरनेशनल सेमीनार आन 'वेस्टर्न हिमालयन बुद्धिस्ट कल्चर : प्रॉब्लम एण्ड पोसीबलिटीज़', 24–26 अगस्त, 2007, नाको, किन्नौर, हि0 प्र0)। प्रस्तुत लेख– 'पश्चिमोत्तर हिमालय की सांस्कृतिक समस्याएं एवं उनकी व्यापकता'।

29. ऑल इण्डिया सेमिनार ऑन बुद्धिज़्म, प्रायोजक– भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि0 प्र0, 22–23 दिसम्बर, 2007, कुल्लु, हि0 प्र0 । प्रस्तुत लेख– 'बुद्ध के उपदेशों की प्रासंगिकता'।

30. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'भारत और तिब्बत के धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों में आचार्य पद्मसम्भव का ऐतिहासिक योगदान', 12–15 फरवरी, 2008, आयोजक– गुरु पद्मसम्भव ञिङमा–पा बौद्ध सभा, रिवाल्सर, मण्डी, हि० प्र०, प्रस्तुत लेख– 'भारत और तिब्बत के सांस्कृतिक सम्बन्धों में आचार्य, उपाध्याय और महाराज की ऐतिहासिक भूमिका।'

31. आल इण्डिया सेमीनार ऑन 'बुद्धिज़्म एण्ड वर्ल्ड कल्चर' आयोजक– केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 7–9 मार्च, 2008, प्रस्तुत लेख– 'विश्व संस्कृति का आधार बोधिसत्त्वचर्या'।

32. वर्क–शॉप 'वज्रयान दर्शन एवं साधना', 27–30 अगस्त, 2008, आयोजक– शाक्यमुनि तपस फाउंडेशन, औरंगाबाद। प्रस्तुत शोध पत्र– 'मन्त्र का स्वरूप एवं साधना'।

33. 'इन्टरनेशनल कान्फ्रेंस ऑन बुद्धिज़्म एण्ड साईंस' 15–17 जनवरी, 2009, आयोजक– केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी ।

34. 'वर्कशॉप ऑन मैनुस्क्रिप्टोलॉजी' 25–26मार्च, 2009, आयोजक– केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी।

35. अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी 'पञ्च महाविद्या' 15–18 जून, 2009, आयोजक– केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह, लदाख। शोध पत्र– 'भारत में बौद्ध महाविद्याओं की अध्ययन, अध्यापन एवं अनुशीलन की वर्तमान स्थिति'।

36. नेशनल सेमीनार ऑन 'एजुकेशन पॉलिसी एण्ड भोटी लैंग्वैज' तवांग, अ० प्र०, 6–7 अगस्त, 2009, आयोजक– यूथ एक्शन फॉर सोशल वेल्फेयर, तवांग । प्रस्तुत पत्र– 'भोटी भाषा के सम्बन्ध में कुछ तथ्य एवं के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ में भोटी भाषा एवं साहित्य का पाठ्यक्रम'।

37. इन्टरनेशनल सेमीनार 'बुद्धिस्ट टेक्टस् एण्ड ट्रेडिशन' 21–23 दिसम्बर, 2009, आयोजक– पालि विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ एवं नालन्दा महाविहार, नालन्दा, प्रस्तुत पत्र 'गुह्यसमाजतन्त्र और उसकी परम्पराएं'।

38. इन्टरनेशनल वर्कशॉप ऑन, 'एडिटिंग ऑफ बुद्धिस्ट संस्कृत मैनुस्क्रिप्टस' 13–15 जनवरी, 2010, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ, वाराणसी।

39. वर्कशॉप ऑन वज्रयान दर्शन एवं साधना, 27–30, जनवरी, 2010, प्रायोजक– शाक्यमुनि तपस फांऊडेशन औरंगाबाद, महाराष्ट्र। प्रस्तुत लेख– 1. बौद्ध तन्त्रों का प्रवर्तन एवं लोक में प्रचार 2. गुरु पद्मसम्भव जीवन एवं कृतित्व

40. "बौद्धमत का धार्मिक और सामाजिक सन्देश" दिनांक 28–29 जनवरी, 2011, राष्ट्रीय संगोष्ठी, आयोजक– आर्य महिला पी. जी. कालेज, वाराणसी । प्रस्तुत लेख– "बोधिचित्त का स्वरूप और उसका सामाजिक सन्दर्भ" ।

41. दिनांक 8–11 जनवरी, 2011, के. ति. अ. वि. वि. सारनाथ और ए. आर बी. एस., अमेरिका द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस "तनग्युर ट्रान्सलेशन" ।

42. दिनांक 18–20 फरवरी, 2011, "बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्ट्स एण्ड देयर प्रिज़र्वेशन", राष्ट्रीय संगोष्ठी, नागार्जुन बौद्ध प्रतिष्ठान, गोरखपुर तथा दीनदयाल विश्वविद्यालय, गोरखपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित । प्रस्तुत लेख– "दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग– विश्व धरोहर के संरक्षण में संलग्न एक शोध विभाग" ।

43. धर्म एवं संस्कृति विभाग, प्रवासी तिब्बती सरकार, धर्मशाला एवं विश्वविद्यालय द्वारा दिनांक 15.02.2011 से 30.04.2011 तक विभिन्न

महाविहारों के वरिष्ठ भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए आयोजित हिन्दी भाषा प्रशिक्षण कार्यशाला में रिसोर्स परसन के रूप में प्रति सप्ताह चार कक्षाएं ली ।

44. दिनांक 27–28 फरवरी, 2011 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुदान से बौद्ध अध्ययन केन्द्र श्री बलदेव पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी "बौद्ध धर्म दर्शन और आज का समय" में भाग लिया तथा "दश कुशल कर्म–पथ" विषय पर लेख पढ़ा ।

45. दिनांक 11–16 अप्रैल, 2011 को विश्वविद्यालय में आयोजित वर्कशॉप "वर्कशॉप ऑन एडिटिंग ऑफ बुद्धिस्ट संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट" में भाग लिया ।

46. दिनांक 11 नवम्बर, 2011 को शोध विभागों की ओर से आयोजित वर्कशॉप "वर्कशॉप ऑन एडिटिंग ऑफ संस्कृत बुद्धिस्ट मैनुस्क्रिप्ट एण्ड ट्रान्सलिटरेशन ऑफ मन्त्रास" में भाग लिया तथा "बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों के सम्पादन में आने वाली कुछ प्रारम्भिक समस्याएं" विषय पर वक्तव्य दिया ।

47. दिनांक 17–20 अगस्त, 2011 को केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह की ओर से आयोजित अखिल भारतीय परिसंवाद गोष्ठी "भारतीय संस्कृति की विकास में बौद्धधर्म की देन" में भाग लिया तथा " भारतीय संस्कृति के विकास में बौद्ध अध्यात्म का योगदान" विषयक शोध–निबंध प्रस्तुत किया ।

48. दिनांक 21–24 जनवरी, 2012 को शाक्यमुनि तापस फाउंडेशन, औरंगाबाद की ओर से आयोजित कार्यशाला ''वज्रयान : धर्म दर्शन और साधना" में भाग लिया तथा "महायान एवं मन्त्रयान में गुरु का महत्त्व" विषय पर शोधपत्र प्रस्तुत किया ।

49. दिनांक 3–4 मार्च, 2012 को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा संचालित बौद्ध अध्ययन केन्द्र, श्री बलदेव पी. जी. कॉलेज, बड़ागाँव, वाराणसी तथा संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की ओर से संयुक्त रूप से आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी "बुद्ध और काशी" में भाग लिया तथा "बुद्ध और काशी : ललितविस्तर के सन्दर्भ में'' विषयक शोधपत्र प्रस्तुत किया ।

50. दिनांक 25 जुलाई, 2011 से 25 अक्टूबर, 2011 तक डिपार्टमेंट ऑफ रिलिजन एण्ड कल्चर, गंछेन क्यिशोंग, धर्मशाला तथा केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन, विश्वविद्यालय, सारनाथ की ओर से वरिष्ठ भिक्षु तथा भिक्षुणियों के लिए आयोजित हिन्दी भाषा प्रशिक्षण वर्कशॉप में रिसोर्स परसन के रूप में सम्मिलित हुआ तथा प्रशिक्षण प्रदान किया ।

51. दिनांक 15–04–2012 को धर्म संस्कृति संगम, काशी की ओर से आयोजित एक दिवसीय संगोष्ठी "भारत की खुशहाली, सुरक्षा एवं विश्वशान्ति के लिए सर्व–पन्थ समन्वय का महत्त्व", स्थान– विश्व–संवाद केन्द्र, माधव मार्केट, लंका, वाराणसी में भाग लिया ।

52. दिनांक 27–04 2012 को बौद्ध अध्ययन केन्द्र, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी द्वारा आयोजित संगोष्ठी "वाराणसी के बौद्ध अध्ययन संस्थान एवं उनकी प्रवृत्तियाँ" में भाग लिया तथा " केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय की प्रवृत्तियाँ एवं गतिविधियाँ" विषय पर वक्तव्य प्रस्तुत किया ।

53. दिनांक 12–13 अगस्त, 2012 को महाबोधि सोसायटी, केलंग, लाहुल की ओर से आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी "लाहुल में बौद्ध धर्म का इतिहास" के लिए "लाहुल में बौद्धधर्म तथा ग्यल्वा गोद्–छङ्–वा" विषय पर लेख प्रेषित किया ।

54. दिनांक 20–23 अगस्त, 2013 को बौद्ध दर्शन संस्कृत महाविद्यालय, केलंग, लाहुल–स्पिति में के. ति. अ. वि. वि. सारनाथ एवं के. बौ. वि. सं., लेह के आर्थिक सहयोग से आयोजित "बौद्धधर्म और समाज" विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया तथा "मानव जीवन की दुर्लभता एवं क्षण सम्पत्" विषय पर लेख प्रस्तुत किया ।

55. दिनांक 13–15 जनवरी, 2013 को विश्वविद्यालय में आयोजित "बुद्धिज़्म एण्ड सोसायटी " विषयक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया तथा "हिमालयी समाज पर बौद्ध चिन्तन का प्रभाव" विषयक शोधपत्र प्रस्तुत किया ।

56. दिनांक 15–17 फरवरी, 2013 को महाबोधि सोसायटी, सारनाथ, विश्वविद्यालय एवं भारतीय विधि संस्थान, मुम्बई द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस "जुरिसप्रुडेंस एण्ड लॉ ऑफ कन्स्टीच्युशन" में भाग लिया तथा कान्फ्रेंस के आयोजन समिति के सदस्य के रूप में कार्य किया ।

57. दिनांक 23–25 मार्च, 2013 को डिपार्टमेंट ऑफ इण्डो–टिबेटन स्टडीज़ विश्वभारती शान्ति निकेतन की ओर से आयोजित राष्ट्रीय

संगोष्ठी "बुद्धिस्ट स्टडीज़ प्रोस्पेक्टिव एण्ड स्कोप" में भाग लिया तथा "भारत में बौद्ध अध्ययन का पुनरुद्धार " विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया।

58. दिनांक 1 फरवरी, 2013 से सत्रान्त तक डिपार्टमेंट ऑफ रिलिजन एण्ड कल्चर, केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन, धर्मशाला द्वारा वरिष्ठ भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए आयोजित "हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला" में प्रति साप्ताह दो दिन व्याख्यान प्रदान किया ।

59. पश्चिमोत्तर हिमालयी संस्कृति एवं बौद्धधर्म, राष्ट्रीय संगोष्ठी 18–19 मई, 2013 मनाली, हि. प्र. । आयोजक– डोलमा ल्हखङ् पल साक्या फाउंडेशन, नयी दिल्ली । प्रस्तुत लेख– पश्चिमोत्तर हिमालयी समाज पर बौद्धधर्म का प्रभाव ।

60. राष्ट्रीय संगोष्ठी– भारत तिब्बत ज्ञान सम्बन्ध, दिनाँक 3–5 जुलाई, 2013, शिमला । आयोजक– हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, हि. प्र. शिमला । प्रस्तुत निबन्ध– भारत तिब्बत ज्ञान सम्बन्ध परम्परा के विविध आयाम एवं प्रतिमा निर्माण विद्या ।

61. नेशनल सेमीनार ऑन बुद्धिज़्म, न्यू बुद्धिज़्म एण्ड क्वेश्चन ऑफ कास्ट। आयोजक– केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय एवं इण्डियन काउंसिल ऑफ फिलोसाफिकल रिसर्च, नयी–दिल्ली दिनाँक 3–5 अक्टूवर, 2013, प्रतिभागी के रूप में सम्मिलित ।

62. दिनांक 10–12 दिसम्बर 2013, नेशनल सेमिनार ऑन बुद्धिस्ट आर्ट एण्ड फिलासोफी, आयोजक– ज्ञान–प्रवाह, वाराणसी एवं केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय, सारनाथ । प्रतिभागी के रूप में सम्मिलित ।

63. वज्रयान धर्म एवं दर्शन, कार्यशाला दिनांक 21 से 15 फरवरी, 2014, आयोजक– शाक्यमुनि तापस फाउंडेशन औरंगाबाद । प्रस्तुत लेख– दुर्लभ मानव जीवन एवं बौद्ध जीवन–दृष्टि ।

64. धर्म एवं संस्कृति विभाग, तिब्बती सरकार, धर्मशाला द्वारा आयोजित वरिष्ठ भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए आयोजित हिन्दी कार्यशाला (फरवरी 2013 से जनवरी 2014) में प्रति सप्ताह दो व्याख्यान दिया ।

65. दिनाँक 20–2–2014 को खुनु लामा तेन्ज़िन ग्यलछ़न के 37वें परिनिर्वाण दिवस के अवसर पर हिमाचल–प्रदेश बौद्ध युवा छात्र संगठन की ओर से सारनाथ में आयोजित एक दिवसीय परिसंवाद गोष्ठी– ''जनजातीय क्षेत्र लाहुल–स्पिति और किन्नौर में बौद्धधर्म की वर्तमान दशा एवं दिशा''– विषयक गोष्ठी की अध्यक्षता की तथा अध्यक्षीय व्याख्यान दिया ।

66. दिनांक 8–9 मार्च, 2014 को महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली तथा राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी– "संस्कृत वाङ्मय की लोकधर्मी परम्पराएं– संस्कृत वाङ्मय के अभिवर्धन में राहुल जी के योगदान के विशेष सन्दर्भ में"– स्थान इंडियन सोशल इंस्टीच्यूट, 10 इंस्टीच्यूशनल एरिया, लोधी रोड, नयी दिल्ली, में भाग लिया तथा– "राहुल– संकलन में प्राप्त बौद्धतन्त्रों के कुछ अज्ञात एवं नवीन ग्रन्थ"– विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया ।

67. दिनांक 12–16 मार्च, 2014 को धर्म और संस्कृति विभाग, केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन, धर्मशाला द्वारा केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय, सारनाथ के सहयोग से सारनाथ में 'रिसर्च मैथडोलॉजी' विषय पर आयोजित कार्यशाला में दिनांक 16–3–2014 को 'बौद्धतन्त्र में शोध की सम्भावनाएं तथा समस्याएं' विषय पर व्याख्यान दिया ।

68. रिसेंट पर्सपेक्टिव ऑन हिमालयन बुद्धिज़्म– 27–28 मई, 2014, इण्डियन इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांसड स्टडी, शिमला एवं इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग हिमाचल विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित संगोष्ठी में भाग लिया तथा 'हिमालयी क्षेत्रों में बौद्ध अध्ययन की दशा एवं दिशा' विषयक लेख प्रस्तुत किया ।

69. सेन्टर फॉर स्टडीज़ इन सिविलायज़ेशन नयी दिल्ली के सहयोग से बौद्ध विद्या संरक्षण सभा, जिस्पा (हि. प्र.) द्वारा दिनांक 14–16 जून, 2014 को रिकाँग पिओ, किन्नौर, हि. प्र. में जनजातीय संस्कृति विषयक सेमीनार में भाग लिया तथा 'जनजातीय कलाओं का संरक्षण तथा संवर्धन' (लाहुल–स्पिति एवं किन्नौर के सन्दर्भ में) विषयक लेख प्रस्तुत किया ।

70. दिनांक 20–09–2014 को आधुनिक भाषा एवं क्लासिकल भाषा विभाग, के. ति . अ. वि.वि., सारनाथ की ओर से आयोजित एक दिवसीय सिम्पोज़ियम 'द सिगनिफिकेंस ऑफ दी ऑर्ट ऑफ टीचिंग एण्ड द रोल ऑफ टीचर्स इन विल्डिंग ए बेटर टूमारो' में भाग लिया।

71. केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय के हेतु एवं अध्यात्म संकाय की ओर से 'विज्ञानवाद' पर दिनांक 25–27 सितम्बर, 2014 को आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में भाग लिया ।

72. सेन्टर फॉर बुद्धिस्ट स्टडीज़, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज द्वारा दिनांक 17–21 मार्च, 2015 तक आयोजित बौद्ध महोत्सव एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी– बौद्ध–संस्कृति के विविध आयाम में भाग लिया तथा 'बौद्ध–तन्त्र' विषय पर व्याख्यान प्रस्तुत किया ।

73. दिनांक 23–25 दिसम्बर, 2015 तक कुशीनगर, उत्तर प्रदेश में केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय, सारनाथ, वाराणसी द्वारा संस्कृति–मन्त्रालय, भारत सरकार और अन्य बौद्ध शैक्षिक संस्थाओं के सहयोग से आयोजित त्रिदिवसीय बौद्ध महोत्सव में भाग लिया तथा महोत्सव में भगवान् बुद्ध और बौद्धधर्म–दर्शन से सम्बन्धित विषयों पर महोत्सव में आये लोगों को छम, पूजा, बौद्धधर्म एवं वाद्ययन्त्रों पर परिचयात्मक व्याख्यान दिया ।

74. दिनांक 27–29 नवम्बर, 2015 को आयोजित यू. पी. हिस्ट्री कांग्रेस के 'बौद्ध–इतिहास' नामक सत्र में भाग लिया। आयोजन स्थल– केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय, सारनाथ, वाराणसी ।

75. केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय एवं कौंसिल फार इंडियन फिलासोफिकल रिसर्च, नयी दिल्ली द्वारा संयुक्त रूप से दिनांक 15–17 दिसम्बर, 2015 तक के. ति. अ. वि. वि., सारनाथ में आयोजित "टीचर्स मीट– डायमेंशन ऑफ बुद्धिस्ट डॉक्ट्रिन एण्ड ट्रेण्ड" में भाग लिया।

76. दिनांक 23–25 जनवरी, 2016 को धर्म एवं संस्कृति विभाग, केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन, धर्मशाला और विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित Research Methodology Workshop for Second Batch Major Tect Specialization Candidate में भाग लिया तथा "बौद्ध तन्त्रों के संस्कृत ग्रन्थों के सम्पादन एवं शोध में आने वाली प्रारम्भिक समस्याएं एवं उसकी पृष्ठभूमि" विषय पर रिसोर्स परसन के रूप में व्याख्यान एवं शोध–पत्र प्रस्तुत किया ।

77. दिनांक 17–18, मार्च 2016 को बौद्ध अध्ययन केन्द्र, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी में आयोजित द्वि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'बौद्ध–मत और नारी' में भाग लिया।

78. दिनांक 10–12 जून, 2016 को दगपो शदडुप लिङ् बौद्ध विहार, काइस, कुल्लु (हि. प्र.) की ओर से आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी 'सत्त्वों का दुःख निवारण तथा बौद्ध धर्म' में भाग लिया तथा 'भगवान् बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन और लोक कल्याण' विषयक निबन्ध प्रस्तुत किया।

79. केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय, सारनाथ द्वारा हिमाचल बौद्ध छात्र संगठन के सहयोग से दिनांक 16–28 जून, 2016, हिमाचल प्रदेश के किन्नौर, लाहुल एवं स्पिति के विभिन्न गांवों में 'राष्ट्र के उन्नयन में हिमालयी बौद्ध संस्कृति का योगदान' विषय पर आयोजित कार्यशाला में रिसोर्स–पर्सन के रूप में भाग लिया तथा उक्त विषय के विविध आयामों पर व्याख्यान दिया।

80. दिनांक 29–09–2016 को हिमाचल बौद्ध छात्र संगठन की ओर से आयोजित विशेष सभा में 'पत्रिका का प्रकाशन तथा निबन्ध लेखन की प्रविधि' विषय पर व्याख्यान दिया ।

81. बौद्ध अध्ययन केन्द्र, आर्यमहिला महाविद्यालय, चेतगंज, वाराणसी में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रायोजित विपश्यना पर अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला, दिनांक 26–09–16 से 2–10–2016 में दिनांक 30 सितम्बर 2016 को 'शमथ एवं विपश्यना साधना– कुछ आवश्यक तथ्य', विषय पर निबन्ध प्रस्तुत किया ।

82. दिनांक 3–6 अक्टूबर, 2016 तक मूलशास्त्र विभाग, केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय द्वारा 'बौद्ध प्रमाण दर्शन' विषय पर आयोजित चार दिवसीय संगोष्ठी में भाग लिया ।

83. दिनांक 17 से 20 फरवरी 2017 को शाक्यमुनि तपस फाउंडेशन एवं रेकी इन्फिनिटिव, औरंगाबाद द्वारा आयोजित 'वज्रयान दर्शन एवं साधना' विषय पर आयोजित कार्यशाला में भाग लिया तथा 'बौद्ध साधना पद्धति और वज्रासन बुद्धभट्टारक साधन' विषयों पर लेख प्रस्तुत किया । कार्यशाला में डिगुङ छेचृङ रिनपोछे ने भैषज्यगुरु, वज्रसत्त्व एवं महाकाल का अभिषेक प्रदान किया ।

84. दिनांक 26–27 दिसम्बर, 2016 को आधुनिक भाषा विभाग, सी. यू. टी. एस., सारनाथ द्वारा आयोजित दो दिवसीय सिम्पोज़ियम– 'इम्पोर्टेंस ऑफ ह्युमन वैल्यूज़ एण्ड इथिक्स इन मॉडर्न टाइम्ज़' में भाग लिया ।

85. दिनांक 25–27 मार्च 2017 को सम्प्रदाय शास्त्र, सी. यू. टी. एस., सारनाथ द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय अखिल भारतीय संगोष्ठी 'शील समाधि और प्रज्ञा' में भाग लिया ।

86. दिनांक 1 से 16 जून, 2017, तक केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय तथा हिमाचल युवा बौद्ध छात्र संघ (सारनाथ) द्वारा प्रायोजित 'राष्ट्र के निर्माण में बौद्धधर्म तथा हिमालयी संस्कृति का योगदान' विषय पर हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में आयोजित कार्यशाला में रिसोर्स परसन के रूप में शामिल हुआ तथा सम्बन्धित विषय के विविध आयामों पर कार्यशाला के 12 सत्रों में व्याख्यान दिया ।

87. लोक–ज्योति बौद्ध विहार, गेमुर, लाहुल–स्पिति द्वारा दिनांक 17–20 जून, 2017 तक जिस्पा फोटंग (हि. प्र.) में आयोजित चार दिवसीय राष्ट्रीय परिसंवाद गोष्ठी 'बौद्ध कला और संस्कृति' में भाग लिया तथा 'लाहुल शब्द निर्वचन' विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया ।

88. दिनांक 15 सितम्बर, 2017 को पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी समारोह, आयोजन समिति वाराणसी क्षेत्र एवं केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित एक दिवसीय संगोष्ठी 'पं. दीनदयाल उपाध्याय एकात्म मानववाद, अन्त्योदय एवं ग्राम विकास' में भाग लिया तथा 'भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में एकात्म मानववादी दर्शन' विषय पर शोधपत्र प्रस्तुत किया ।

89. दिनांक 30–31 अक्टूबर, 2017 को महाबोधि सोसायटी एवं पालि इंस्टीट्यूट द्वारा पालि एण्ड बुद्धिज़्म विषय पर आयोजित चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया तथा 'भोटानुवादित बुद्धवचन–संग्रह (कग्युर) का संक्षिप्त परिचय' विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया ।

90. दिनांक 30–31 दिसम्बर, 2017 को केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस माइंड इन इंडियन फिलोसाफिकल स्कूल्ज़ ऑफ थॉट एण्ड मॉडर्न साईंस में भाग लिया।

91. दिनांक 20–21 नवम्बर, 2018 को अन्तर्राष्ट्रीय पालि इन्स्टीच्यूट एवं महाबोधि सोसायटी, सारनाथ द्वारा आयोजित पांचवीं अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस 'पालि एण्ड बुद्धिज़्म' में भाग लिया तथा 'तिब्बत के बौद्ध सम्प्रदाय(=निकाय)' विषय पर शोधपत्र प्रस्तुत किया ।

92. दिनांक 17–19 दिसम्बर, 2018 को केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान द्वारा आयोजित 'ऑल इण्डिया सेमिनार ऑन बुद्धिस्ट स्टडीज़' में भाग लिया तथा 'बौद्ध संस्कृत पाण्डुलिपियाँ' विषय पर शोधपत्र प्रस्तुत किया।

93. दिनांक 22–23 दिसम्बर, 2018 को बोधगया बिहार में थाई भारत सोसायटी(वट पा थाई), दलाई लामा ट्रस्ट एवं के. ति. उ. शि. सं, सारनाथ द्वारा संयुक्त रूप में आयोजित 'इन्टरनेशनल सेमिनार ऑन तिपिटक (त्रिपिटक)' में अब्ज़र्वर के रूप में भाग लिया ।

94. दिनांक 12–01–2019 को बोधगया टेम्पल मैनेजमैंट कमेटी और पर्यटन विभाग विहार, सरकार के संयुक्त आयोजन में आयोजित 'इन्टरनेशनल सेमिनार ऑन बुद्धिस्ट कल्चर एण्ड मॉडर्न सोसाइटी' में भाग लिया तथा 'आधुनिक सन्दर्भ में बौद्ध संस्कृति का महत्त्व' विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया ।

95. दिनांक 26–28 मार्च, 2019 को सेन्टर फार इनडैंजर्ड लैंग्वैज्स, विश्वभारती शान्तिनिकेतन द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'मैनुस्क्रिप्ट इन न्यु डायरेक्शन (MIND–2019) लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर', में भाग लिया तथा 'बौद्ध–संस्कृत पाण्डुलिपियों का स्रोत' विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया तथा एक सत्र की अध्यक्षता भी की।

96. दिनांक 1.6.2019 से 9.6.2019 तक हिमाचल बौद्ध छात्र संघ और संस्थान की ओर से आयोजित 'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बौद्ध धर्म एवं हिमालयी संस्कृति की प्रासंगिकता' विषय पर आयोजित कार्यशाला में भाग लिया तथा तथा नौ सत्रों में 'हिमालयी संस्कृति एवं बौद्धधर्म' के विविध विषयों पर व्याख्यान दिया ।

97. दिनांक 13–6–2019 से 17–6–2019 तक लोक ज्योति बौद्ध विहार, गैमुर लाहुल, द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी 'लाहुल का धर्म, कला, संस्कृति और इतिहास' में भाग लिया तथा 'बौद्धतन्त्रों में पीठों की व्यवस्था' विषय पर आलेख प्रस्तुत किया।

98. दिनांक 13 से 17 सितम्बर, 2019 तक औरंगाबाद में शाक्यमुनि बुद्ध तपस फाउंडेशन द्वारा आयोजित 'वज्रयान–दर्शन एवं साधना' नामक कार्यशाला में भाग लिया तथा 'मञ्जुश्री साधना में मञ्जुश्रीनामसंगीति का वैशिष्ट्य' विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया ।

99. दिनांक 3–5 अक्टूबर, 2019 को विश्वविद्यालय के गेलुग सम्प्रदाय द्वारा 'गेलुग–पा सम्प्रदाय एवं उसकी संस्थाएँ' विषय पर आयोजित त्रि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया ।

100. दिनांक 9–11–2019 को तिब्बती संस्थान एवं पुरातन छात्रों के द्वारा आयोजित एक दिवसीय 'इन्टरनेशनल कान्फ्रेंस ऑन टिबेटन बुद्धिज़्म एण्ड हिमालयन स्टडीज़' में भाग लिया ।

101. दिनांक10–11 नबम्वर, 2019 को अन्तर्राष्ट्रीय पालि इन्स्टीच्यूट एवं महाबोधि सोसायटी, सारनाथ द्वारा आयोजित छठवां अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस 'पालि एण्ड बुद्धिज़्म' में भाग लिया तथा 'तीनों यानों में भगवान् बुद्ध के उपदेशों की भाषा' विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया।

102. दिनांक 13–14 जनवरी, 2020 को केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ द्वारा आयोजित 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा तिब्बत से लाये गये कग्युर, तन्ग्युर एवं सुङबुम का हिन्दी में अनुवाद' नामक दो दिवसीय कार्यशाला में रिसोर्स परसन के रूप में सम्मिलित हुआ तथा 'अनुवाद प्रक्रिया, सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद में संस्कृत पाठों का महत्त्व' विषय पर शोध–पत्र प्रस्तुत किया ।

103. दिनांक 1–2 फरवरी, 2020 को राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, लखनऊ परिसर द्वारा आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'संस्कृत–वाङ्मयस्य विकासे जैन–बौद्धाचार्याणामवदानम्' विषय में भाग लिया तथा 'बौद्धतन्त्र साहित्य की अभिवृद्धि में भारतीय आचार्यों का योगदान' विषयक शोध–पत्र प्रस्तुत किया ।

104. दिनांक 20–02–2020 को संस्थान में 'बौद्धदर्शन एवं बौद्ध विद्याओं के क्षेत्र में स्व. पद्मश्री प्रो. रामशंकर त्रिपाठी जी का योगदान', नामक स्मृति–संगोष्ठी का आयोजन किया तथा भाग लिया ।

शोध–पत्रिका 'धीः' में प्रकाशित शोध–निबन्ध–

01. नामसंगीति की अध्ययन सामग्रियाँ–(1), धीः –1, पृ० 220–238
02. सिद्ध एवं अपभ्रंश साहित्य का सर्वेक्षण– धीः –1, पृ० 257–298
03. प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय की साहित्यिक साधना– धीः –3, पृ० 141–147
04. बौद्धतन्त्रों में पीठोपपीठादि विवेचन–1, धीः –1, पृ० 137–148
05. बौद्धतन्त्रों में पीठोपपीठादि विवेचन–2, धीः –3, पृ० 65–69
06. नामसंगीति की अध्ययन सामग्रियाँ–2, धीः –3, पृ० 114–140
07. नामसंगीति की अध्ययन सामग्रियाँ–3, धीः –4, पृ० 70–82
08. बौद्धतन्त्र साहित्य का वर्गीकरण– धीः–5, पृ० 63–82
09. पञ्च–तथागतज्ञान– धीः–7, पृ० 84–90
10. बौद्धतन्त्रों में अभिषेक– धीः–8, पृ० 132–140
11. बौद्धतन्त्रों में कुल विवेचन– धीः–9, पृ०104–114
12. बौद्धतन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन–(3), धीः–10, पृ० 140–152
13. बौद्धतन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन–(4), धीः–11, पृ० 57–62
14. वज्रधातु–महाण्डल – धीः–12, पृ० 59–66
15. आर्यदेव एवं उनकी तान्त्रिक रचनाएँ – धीः–13, पृ० 45–60
16. कृष्णयमारितन्त्र में निर्दिष्ट अभिषेक विधि – धीः–14, पृ० 53–62
17. चीन में बौद्धतन्त्र – धीः–15, पृ० 149–153
18. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(1), धीः–15, पृ० 323–336
19. महापण्डित वागीश्वर कीर्ति एवं उनकी रचनाएँ– धीः–16, पृ० 77–84
20. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(2), धीः–17, पृ० 75–90
21. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(3), धीः–18, पृ० 19–34
22. बौद्धतन्त्रों की कुछ मुद्राएँ–(6), धीः–20, पृ० 33–40
23. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(4), धीः–21, पृ० 29–40
24. बौद्धतन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन–(5), धीः–21, पृ० 41–46
25. कालचक्रमण्डलस्थ देवपरिकर : धीः–22, पृ० 23–38
26, बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(5), धीः–23, पृ० 25–40
27. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(6), धीः–24, पृ० 19–28
28. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(7), धीः–25, पृ० 91–96
29. वज्रगुरु मन्त्र की अनुशंसा– धीः–26, पृ० 56–60
30. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(8), धीः–27, पृ० 25–32
31. महाराग की अवधारणा– धीः–27, पृ० 87–94

32. बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(9), धीः–28, पृ० 25–42
33. तथागतगुह्याचिन्त्यसूत्र – एक अनुशीलन – धीः–29, पृ० 75–82
34. मन्त्रोद्धारविमर्श– धीः–30, पृ० 43–72
35. बौद्ध तन्त्रों का प्रवर्तन एवं बुद्धवचनत्व– धीः–31, पृ० 113–120
36. अष्टमहाश्मशान – स्वरूप एवं परिचय– धीः–32, पृ० 23–42
37. मन्त्रनयानुसार बोधिपाक्षिक धर्मों के साथ देवतायोग– धीः–33, पृ० 101–112
38. तान्त्रिक अभिषेक का आचारशास्त्रीय पक्ष– धीः–34, पृ० 31–36
39. BuddhistTantric Texts – A Bibliography– धीः–34, पृ. 109–128
40, बौद्धतन्त्र वाङ्मय का परिचय–(10), धीः–35, पृ० 5–14
41. सम्यक् सम्बुद्ध भाषित प्रतिमालक्षण – संक्षिप्त परिचय– धीः–35, पृ० 117–136
42. वज्रयान में बोधिचित्त का विकास – धीः–36, पृ० 97–106
43. महायान एवं तन्त्रयान में गुरु–प्रत्यय विमर्श– धीः–37, पृ० 33–50
44. बौद्धतन्त्रों में प्रतिपादित शिष्य–भाव– धीः–38, पृ० 117–128
45. बौद्धेतर तन्त्रों में गुरु–शिष्य विमर्श–धीः 39, पृ० 99–120
46. बौद्धतन्त्रों में सिद्धियां – स्वरूप एवं भेद– धीः 40, पृ० 111–128
47. पद–आसन–आक्षेप–अभिनय एवं मुद्रा– धीः 41, पृ० 81–92
48. इहैव जन्मनि बुद्धत्व की अवधारणा– धीः 42, पृ० 19–26
49. रत्नगुणसञ्चयगाथा व्याख्या संक्षिप्त परिचय, धीः 47, पृ० 117–144
50. मन्त्र स्वरूप भावना एवं भेद– धीः 49, पृ० 21–30
51. बौद्धतन्त्रों में आयुर्वेद सामग्री– धीः 49, पृ. 97–104
52. बौद्धतन्त्रों में आयुर्वेद सामग्री– धीः 50, पृ. 7–14
53. बौद्धतन्त्रों में वर्णित साधना एवं चर्या स्थल– धीः–50, पृ. 55–66
54. बौद्धतन्त्रों में आयुर्वेद सामग्री– धीः–52, पृ. 10–22
55. बौद्ध स्तोत्रों के पाठ के लाभ एवं हितानुशंसा– धीः–53, पृ. 17–36
56. कालचक्रतन्त्र में प्रतिपादित न्यास पद्धति– धीः–54, पृ. 19–26
57. बौद्धतन्त्रों में आयुर्वेद सामग्री– धीः अंक–52, पृ. 10–22
58. राहुल संकलन में प्राप्त बौद्धतन्त्रों की कुछ अज्ञात एवं नवीन ग्रन्थ– धीः–54, पृ. 71–78
59. बौद्धतन्त्रों में आयुर्वेद सामग्री – धीः अंक 53, पृ. 9–16
60. बौद्धतन्त्रों में आयुर्वेद सामग्री – धीः 54वां अंक, पृ. 9–18
61. बौद्धतन्त्रों में आयुर्वेद सामग्री – धीः, अंक– 55, पृ. 9–14
62. आचार्य अभयाकरगुप्त और उनकी तान्त्रिक रचनाएँ– धीः, अंक –55, पृ. 15–26
63. दशतत्त्वों का स्वरूप एवं परिचय– धीः–56, पृ. 15–36
64. शिष्य आशा परिपूरणी गुरुपञ्चाशिका व्याख्या (पूर्वार्ध)– धीः–57, पृ. 85–102
65. शिष्य आशा परिपूरणी गुरुपञ्चाशिका व्याख्या (उत्तरार्ध)– धीः–58, पृ. 63–87
66. मञ्जुश्रीनामसंगीति एवं विष्णुसहस्रनाम – तुलनात्मक अध्ययन सामग्री– धीः–59, पृ. 5–24
67. बौद्ध मूर्ति निर्माण का ऐतिहासिक एवं सामाजिक संदर्भ – धीः– 60, पृ. 77–88
68. अभिसमयक्रम – संक्षिप्त परिचय– धीः– 61 (प्रकाशनाधीन)

अन्य पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख–

01. 'लद्दाख : परम्परा का साक्षात्कार', दैनिक ट्रिव्यून, जून 1988

02. 'एवंकार : एक विवेचन', 'श्रमण विद्या'–2, प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय स्मृति ग्रन्थ, सारनाथ, 1988

03. बौद्ध तान्त्रिक पीठ और उनका भौगोलिक सन्दर्भ, विद्या–भारती, 1992, किन्नौर, हि. प्र.।

04. 'सीमान्त प्रदेशों की सामाजिक कुरीतियाँ', 'उद्बोधन' जनवरी 1992, भारतीय बौद्ध समन्वय समिति, नई दिल्ली।

05. 'बिब्लियोग्रॉफी ऑन लाहुल एण्ड स्पिति', ट्राइवल फेयर, सोविनियर केलंग, हि० प्र० 1993

06. 'लद्दाख एवं लाहुल–स्पिति : सम्बन्धों का खुला द्वार तथा भविष्य', ट्रायबल फेयर, सोविनियर, केलंग, हि० प्र०, 1994

07. 'गुरुपञ्चाशिका में वर्णित गुरु की अवधारणा', 'सोऽहं सन्देश' जुलाई 1996, पृ० 45–48, वाराणसी।

08. 'बौद्धतन्त्र साहित्य का इतिहास', 'तन्त्रागम' खण्ड, उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी, लखनऊ।

09. 'भोट लिपि का प्राचीन भारतीय लिपियों से सम्बन्ध', 'चन्द्रताल' लाहुल, हि० प्र०।

10. 'कालचक्रतन्त्र में प्रतिपादित योग' कालचक्रतन्त्र अभिषेक, स्मारिका, जिस्पा, लाहुल, 1994

11. 'भावविवेक की दृष्टि में वेदान्त', सह–लेखक, सेलेक्टेड राइटिंग एण्ड स्पीचिज़ ऑफ एस० रिन्पोछे, सारनाथ, 1999

12. 'दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना : विहंगावलोकन', 'न्यूज़लेटर', के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ।

13. 'छम' का आनुष्ठानिक महत्त्व एवं लोक संस्कृति', 'सोऽहं सन्देश', वाराणसी, 1997

14. 'लाहुली बोलियों के सन्दर्भ में हिमालयीय क्षेत्रों की अन्य सदृश बोलयाँ', 'चन्द्रताल', लाहुल, हि० प्र०।

15. 'तिब्बती शरणार्थियों एवं भारतीयों के मध्य समन्वय की आवश्यकता'।

16. हिमालयी संस्कृति एवं भाषा : परम्परा एवं परिवर्तन– रिपोर्ट 'विपाशा', शिमला, हि० प्र०, 1993

17. 'अष्टशमशान स्वरूप एवं परिचय', लदाख जर्नल, 2002

18. कालचक्रतन्त्रानुसार व्रत, संवर एवं मूलापत्ति, लद्दाख प्रभा–8, 2002 , के. बौ. वि. सं. चोगलमसर, लेह–लद्दाख ।

19. 'भारत में बौद्ध अध्ययन संस्थाओं की आवश्यकता' स्मारिका, 2550वीं बुद्ध जयन्ती, पृ0 38–44, 2005, हिमालयी बौद्ध संस्कृति संरक्षण सभा, दिल्ली।

20. 'आचार्य नागार्जुन रचित पञ्चक्रम', 'आचार्य नागार्जुन, पृ0 136–142, सलारजंग म्युजियम, हेदराबाद, 2003

21. 'इकीसवीं सदी के विहान में बौद्धतन्त्रों का अध्ययन', 'इककीसवीं सदी में बौद्धधर्म', समपादक– भवानीशंकर शुक्ल, पृ0 256–265, के. बो. वि. सं. चोगलमसर, लेह–लदाख, 2005

22. 'हिमालयी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में भोटी भाषा का महत्त्व', स्मारिका, हङरङ्, पृ0 59–65, 2007, प्रकाशक, हङरङ् रिनदेन बौद्ध सांस्कृतिक धरोहर संरक्षण सभा, नाको, किन्नोर।

23. 'हिमालयी सांसकृतिक समसयाएं एवं उनकी व्यापकता' चन्द्रताल, 25वां अंक, 2007, कुल्लू, हि0 प्र0

24. बोधिचित्त का स्वरूप तथा उसका सामाजिक संदर्भ, बौद्ध–विमर्श, प्रकाशक, बौद्ध अध्ययन केनद्र, आर्य महिला पी.जी. कालेज, वाराणसी, 2011

25. लाहुल में बौद्धधर्म के संस्थापक आचार्य –"लाहुल स्पीति जीवन ओर संस्कृति"– पृ. 43–50, सम्पादक– तुलसी रमण, हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी, शिमला, 2011

26. भारतीय संस्कृति के विकास में बौद्ध अध्यातम का योगदान, विपाशा, अंक 156, वर्ष 27, जनवरी–फरवरी 2012, पृ. 11–19, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि. प्र., शिमला ।

27. "लदाख–जंस्कर एवं लाहुल स्पीति के मध्य ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संबंध" हिमालयी संस्कृति कोश भाग–2, संम्पा. प्रो. रमेशचनद्र तिवारी, केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, लेह, 2012

28. भोटी भाषा "पीपुलस लिंगिवस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, प्रकाशक– भाषा रिसर्च प्रकाशन, वड़ोदरा, गुजरात, सन् 2012

29. "हिमालयी समाज पर बौद्ध चिन्तन का प्रभाव" प्रोसीडिंग इंटरनेशनल कांफ्रेंस ऑन बुद्धिज़्म एण्ड सोसायटी, 13–15 जनवरी, 2013,

पृ. सं. 259–267. के.ति.वि.वि., सारनाथ।

30. बुद्ध और काशी (ललितविस्तर के विशेष संदर्भ में) धर्मदूत, 80वां अंक, विशेषांक, पृ. 208–212, महाबोधि सोसायटी ऑफ इंडिया, सारनाथ वाराणसी 2014.

31. भारत में बौद्ध अध्ययन की पुनर्स्थापना, पाली–विमर्श– समपादक– प्रो. विमलेनद्र कुमार एवं प्रो. रमेश प्रसाद, महाबोधि सोसायटी ऑफ इंडिया, सारनाथ, प्रकाशक– भारती प्रकाशन, वाराणसी, 2015.

32. इंडो टिवेटन स्टडीज, विश्वभारती शान्तिनिकेतन द्वारा प्रकाशित ग्रंथ बुद्धिस्ट स्टडीज ए प्रोसपेक्टिव डायमेंशन में भारत में बौद्ध अध्ययन नामक लेख प्रकाशित (पृ.13–22), सम्पादक– संजीव कुमार दास ।

33. बौद्ध साधना पद्धति– ताओ ऑफ वज्रयान में – प्रकाशक–शाक्यमुनि तपस फाउंडेशन, ओरंगाबाद, फरवरी, 2017

34. गुरुपद्मसमीव– ताओ ऑफ वज्रयान में – प्रकाशक शाक्यमुनि तपस फॉउंडेशन, ओरंगाबाद, फरवरी, 2017

35. वज्रासन बुद्ध भट्टारकसाधन– ताओ ऑफ वज्रयान में – प्रकाशक शाक्यमुनि तपस फॉउंडेशन, ओरंगाबाद, फरवरी, 2017

36. महाकालसाधन– ताओ ऑफ वज्रयान में – प्रकाशक शाक्यमुनि तपस फॉउंडेशन, ओरंगाबाद, फरवरी, 2017

37. विश्व–संस्कृति का आदर्श बोधिसत्वचर्या– जङ छ़म– प्रकाशक किन्नौर लाहुल स्पीति बौद्ध सेवा संघ, शिमला, हि.प्र., जनवरी, 2017

38. बौद्ध तन्त्रों का संक्षिप्त परिचय– धर्मदूत, 82वां, Nov.–16, महाबोधि सोसायटी ऑफ इंडिया, सारनाथ, 2016.

39. भारत तिब्बत ज्ञान–संबंध परम्परा, धर्मदूत– अंक–83, नवम्बर–2017, पृ. 234–243, महाबोधि सोसायटी ऑफ इंडिया, सारनाथ।

40. लाहुल शब्द निर्वचन, जङ छ़म, शिमला, अप्रैल, 2018

41. ग्रंथ समीक्षा – लाहुल अन्तरंग लोक, विपाशा, हि.प्र. शिमला, में प्रकाशनार्थ प्रेषित।

42. भोट–अनुवाद बुद्ध–वचन कग्युर का संक्षिपत परिचय– धर्मदूत अंक 84, नवम्बर 2018, पृ. 203–212, महाबोधि सोसायटी ऑफ इंडिया ओर पालि इंस्टीट्यूट, सारनाथ।

43. अकुशलकर्मपथ– नामक लघुग्रंथ एवं उसकी समीक्षा, संकाय पत्रिका, श्रमणविद्यासंकाय, समपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

44. बौद्ध प्रतिमा निर्माण का ऐतिहासिक एवं सामाजिक संदर्भ, डिपार्टमेंट ऑफ इंडो टिब्बेटन स्टडीज, विश्वभारती शानितनिकेतन।

45. अनित्यतासूत्रम्–संपादित, प्रोफेसर वासुदेव द्विवेदी स्मृति अंक में प्रकाशित, समपादक धर्मदत्त चतुर्वेदी, वाराणसी।

46. सारनाथ का पुरातात्विक उतखनन एवं नवीन बौद्ध विहार– शीर्षक लेख जयीता गांगुली अभिनन्दन ग्रंथ।

47. पश्चिमोत्तर हिमालयी संस्कृति की समस्याएं एवं उसकी व्यापकता– जङ छ़म – कि.ला. सि. बो. सं., शिमला ।

48. आधुनिक समाज के संदर्भ में बौद्ध संस्कृति का महत्तव– प्रज्ञा– अंक 21–1, 2019, ए. जर्नल ऑफ बोधगया टेम्पल मेनेजमेंट कमेटी, बोधगया, पृ. 95–99, 2019.

49. भगवान् बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन ओर लोक कल्याण– ताओ ऑफ वज्रयान, प्रकाशक शाक्यमुनि बुद्ध तपस फॉउंडेशन, ओरंगावाद, सितम्बर, 2019.

50. तिब्बत के बौद्ध सम्प्रदाय (=निकाय)– धर्मदूत – अंक– 85, पृ. 126–134, नवम्बर 2019, महाबोधि सोसाइटी ऑफ इंडिया, सारनाथ।

51. रोहतांग सुरंग– सपनों का साकार होना, अभूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी प्रथम पुण्य के अवसर पर कूलूत विकास मंच द्वारा प्रकाशित होने वाले अटल स्मृति अंक में प्रकाशित प्रेषित ।

52. प्रारम्भिक बौद्ध धर्म में स्त्रियों का स्थान– भिक्षुणी अनोजा अभिनन्दन ग्रंथ में प्रकाशित, नवम्बर 2019

प्रकाशित निबंध–

01. छठे दलाई लामा का जन्म क्षेत्र तवांग

02. तवाङ् तुझे शत शत नमन् – यात्रा संस्मरण

03. क्येसन्दुर मेले के बहाने

04. का–ग्युर के वाचन का हितानुशंसा एवं लाभ ■

गुमनाम नायक : कैप्टन प्रेमजीत

✍ धनेश्वरी शर्मा

18 अप्रैल 2024 को मुझे कुल्लू से लगभग 25 किलोमीटर दूर कटराईं कस्बे के गांव छन्नी में एक ऐसे समारोह का हिस्सा बनने का अवसर मिला, जो मेरे लिए काफी प्रेरणादायक था और जिसका वर्णन मैं यहां करना चाहूंगी।

यह कार्यक्रम लगभग 42 वर्ष पूर्व हुए एक सैनिक कैप्टन प्रेम जीत रोकपा की प्रतिमा के अनावरण का था। इस कार्यक्रम के तीन मुख्य पात्र थे, एक शहीद शौर्य चक्र विजेता प्रेम जीत रोकपा, दूसरी उसकी छोटी बहन सुश्री फुंग्चोग डोलमा और तीसरा जिन्होंने इस प्रतिमा का अनावरण किया यानि कार्यक्रम के मुख्य अतिथि ब्रिगेडियर बी.एस. सम्बयाल, जो जम्मू से यहां पधारे थे।

शहीद प्रेमजीत का जन्म 18 अप्रैल 1951 के दिन स्वर्गीय श्री छेरिङ तन्डुब व स्वर्गीय श्रीमती गुरु दासी के घर गांव गुशाल में हुआ था। कैप्टन प्रेम जीत रोकपा की पांच बहनें और एक बड़ा भाई है तथा वे तीसरे नंबर के थे। वह सबके चहेते थे तथा स्वभाव से हंसमुख थे। अपने मामा एवं चाचा, जो दोनों सेना में कार्यरत थे, उन से प्रेमजीत अत्यधिक प्रभावित एवं प्रेरित थे परन्तु प्रेमजीत की मां अपने भाई के युद्ध में शहीद होने के बाद अपने बेटे को सेना में जाने की इच्छा से सहमत नहीं थी। अपने पैत्रिक गांव के विद्यालय से प्रारम्भिक शिक्षा उतीर्ण कर आगे की पढ़ाई के लिए उन्होंने सैकेण्डरी विद्यालय केलंग में प्रवेश लिया। घर से दूर माता-पिता का नियंत्रण कम होने पर मौका पाते ही प्रेमजीत अपनी सेना में जाने के लक्ष्य को पाने के लिए 1969 में 11वीं कक्षा में पढ़ते हुए अपने माता-पिता को बिना बताए भारतीय सेना में भर्ती हो गए।

प्रेमजीत ने सेना की सख्त ट्रेनिंग के साथ-साथ अपनी पढ़ाई सुचारू रखी और सभी शारीरिक एवं शैक्षणिक मापदण्डों में आर्मी कैडेट कॉलेज के लिए योग्य बने। 5 अक्तूबर, 1972 के दिन वे एस.एस.बी. की परीक्षा के लिए इलाहबाद पहुंचे और 16 नवम्बर, 1972 को उन्होंने सेना में अधिकारी पद के प्रशिक्षण की सभी परीक्षाएं उत्तीर्ण कर ली। सख्त ट्रेनिंग के दौरान भी 1975 में जे.एन.यू. से सनात्तक की डिग्री प्रथम श्रेणी में उतीर्ण की। 5 सितम्बर 1976 को उन्होंने भारतीय सेना में अधिकारी पद 2nd लेफ्टिनेंट के के रूप पर नियुक्ति प्राप्त कर अपने जीवन का सपना साकार किया।

अकादमी में प्रशिक्षण के समय से ही वे एक कुशल बॉक्सर एवं एथलीट थे और इस प्रकार के सभी शारीरिक एवं मानसिक बल के कौशल के कारण उन्हें भारतीय सेना की उत्कृष्ट टुकड़ी कही जाने वाली 9 पैरा स्पेशल फोर्स के लिए चुन लिया गया। सेना की इस वर्ग के सभी किस्से सामने नहीं आते हैं। 1981 के नन्दा देवी अभियान के दौरान 4 अक्तूबर को कैप्टन प्रेमजीत एवं उनके साथी फुर्बा दोरजे को अन्तिम बार शिखर की ओर बढ़ते हुए देखा गया, जिसके तुरन्त बाद सम्पूर्ण आकाश बादलों से घिर गया। दुर्गम क्षेत्र होने के कारण उनका पार्थिव अंश प्राप्त नहीं हुआ। कैप्टन प्रेमजीत रोकपा की छवि सेना के साथियों में एवं अपने मित्रों तथा परिजनों में एक प्रगतिशील एवं जोशीले व्यक्तित्व की थी। जिस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में हमेशा शिखर की ओर अपना रुख रखा उसी प्रवाह में अपनी शाहदत भी शिखर की ओर अग्रसर राह पर चुनी। पहाड़ों में जन्मे, पहाड़ों पर पले-बसे, पहाड़ों के शिखरों पर अपनी सेवाएं दी और हमेशा के लिए पहाड़ों में समा गए। 26 जनवरी 1983 के दिन कैप्टन प्रेमजीत रोकपा को मरणोपरांत भारत के राष्ट्रपति द्वारा विशिष्ट साहस एवं उच्चतम क्रम के नेतृत्व के लिए शौर्य चक्र से सम्मानित किया गया। उनकी शाहदत एवं शौर्य की व्याख्या समाज तक नहीं पहुंच पाई क्योंकि उस समय न मीडिया इतना सक्रिय था न सोशल मीडिया उपलब्ध था। ऐसे व्यक्तिव आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा योग्य है, जिहोंने उस समय में एक दुर्गम क्षेत्र से निकल कर अपने कार्यक्षेत्र में शौर्य प्राप्त किया और अपना सर्वोच्च बलिदान देकर भारतीय सेना के इतिहास में हमेशा के लिए अमर हो गए।

इसी प्रेरणा जागरूकता के उद्देश्य

से उनकी छोटी बहन सुश्री फुन्छ़ोग डोलमा ने कैप्टन प्रेमजीत रोकपा के नाम से 'कैप्टन प्रेमजीत रोकपा मेमोरियल चेरिटेबल ट्रस्ट' की स्थापना की। सुश्री फुन्छ़ोग डोलमा सात भाई बहनों में छठवीं थीं। राजकीय सनात्तकोतर महाविद्यालय कुल्लू में ये इतिहास की ऐसोसिएट प्रोफेसर के पद पर कार्यरत थीं, जहां से वे 31 मई 2017 के दिन सेवानिवृत्त हुईं। स्वभाव से परोपकारी और जरूरतमन्दों की सहायता करने का मौका खोजती रहती। 1991 से वे दान कार्य कर रहीं थी और अपने शहीद भाई कैप्टन प्रेमजीत के नाम पर एक संस्था स्थापित करना चाहती थी, जिनके माध्यम से वे अपने परोपकार के कार्यों को कर सकती थी। चाहकर भी वह शुरुआत में धन के अभाव में कुछ कर पाने में असमर्थ थी परन्तु अपने कार्यपद से सेवानिवृत होने के बाद उन्होंने अपने सभी भतीजों और भान्जों के सहयोग से कैप्टन प्रेमजीत रोकपा मेमोरियल चेरिटेबल ट्रस्ट की स्थापना की। 18 अप्रैल, 2024 का दिन सुश्री फुन्छ़ोग डोलमा के जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दिन था। यह दिन शहीद कैप्टन प्रेमजीत रोकपा का जन्मदिन होने के साथ-साथ वह दिन था जब वे अपने जीवन का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने जा रही थीं। अपने नवर्निमित घर कटराई समीप छन्नी गांव में वे अपने शहीद भाई कैप्टन प्रेमजीत रोकपा की प्रतिमा एवं कैप्टन प्रेमजीत रोकपा मेमोरियल चौरिटेबल ट्रस्ट का अनावरण करवाने वाली थीं।

इस कार्यक्रम के मुख्य-अतिथि थे- 9 पैरा स्पेशल फोर्स से सेवानिवृत्त एवं कैप्टन प्रेमजीत के सहकर्मी व मित्र ब्रिगेडियर बलबीर सिंह सम्बयाल सेना मैडल जो अपने घर सांभा जम्मू से विशेष इसी कार्यक्रम के लिए पधारे थे। इन के साथ थे कर्नल हेमन्त सरोच एवं उनकी पत्नी श्रीमती अन्जना सरोच भूतपूर्व सैनिक लीग कुल्लू एवं लाहुल-स्पीति के अध्यक्ष ब्रिगेडियर टेक सिंह ठाकुर, कर्नल सोनम बौध एवं भूतपूर्व सैनिक लीग कुल्लू एवं लाहुल-स्पीति के सभी सदस्य एन.सी. सी. वायु विंग कुल्लू के कैडेट एवं उनके अफसर सार्जेन्ट ऋषि, राजस्व विभाग से आयुश, सुश्री फुन्छ़ोग डोलमा की सहकर्मी और अन्य प्राध्यापकगण, फुन्छ़ोग डोलमा के परिवार के सभी सदस्य उपस्थित थे।

ब्रिगेडियर बलवीर सिंह सम्बयाल सेना मैडल ने अपने वक्तव्य में कैप्टन प्रेमजीत रोकपा, 9 पैरा स्पेशल फोर्स शौर्य चक्र मर्णोपरांत के जीवन काल के ऐसे अचंभित करने वाले पहलुओं पर प्रकाश डाला, जो उनके परिवार के सदस्यों को भी पता नहीं था। उनकी भारतीय सेना के सेवाकाल की बुद्धिमत्ता एवं बहादुरी के किस्से सुनाते हुए एक पराक्रमी योद्धा भी भावुक हो उठे और सभी श्रोताओं को भी भावुक कर बैठे। इसी भावुकता के मौन को एनसीसी के नव युवक-युवतियों ने भारत माता जी जय के नारों द्वारा जोश से भर दिया और कैप्टन प्रेमजीत के साहस उत्साह एवं शौर्य को जैसे अमर कर दिया। मुझे पूरा विश्वास है कि एनसीसी के नव युवक-युवतियों ने इन सैनिकों के माध्यम से भरपूर प्रेरणा ली होगी और आगे चल कर अपने जीवन में इन गुणों को आत्मसात करेंगे।

उस शाम जब सुश्री फुन्छ़ोग डोलमा से मेरी बात हुई तो वह बहुत संतुष्ट थी। जैसे उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य उन्हें प्राप्त हो गया हो। उन्होंने मुझ से कहा के मेरे शहीद भाई से यदि आज के समाज के कुछ युवक-युवतियां भी प्रेरणा ले कर जीवन जीना सीख सकें एवं साहस के साथ अपने-अपने कार्य क्षेत्र के शिखर तक पहुंचने की चाह रखें तो मेरे भाई और उनके नाम पर स्थापित कैप्टन प्रेमजीत रोकपा मेमोरियल चेरिटेबल ट्रस्ट का लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा। उस दिन के बाद वह इतनी प्रसन्न एवं संतुष्ट थी कि उनमें एक नया जोश दिखता था। सभी से कहती-फिरती थी कि ''मैंने अपने जीवन की एकमात्र इच्छा एवं लक्ष्य प्राप्त कर लिया है।'' उस दिन के केवल 40 दिन बाद 28 मई 2024 के दिन दोपहर लगभग 12:30 अपराह्न सुश्री फुन्छ़ोग डोलमा अपने कटराईं समीप गांव छन्नी निवास से पैदल भ्रमण करती निकली और विश्राम करने रुकी। अपने जीवन का अन्तिम एवं सर्वश्रेष्ठ महत्त्वपूर्ण कार्य कर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर इसी विश्राम के साथ इस विश्व से भी अपना अन्तिम विश्राम कर गई।

मैं सुश्री फुन्छ़ोग डोलमा के सभी हितैषियों की ओर से आशा एवं कामना करती हूं कि उन के द्वारा स्थापित कैप्टन प्रेमजीत रोकपा मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट एवं ट्रस्ट के लक्ष्य ज़िंदा रहें और उनकी इच्छाओं का आदर बना रहे।

इस लेख के लेखन में शहीद प्रेमजीत रोकपा के जीवन से संबंधित जानकारी साझा करने के लिए प्रेमजीत के भानजे डॉ. दिनेश क्रोफा का विशेष धन्यवाद।

दिवंगत आत्माओं को भावभीनी श्रद्धांजलि!!

संपर्क :
मो. 9418015777s

शशुर गोनपा में होने वाला छम नृत्य

✍ नवङ नोर्बु कुकुजि

ज़ोर छम का दृश्य

शशुर गोनपा में प्रतिवर्ष भोट पंचांग अनुसार पांचवें महीने की दसवीं तिथि के दिन छम नृत्य का आयोजन किया जाता है, जिसे जन-सामान्य शशुर छेशु के नाम से जानते हैं। सर्वप्रथम यह धार्मिक नृत्य (छम) महासिद्ध डुबछेन देवा ग्यछो ने शशुर में शुरू किया था। देवा ग्यछो मूलतः ज़ंस्कर के थे लेकिन बाद में वे शशुर में आकर बस गए थे। वे एक बहुत बड़े सिद्ध पुरुष थे। यहां पर उनके बहुत सारे शिष्य बने। शशुर में डुगपा निकाय की परम्परा उन्होंने ही चलायी है। गोनपा का विस्तार व पूजा-पाठ और कई नियम उन्होंने बनवाए। महाकाल के अनुष्ठान में देव-नृत्य (छम) का भी समावेश उन्होंने किया। यह छम उन्होंने ज़ंस्कर के प्रसिद्ध बरदन गोनपा के नियम अनुसार स्थापित किया था।

देव नृत्य (छम) महाकाल नामक धर्मपाल देवता मण्डल की पूजा होती है। यह पूजा पूर्ण रूप से तांत्रिक पूजा होती है। पूजा विस्तृत व पाठ लम्बा होता है। महाकाल मण्डल में काय, वाक्, चित्त तीनों का एक साथ पाठ होता है। सम्पूर्ण अनुष्ठान करने पर ''पलदन येशे गोनपोई छोगः'' पूजा सम्पन्न होती है। इस छोगः पूजा में छम को करना वैसे अनिवार्य नहीं है। छम विशेष तौर पर छेशु के दौरान किया जाता है। उस समय काय, वाक्, चित्त मण्डल में काय मण्डल द्वारा चित्त मण्डल के मुख्य महाकाल व वाक् मण्डल के देवताओं की पूजा एवं मनोरंजन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रक्रिया को गरछम कहते हैं। गर हाथ की मुद्राओं को और छम पांव के ताल को कहते हैं।

छम से संबंधित प्रक्रियाएं एवं अनुष्ठान तांत्रिक होने के कारण बहुत ही गुह्य (गुसङ-व) होते हैं। यह प्रक्रिया पहले केवल गोन्पाओं के अंदर ही की जाती थी। बाद में धीरे-धीरे बाहर भी दिखाया जाने लगा। अभी भी कई

गोनपाओं के अंदर छम करने का नियम है। इस दृष्टि से छम में दर्शकों को कुछ विशेष दिखाने का कोई ध्यान नहीं रखा गया है।

छेशु के दौरान गाहर क्षेत्र के समस्त लामाओं को शशुर आना पड़ता है। वे चार दिन तक गोनपा में ही रहेंगे। इस दौरान वे दो दिन छम का प्रशिक्षण अथवा पूर्वाभ्यास करेंगे। तीसरे दिन महाकाल की सम्पूर्ण पूजा-पाठ करेंगे। यह पाठ एवं छेशु के दिन होने वाले छम को सम्पूर्ण अभिनीत करना होता है परन्तु इस दिन सादा लिवास में ही छम करते हैं। इसे 'डिग्स' कहते हैं। छम के साथ पाठ इत्यादि छेशु जैसा ही होता है। चौथे दिन यानि छेशु वाले दिन लामा सुबह जल्दी उठ कर पाठ पूरा करके छम की तैयारी करते हैं। सर्वप्रथम वर्ष में एक बार निकाले जाने वाले पद्मसंभव के दो मंज़िला थंका चित्र को प्रदर्शित करते हैं। इस के बाद लामागण अंदर जाकर अपने-अपने मुखौटे व वस्त्र इत्यादि पहनते हैं।

छम में सर्वप्रथम दो मुखौटा वाले निकलते हैं, जिन्हें हटुग कहते हैं। ये दो-तीन मिनट का छम करके निकल जाते हैं। ये दो अन्दर न जाकर दर्शकों के बीच जाकर मनोरंजन करते हैं। यह छम के साथ सम्बद्ध नहीं हैं। हटुग शशुर में मात्र छोटा-सा छम कर के चले जाते हैं। वैसे अन्यत्र गोनपाओं में इसका विस्तृत रूप भी पाया जाता है, जिसमें ग्यपो हशङ एक मुख्य या प्रधान होता है, उसके साथ पांच-छह छोटे-छोटे बच्चे होते हैं, जो अपने मुखिया के साथ शरारतें करते हैं। ग्रंथों में ऐसे विवरण मिलते हैं।

इस के बाद अब मुख्य छम शुरू होता है। सर्वप्रथम शिनजे यानि यम नर-नारी निकलते हैं। वाद्य यंत्र बजाने वाले बजाना शुरू करेंगे तो दोनों मुखौटाधारी धीरे-धीरे मैदान में पहुंच जाते हैं और नृत्य करना शुरू कर देते हैं। नृत्य काफी रोचक होता है। यह नृत्य दस मिनट तक चलता है और फिर वे धीरे-धीरे वापिस चले जाते हैं।

2. दूसरा दुरदग यानि कंकाल नृत्य। दुरदग का अर्थ है शमशान का मालिक। दुरठोद् मतलब शमशान अैर दग् का मतलब मालिक। इस छम में दो जोड़ियों में शम्शनिक और शम्शनिका एक साथ निकलते हैं। धीरे-धीरे मैदान में पहुंचते हैं और नृत्य करना शुरू कर देते हैं। यह नृत्य भी काफी रोचक होता है। यह नृत्य भी दस-पंद्रह मिनट का होता है। इस छम में वे शत्रु स्वरूप बनाए गए मानवाकृति के लिए स्थान चयनित करते हैं। फिर वे वापिस चले जाते हैं। इस तरह वापिस जाने के बाद ये कंकाल जोड़ी पुनः दूसरी बार निकलते हैं। इस बार वे काले चौरस कपड़े में लिंग (लिङ-ख) जो एक मानव आकृति बनाई हुई होती है, उसको एक त्रिकोण डब्बे में डाल कर चारों कोनों को एक-एक ने पकड़ मैदान में पहुंचते हैं। वहां पर कुछ नृत्य करके उस मानवाकृति को वहीं चयनित स्थान पर छोड़ कर वापिस चले जाते हैं।

3. तीसरे छम में समस्त मुखौटा वाले एक-एक कर के निकलते हैं। वे निम्न क्रम में आते हैं।

1. सबसे पहले गुलङ यानि महादेव (वङ्छुग-छेनपो)
2. उमा (उमा ल्हमो)
3. सिंह मुख (सेङ् दोङ्मा)
4. बन्दर नर-नारी (टेऊ फोमो)
5. यम नर-नारी (शिनजे फोमो)
6. चार द्वार पाल (गोमा जि)
7. बेगचे़ (बेगचे़)
8. राहू (ज़)
9. राजा (ग्यल पो)
10. वज्रसाधु (दोरलग)
11. कर्म महाकाल (लईगोन) (लस-मृगोन)

ये कुल सोलह मुखौटा वाले निकलते हैं। यह सामूहिक नृत्य एक घंटा चलता है। नृत्य समाप्त कर ये सब एक-एक या दो-दो करके वापिस निकल जाते हैं।

5. पांचवें नृत्य या छम में झनग यानि काली टोपी वाले निकलते हैं। यह छम नृत्य मुख्य रूप से महाकाल अनुष्ठान धर्म व धर्मावलम्बियों को विघ्न डालने वालों को नष्ट करने या बध करने की एक तांत्रिक प्रक्रिया है। इसे 'ङोनचोद डगपोई लई' कहा जाता है। इसमें शत्रु की आत्मा (विज्ञान/नमपर शेसपा) को मंत्र द्वारा बुला कर कंकालों द्वारा लाए गए उपरोक्त लिंग मानवाकृति रूप शरीर में समा देते हैं अथवा स्थापित कर देते हैं। इस बीच में दो मुखौटा धारक मैदान में पहुंच जाते हैं। ये मुखौटा धारक एक कौवे का रूप तथा दूसरा उल्लू का रूप होता है, जिन्हें खता और उगपा कहते हैं। ये दस मिनट छम करके चले जाते हैं। ये दोनों इस छम के माध्यम से शत्रु को बचाने वाले देवी-देवताओं को उससे अलग कर देते हैं।

यह झनग नृत्य (छम) पूर्ण रूप से मंत्रोच्चारण व पाठ के साथ

चलता है। अन्त में उस आकृति को ऋद्धि बल व मंत्रोच्चारण के साथ नष्ट किया जाता है। झनग का मुख्य लामा मंत्र द्वारा मानव रूपी लिंग को कील द्वारा नष्ट कर देता है और उसे मैदान के बाहर फैंक दिया जाता है। यह छम लगभग दो घण्टे तक चलता है। अंत में ये धीरे-धीरे छम करते हुए दो-दो करके निकल जाते हैं।

झनग नृत्य में शुरू से शत्रु के नमशे को दुरदग से लेकर गुलङ या महादेव तक अंकुश लगाते हैं। झनग वास्तव में उक्त प्रक्रिया का विस्तृत पाठ है। इसमें जो मानव रूप लिंग स्थापित है, उसको 'छोई की इंग' यानि धर्मधातु में विलीन कर देना होता है।

इस छठे छम को ङ-छम करते हैं। इसमें झनग टोपी वाले पुनः हाथ में ङ यानि विशेष प्रकार का ढोल लेकर आते हैं। इसमें पुनः महाकाल से अनुरोध करते हैं कि हमारे इस पाठ को क्रियान्वित किया जाए। झनग वाले मैदान में आकर करीब एक घंटा तक छम करते हैं। छम समाप्त होने पर वे मैदान में ठहर जाते हैं। तत्पश्चात् मैदान में बैठे प्रधान लामा व बजाने वाले उठ कर पंक्तियों में रोलमो, ङ, ग्यदुङ, ग्यलिङ आदि बजाते हुए कदम से कदम मिला कर अंदर चले जाते हैं। इसके बाद छम समाप्त हो जाता है। शुरू में प्रदर्शित किए गए पद्मसंभव के दो मंज़िला थंका और दूसरे डेढ़ मंज़िला थंका, दोनों को समेट कर वाद्य बजाते हुए मुख्य गोनपा में ले जाकर वहां कुछ पाठ कर के निर्धारित पूर्व स्थान पर रख दिया जाता है। इसके बाद लामागण छम से पहले के शेष पाठ को पूरा करने के लिए बैठ जाते हैं। यह अंतिम पाठ एक घंटा तक चलता है। इस पाठ के पूर्ण होने पर छेशु का कार्यक्रम सम्पन्न हो जाता है।

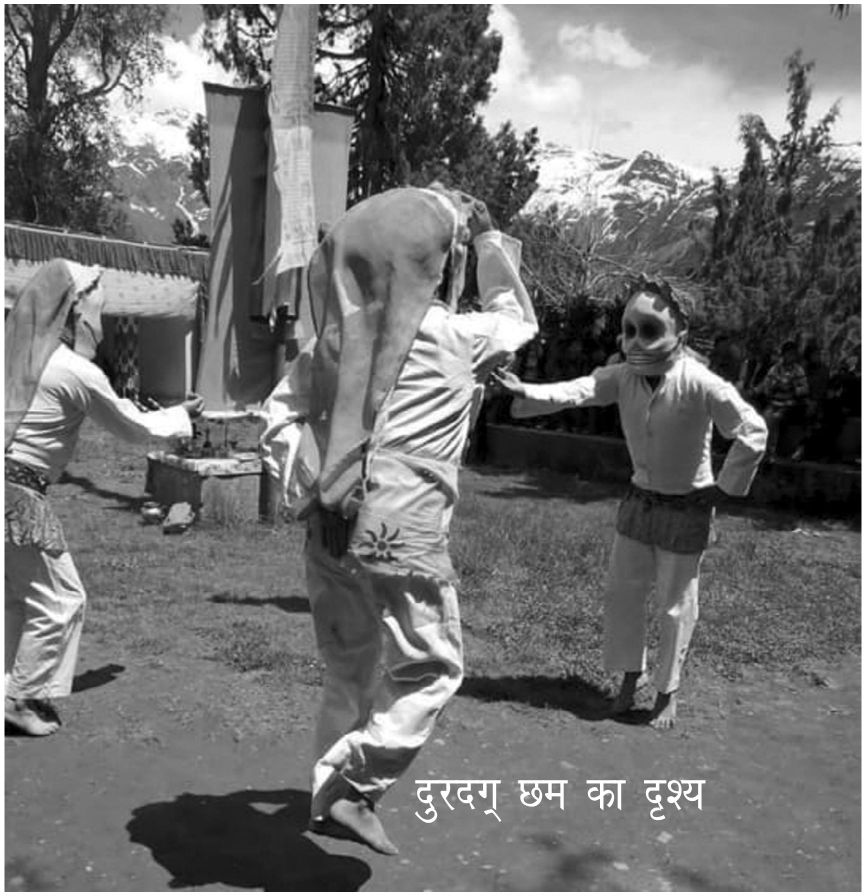
दुरदग् छम का दृश्य

छेशु के अगले दिन लोग गोनपा में एकत्र होते हैं। इसमें तीन कोठी (......) से हर गांव से छङ लाते हैं और गांव वाले आकर छङ का आनन्द लेते हैं। इस दिन लोग शृंखलाबद्ध होकर शेणि नृत्य करते हैं। परन्तु यह नृत्य पूर्णरूप से स्थानीय लोकनृत्य है, इसका पूजानुष्ठान से कोई सम्बंध नहीं है।

पुनश्च - छम के दौरान किए जाने वाले पाठ को दबलई कहते हैं या ज़ोरछम भी कहते हैं। पाठ बहुत विस्तृत है।

मुद्राएं - छम में प्रयुक्त विभिन्न मुद्राएं इस प्रकार हैं:- 1. पङलेन 2. योम 3. जिनछम 4. जिछो 5. चेसुमडो 6. लुङनग छुबमा 7. डुलनग ख्युङडो 8. लोगछम 9. ग्यबटोद इत्यादि।

विद्वान लेखक अब हमारे बीच नहीं हैं। 25 जनवरी, 2023 को किसी असाध्य रोग के कारण वे ईश्वर के श्री चरणों में स्थान प्राप्त कर गए। चंद्रताल परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि। - सम्पादक

त्रिलोकनाथ मंदिर की गाथा

✍ ई. राम नाथ साहनी

लाहुल घाटी के पश्चिमी छोर पर स्थित त्रिलोकनाथ नामक स्थान जिसे लोकल भाषा में रेबग के नाम से बुलाया जाता है वहाँ एक मंदिर है जो भारत का एक अद्भुत उदाहरण है। यह मंदिर हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मों के अनुयाइयों के आस्था का केंद्र है। वास्तव में पटन घाटी में यही सब से

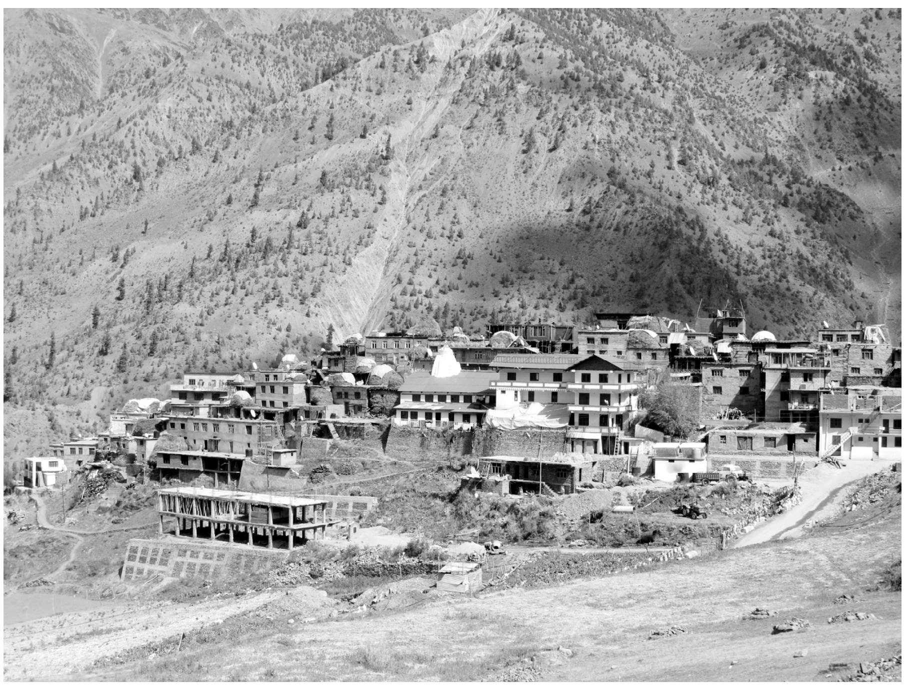

बड़ा पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है। किन्तु इस के बारे में कई गलत भ्रांतियाँ फैलाई हुई हैं। कई लेखक इस की और इस के इतिहास की वास्तविकता को जाने बिना इस पर लेख लिख रहे हैं अथवा अपने अपने विश्वास और आस्था के कारण तथ्य को तोड़ मरोड़ कर पेश कर रहे हैं।

मैं अपने आप को यह लेख लिखने पर मजबूर कर रहा हूँ ताकि जो कुछ मेरे शोध से मुझे ज्ञात हुआ उसे मैं पाठकों तक पहुंचा सकूँ। यद्यपि मैंने स्वयं तो नहीं पढ़ा परंतु मुझे बताया गया था कि कुछ लेख ऐसे आए जहां यह कहा गया कि त्रिलोकनाथ का मंदिर एक बुद्धिस्ट मंदिर अथवा गोम्पा है और यह कोई हिन्दू मंदिर नहीं है। इस के अतिरिक्त 7 फरवरी, 2020 को अमर उजाला समाचार पत्र में एक लेख आया जिस में लिखा हुआ था कि त्रिलोकनाथ मंदिर में शिव की मूर्ति के सिर पर बुद्ध बैठा हुआ है। ऐसी बातें सुन कर बड़ा बुरा और अटपटा लगता है कि लोग कैसी कैसी बातें करते हैं और अपने आप को रिसर्च स्कॉलर कहते हैं। कहाँ शिव एक अनन्त अनादि काल से अजन्मा माना जाता है। इन को किसी माँ के कोख से जन्म लिया हुआ नहीं माना जाता है। शिव स्वयंभू है। जब कि बुद्ध कोई ढाई हज़ार साल पहले एक हिन्दू राजा शुद्धोदन के घर कपिलवस्तु नामक स्थान पर पैदा हुए थे। इस प्रकार बुद्ध को शिव के सिर पर बैठाना स्वयं ही एक गलत धारणा और अनभिज्ञता को दर्शाता है। मुझे लगता है कि जो भी मूर्तिकार था या जिस ने भी इसे बनवाया था वे इतने मूर्ख तो नहीं होंगे कि शिव के सिर पर बुद्ध को बैठा दें।

लाहुल में प्राचीन इतिहास के कुछ साक्ष्य वहाँ के पुराने लोकवार्ता अथवा घुरे के रूप में संजोए हुए हैं। त्रिलोकनाथ और इस के मंदिर की गाथा भी इन्हीं गीतों में जीवित रखा गया है। इन गीतों के माध्यम से यहाँ की कहानी इस प्रकार वर्णन की जाती है। इस स्थान को तुंदे के नाम से भी बुलाया गया है। गाँव से लगभग दो एक किलोमीटर दूर ज़्रहीमुर्ति नामक

स्थान पर गाँव का एक ग्वाला गाँव की गाइयाँ चराने रोज़ जाया करता था। शब्द ज़ूहीमुर्ति का अर्थ है सात चश्मे। यहाँ सात चश्मों से पानी निकलता था। वहाँ उस ग्वाले ने एक अद्भुत दृश्य देखा। इन सात चश्मों से रोज़ सात देवियाँ निकलती थीं और दिन भर खेल कूद करती थीं और गाइयों का दूध पी जाती थीं। ग्वाला सोचता था कि शाम को घर जा कर इस दृश्य के बारे बताएगा परंतु रोज़ घर जाने पर वह भूल जाता था।

इस प्रकार काफी समय बीत गया और यह खेल चलता रहा। एक दिन ग्वाले ने सोचा कि इस घटना को याद रखने का कुछ उपाय किया जाए इस उद्देश्य से उस ने ठाकुर की चूरी (याक नसल की गाय) के सींग पर एक पत्थर बांध दिया परंतु गाँव जाते ही वह इस को भी भूल गया। शाम को जब ठकुराइन दूध दुहने गई तो अचानक वह पत्थर गिर गया और उस के संगेमरमर के वर्तन को तोड़ दिया। ठकुराइन ने बड़े गुस्से में जा कर ठाकुर से ग्वाले की इस दुस्साहस की शिकायत की। ठाकुर ने ग्वाले को बुला भेजा और आग बबूला हो कर पूछा, 'तुम्हारा यह दुस्साहास। तुम ने चूरी के सींग पर यह पत्थर क्यों बंधा था?' ग्वाले को अचानक याद आया और बड़ी नम्रता के साथ ठाकुर से क्षमा मांगते हुए सारे दृश्य को ब्यान किया। ठाकुर को कहानी पर पूरा विश्वास तो नहीं हुआ और उस ग्वाले को यह आज्ञा दी कि जब भी वे दोबारा निकलें तो उनमें से किसी एक को पकड़ कर ले आना।

दूसरे दिन जब वह ग्वाला गाइयों को ले कर बन में गया तो देखा फिर वही क्रीडा शुरू हो गई। ग्वाला अपने छुपे हुए स्थान से कूद कर सामने आ गया और झपट कर सब से छोटी देवी को पकड़ लिया और उसे पीठ पर उठा कर गाँव की ओर भागा। शेष देवियों ने उन का पीछा करना शुरू कर दिया और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे की ज़रा पीछे मुड़ कर तो देखो। इस पर पीठ पर बेठी देवी या परी ने ग्वाले को बोला कि पीछे बिल्कुल नहीं देखना। ग्वाले ने उस का कहना मानते हुए पीछे देखे बिना और ज़ोर से भागते हुए गाँव तक पहुंच गया और वहाँ पहुँच कर देखने लगा कि क्या वे देवियाँ अभी भी पीछा कर रही हैं। पीछे देखते ही वह ग्वाला और देवी दोनों शिला बन गए।

तत्पश्चात ठाकुर ने वहाँ पर एक मंदिर बनाने का संकल्प लिया और शीघ्र ही एक भव्य मंदिर बना कर देवी की मूर्ति को वहाँ स्थापित कर दिया । मंदिर को पुराने शिखर टाइप हिन्दू मंदिर का आकार दिया गया। गर्भ गृह के उत्तर की दिशा में मूर्ति को धो कर पानी की निकासी का भी प्रबंध रखा गया जैसे आम तोर पर हिन्दू मंदिरों में रखा जाता है। पश्चिम दिशा की दीवार पर बाहर से एक छोटा सा अलमारी जैसा रखा गया जहां पर एक छोटी से पत्थर कि मूर्ति रखी गई जो उस ग्वाले का शिला रूप माना जाता है जिस ने उस देवी को उठा कर लाया था। यह मूर्ति अभी भी विद्यमान है और लोग उस को कंधे पर उठा कर मंदिर की परिक्रमा करते हैं। तत्पश्चात वहाँ पर एक जातर या मेले का आयोजन किया गया। यह मेला तुंदे पोरी या रेबग पोरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ और आज तक भी मनाया जाता है। इस जातर का मुख्य आकर्षण का केंद्र ठाकुर साहिब का सज धज कर घोड़े पर स्वार हो कर लाव लश्कर के साथ उस ज़ूहीमुर्ति या सात चश्मों का दर्शन करने जाना होता है जहां से ग्वाले ने देवी को उठा कर लाया था। उस स्थान और इस मेले की परंपरा को आज भी भुलाया नहीं गया। पुराने ज़माने में ठाकुर की इस यात्रा के अतिरिक्त यह एक साधारण ग्रामीण मेला हुआ करता था जहां कुछ अस्थाई दुकानें लगती थीं। स्पीति से हेसि लोग आते थे और उन का नाच गाना होता था। लोग एक बड़ा सा वृत्त बना कर बैठते थे और हेसि लोग मध्य में बैठ कर नाच गाना करते थे और मर्द लोग उन के चारों ओर नाचते थे। दर्शक इसी का आनंद लेते थे। इस के अतिरिक्त सुना है एक बार हमारे गाँव लोट के छोकरों ने हमारे पिता जी, सोम देव जी, के नेतृत्व और निर्देशन में राजा हरिशचन्द्र का नाटक प्रस्तुत किया था। कहते हैं कि इस नाटक में राजा हरिशचन्द्र और उस की पत्नी

तारामती की दुर्दशा देख कर उन के पुत्र रोहित की मृत्यु पर शमशान का टेक्स न चुका पाने से जो हालत दिखाई थी उसे देख कर सारे दर्शक भावुक हो गए थे और नारियां तो फूट फूट कर रोई थीं ।

वर्तमान में सरकारी प्रशासन के हस्तक्षेप से मेले का आयोजन एक सरकारी उत्सव की तरह बन गया है जहां पर एक स्टेज या मंच सजा कर उस में कुछ भाषण बाज़ी होती है। कुछ बच्चों और युवकों का नाच गाना, खेल कूद प्रतियोगिता और पुरस्कार वितरण आदि का कार्यक्रम चलता है। कुछ इस कारण और कुछ केलंग में 15 अगस्त अर्थात स्वतन्त्रता दिवस बड़े ज़ोर-शोर से मनाने के कारण पोरी का महत्व बहुत कम हो गया है। दोनों उत्सव लगभग साथ-साथ ही आते हैं। इसलिए इस में लोगों की भागीदारी बहुत कम हो गई है। पुराने ज़माने में सारे लाहुल ही नहीं अपितु चंबा पांगी भरमौर और आस-पास के कई स्थानों से लोग इकट्ठे हुआ करते थे। इस लोकगीत और दंत कथा पर ध्यान से सोचा जाए तो ऐसा लगता है कि यह मंदिर दुर्गा और भगवती का मंदिर रहा होगा क्योंकि ग्वाले ने तो एक देवी को उठा कर लाया था। इसके अतिरिक्त त्रिलोकनाथ के ठाकुर और चंबा के राजाओं का माता भगवती पर बहुत आस्था थी। उन के इस आस्था की कई कथाएँ हैं जिन का वर्णन करने के लिए यहाँ स्थान नहीं है।

अब यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि क्यों और कब से यह मंदिर हिन्दू और बुद्धिस्ट दोनों के आस्था का केंद्र बन गया। बहुत सारे हिन्दू इस को शिव मंदिर समझते और मानते हैं। और इसी नाम से बहुत लोग साधु संत आदि शिव या भगवान त्रिलोकीनाथ के दर्शन के लिए आते हैं। उधर दूसरी ओर बहुत सारे बुद्ध के अनुयायी लद्दाख ज़ंसकर आदि से हर वर्ष आते हैं और वे इसे फगपा चरंज़ी अर्थात आर्य अवलोकितेश्वर मानते हैं। यह विडम्बना क्या है? इसी को स्पष्ट करने के लिए ही यह लेख लिखा जा रहा है। हिन्दुओं के आस्था का कारण तो अभी तक लिखी गई कथा हो सकती है। इस में केवल एक विडम्बना यह है कि यहाँ पर स्थापित मूर्ति को क्यों शिव कहा गया है और उस पर यह कहना कि शिव के सिर के ऊपर बुद्ध बैठा हुआ है। यह सब से बड़ा हास्यास्पद व्याख्या है। शिव तो स्वयंभू है अजन्मा है। कौन बता सकता है कि उस के माता-पिता कौन थे?

कई बार यह विचार आता है कि ऐसा कौन सा चित्रकार रहा होगा जिस ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को यह शक्लें दी हैं जिस में उन के चित्र और मूर्ति बना कर हमारे सामने पेश किया गया। यह धारणा उन को कहाँ से आया होगा क्योंकि यह तीन तो अटल सत्य के सिद्धांत को दर्शाते है जहां से मनुष्य, जीव जन्तु, पशु पक्षी, पेड़-पौधे आदि सभी को गुज़रना पड़ता है। अर्थात् इन सब का जन्म होता है, कुछ समय जीवन जीना पड़ता है और अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। हिन्दू दर्शन शास्त्रों में जन्म के अधिकारी को ब्रह्मा, विष्णु को पालनहार और शिव को मृत्यु का अधिकारी कहा गया है। यह तीन तो इस सिद्धांत के प्रतीक हैं। आम तौर पर शिव का मंदिर एक छोटा सा होता है जिस के अंदर एक शिवलिंग रखा होता है और इसे डेहरा कहते हैं। इस तरह का शिखर नुमा मंदिर साधारणतया दुर्गा या भगवती या लक्ष्मी अथवा लक्ष्मी नारायण का होता है। इस से भी संदेह पैदा होता है कि जब यह मंदिर बनाया गया था हो सकता है कि यह एक देवी का मंदिर बनाया गया हो।

अब प्रश्न यह उठता है यह कब से, कैसे और क्यों यह बुद्धिस्ट मंदिर बन गया या माना गया जहां पर हर वर्ष बहुत सारे बुद्धिस्ट लोग फगपा चरंज़ी के दर्शन के लिए आते हैं और इस का पुजारी भी एक बुद्धिस्ट लामा होता है। वर्तमान में जो मूर्ति वहाँ स्थापित है वह निस्संदेह ही आर्य अवलोकितेश्वर का है। अवलोकितेश्वर एक बोधिसत्व है जो स्वयं बुद्ध के पश्चात बुद्धत्व को प्राप्त हुआ अर्थात जन्म मरण के बंधन को तोड़ कर मोक्ष को प्राप्त किया। इन की मूर्ति हर बुद्धिस्ट गोम्पा में मिलती है यद्यपि किसी और रूप में। अब त्रिलोकनाथ की मूर्ति के सिर पर बुद्ध बैठाया हुआ है इस का अर्थ समझने के लिए

मैं महा महिम दलाई लामा के एक वक्तव्य का सहारा लेना चाहता हूँ। एक बार अमेरिका के वरमोंट शहर में हम लोगों को मेडीटेशन अथवा ध्यान कैसे करना है उस का उपदेश दे रहे थे। उन के अनुसार जब ध्यान के लिए आँख बंद कर के बैठेंगे तो कल्पना करो कि सिर के चार इंच सारे सिर दिखाये गए हैं। इस का अर्थ और उद्देश्य क्या है इस की मैं व्याख्या नहीं कर सकता।

अब कब क्यों और कैसे का उत्तर ढूंढने के लिए हमें लाहुल के इतिहास पर शोध करना पड़ेगा। अंग्रेज़ों के अधीन आने से पहले लाहुल चंबा, कुल्लू और लद्दाख के राजाओं के छोटे-छोटे राणा और ठाकुर इन राजाओं के कार्यभार को देखते थे। परंतु बीच-बीच में ऐसा भी समय आता रहा जबकि सारे इलाके में किसी एक का अधिकार रहा। इसी कड़ी में इतिहास में दो बार लद्दाख या पश्चिमी तिब्बत के जमयांग या ज्ञल्पो राजाओं ने पूरे लाहुल पर कब्ज़ा जमा लिया था।

ऊपर और चार इंच आगे एक बिन्दु पर बुद्ध की मूर्ति है और अपना ध्यान उसी पर केन्द्रित करना है। क्योंकि ध्यान या मेडिटेशन ही मुक्ति का प्रथम द्वार है। अवलोकितेश्वर भी बुद्ध का ध्यान कर के ही मोक्ष तक पहुंचे। त्रिलोकनाथ के मंदिर में जो मूर्ति है वह ध्यान मुद्रा में ही है। वैसे अवलोकितेश्वर की एक मूर्ति बदाह गोम्पा में भी लाई गया है परंतु वह खड़े अवस्था में है और उस के बहुत संघर्ष का केंद्र रहा और समय के अधिक भाग में गाहर और तोद वेली लद्दाख के अधीन, गोंधला वैली कुल्लू राजाओं के और चंबा लाहुल अर्थात थिरोट के आगे का भाग चंबा राजाओं अथवा त्रिलोकनाथ ठाकुर के अधीन रहा जबकि पटन घाटी इन तीनों के संघर्ष का केद्र रहा। कभी एक उस पर कब्ज़ा कर लेता और कभी दूसरा। इसी कारण यहाँ पर हिन्दूइज़्म और बुद्धिइज़्म दोनों का प्रभाव रहा। संवत 1080 और 1100 के मध्य लाचेन उत्पल नाम के राजा ने सारे लाहुल को त्रिलोकनाथ तक कब्ज़ा जमा लिया। यह राजा एक निमागोन नाम के राजा के स्थापित किए हुए राज्य के छोटे उतराधिकारी थे। यह बहुत शक्तिशाली बन गए थे और लाहुल के रास्ते इस ने कुल्लू पर भी आक्रमण कर कुल्लू को अपने अधीन कर लिया और कुल्लू राजा के साथ एक संधि पत्र लिखवाया जिसमें लिखा

गया कि जब तक कैलाश पर्वत का सारा बर्फ पिघल नहीं जाता और मानसरोवर झील का पानी सूख नहीं जाता तब तक कुल्लू राजा उस को कर देता रहेगा। उन दिनों कुल्लू की राजधानी जगतसुख में थी और कुल्लू राज्य ऊझी घाटी तक ही सीमित था। उस के अतिरिक्त सुकेत के राजा विक्रम सेन के आक्रमण के कारण कुल्लू बहुत कमज़ोर हो चुका था। कुल्लू का इतिहास इस घटना को संवत 1125 और 1150 के मध्य लिखते हैं। इस के साथ यह भी लिखा है कि बाहरवीं शताब्दी के अंत में कुल्लू के राजा सिकंदर पाल ने दिल्ली जा कर वहाँ के राजा से सहायता मांगी कि तिब्बतियों ने कुल्लू पर कब्ज़ा कर रखा है। तब दिल्ली का राजा स्वयं बड़ी फौज ले कर आए और तिब्बतियों को मानसरोवर के पार भगा दिया। तब जा कर कुल्लू ने राहत की सांस ली। इस प्रकार लाहुल ने भी उन के चंगुल से छुटकारा पाया होगा।

उधर दूसरी घटना में 17वीं शताब्दी के लगभग 1635 ई० में एक बुद्धिस्ट ग्यलपो सिंगे नमग्यल ने लाहुल पर फिर कब्ज़ा जमाया। उस के बारे में यह लिखा है कि वह बुद्धिज़्म का पक्का अनुयायी था और बुद्धिज़्म को फैलाने के लिए बहुत काम किया और लाहुल और स्पीति में कई गोम्पे बनवाए। परंतु उधर हरकूट लिखते हैं कि सिंगे ने पूरे लाहुल पर कब्ज़ा नहीं किया। इस से शक पड़ता है कि सिंगे नमग्यल त्रिलोकनाथ तक शायद पहुंचे नहीं होंगे।

अब यह तो सर्वविदित है कि जब भी किसी और धर्म के लोगों ने दूसरे देश पर कब्ज़ा किया तो आम तौर पर वहाँ अपने धर्म और उस के पूजा का स्थान जैसे चर्च, गुरुद्वारा, मंदिर और मस्जिद आदि स्थापित किया। इस प्रकार यहाँ यह कह सकते हैं कि ऊपर लिखे दो ग्यलपों में से किसी एक ने त्रिलोकनाथ मंदिर में वहाँ की प्राचीन मूर्ति को हटा कर अवलोकितेश्वर की मूर्ति स्थापित कर दी और पूजा-अर्चना के लिए एक लामा को बैठा दिया। अब इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन हो रहा है कि इन में से किस ने यह कारनामा किया होगा क्योंकि एक ओर ल्हचेन उत्पल के बारे लिखा है कि उसने निश्चित ही त्रिलोकनाथ तक कब्ज़ा किया परंतु उन के बारे कहीं गोम्पा आदि स्थापित करने का ज़िकर नहीं आता। उधर सिंगे के बारे लिखा है कि उसने कई गोम्पे बनवाए परंतु हरकूट के हिसाब से उस ने पूरे लाहुल पर कब्ज़ा नहीं किया इसलिए लगता है की शायद त्रिलोकनाथ तक पहुंचा ही नहीं तो यह काम कैसे कर सकता है। इस पर कोई संदेह नहीं कि इन्हीं में से एक के समय से ही त्रिलोकनाथ बुद्धिस्ट आस्था का केद्र बना होगा।

बाद में जब इन लोगों को लाहुल से भगा दिया गया और त्रिलोकनाथ पर फिर ठाकुर का अधिकार रहा तो मंदिर में पहले की तरह हिंदुओं की पूजा-अर्चना भी जारी रही। शायद उस समय तक त्रिलोकनाथ के तथा चंबा राजाओं के कई उतराधिकारी बदल चुके होंगे। इसी लिए इस मूर्ति और परम्परा को बदलने में असमर्थ रहे। इस तरह हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि निस्संदेह यह एक प्राचीन हिन्दू मंदिर है और उसी पर अवलोकितेश्वर की मूर्ति स्थापित की गई है। वैसे लगता है कि यह काम सिंगे नमग्यल ने ही किया होगा क्योंकि ल्हाचेन उत्पल के बाद चंबा अथवा त्रिलोकनाथ ठाकुर बहुत मजबूत हो गए थे। परंतु 17वीं शताब्दी तक वे कुल्लू के और उस के पश्चात अंग्रेज़ों के अधीन आने से कमज़ोर हो गए थे।

उपसंहार : आज जहां बुद्धिस्ट लोग फगपा चरंज़ी अर्थात् अवलोकितेश्वर कह कर इस मंदिर के दर्शन के लिए आते है, वहाँ हिन्दू साधु संत और दूसरे दर्शक शिव शंकर के नाम से इस की पूजा करते हैं। मैंने देखा कि गर्भ गृह के द्वार पर खड़े एक हिन्दू ॐ नमो शिवाय बोल रहा था, वहीं एक बुद्धिस्ट ॐ मने पद्मे बोल रहा था। यह देख कर एक तरफ खुशी भी होती है कि दोनों अपनी-अपनी आस्था के अनुसार साथ-साथ खड़े हो कर जाप कर रहे हैं। सारे भारत में यदि इसी प्रकार साथ-साथ चलते तो कितनी खुशी होती।

सम्पर्क :
मो. : 9418164434

गांव केलंग का गोचि़ महोत्सव

✍ नवङ छेरिङ उपासक

यूं तो लाहुल में कई पर्व व त्योहार मनाए जाते हैं। इन में गांव केलंग का गोचि़ महोत्सव काफी मशहूर है। गोचि़ उत्सव उस घर में मनाया जाता है, जिस घर में पुत्र का जन्म हुआ हो। यह उत्सव हर वर्ष हल्डः (नया साल) के बाद, फाल्गुन माह/फरवरी-मार्च (पुनस ला) में एक निश्चित तिथि को मनाया जाता है। पुनस लई सुम (पुनस महीने की तीन तारीख) को पुननपा समुदाय अपना नया साल भी मनाता है। उसके बाद गोचि़ का आगाज़ हो जाता है।

गोचि़ के दौरान दो दिनों तक देव-स्तुति की जाती है। प्रथम दिन को थार्स करते हैं। इस दिन सुबह सभी गांव वाले अपने-अपने घरों से एक-एक थाली में सत्तू व घी ले जाकर गांव के देवता (युल-ल्ह) के सामने थमस नामक घर की छत में इकट्ठा होते हैं। सत्तू का एक ब्रङ्ज्ञेस (पिण्ड) व घी के दो बकरे बनाकर एक ब्रङ्ज्ञेस के ऊपर लगाते हैं तथा दूसरा अलग से रखकर युल-ल्ह व तङजर देवता को चढ़ाते हैं। गांव के दो युवा, जिनके मां-बाप जीवित (फा-मा-छ्ईं) हो, चङ्मा (बेली के पेड़) की शाख से टोपीनुमा रिंग (चङ्मई किर-किर) बना कर व हाथ-मुंह धो कर सङशु (धूप) से आग जलाकर उस पिण्ड व घी से बने बकरे को कोर-सोङ-सोङ कर (उन के ऊपर घुमा कर) शुद्धि करते हैं। तब छो-चुम राग बजा कर घी वाला बकरा देवता तङजर व सत्तू का पिण्ड (ब्रङ्ज्ञेस) युल-ल्ह (ग्रामदेव) को चढ़ाते हैं। इस दौरान सभी लोग गांव की खुशहाली, समृद्धि व कुशलता हेतु वरदान मांगते हैं।

तीर मारते हुए लब्दगपा - लो. केलंग

शाम के समय गांव के सभी पुरुष जिस घर में गोचि़ हो, उस घर में जाते हैं। उस दौरान देवालय (ल्हखाङ) ल्हबदग-पा व ल्हऊपा भी सज-धज कर वाद्ययंत्र (अम-रग) के साथ पहुंचते हैं। सभी लोगों के पहुंचने पर शागुन (करछोल) करने से पूर्व सभी गांव वासियों को जलपान (चाय-छङ-अरग्) भरा जाता है। तत्पश्चात् कर-छोलपा द्वारा (पल-छङ) (छङ या अरग) को शागुङ (छोद्चिस) किया जाता है।

उसके बाद देव-स्तुति का क्रम शुरू हो जाता है, जिसमें ल्ह-ग्रेग्स, दङ्पो, ल्हग्रेग्स ञिसपा व ल्हग्रेग्स सुमपा क्रमानुसार गाया जाता है। बाद में मेन-तोग ग्रेग्स गाने के दौरान सभी उपस्थित लोगों को कर-छोलपा द्वारा पुष्प भेंट किया जाता है। तत्पश्चात् यदि गांव में दो या तीन घरों में गोचि़ हो तो क्रमबार उन घरों में जाकर यही परम्परा निभाई जाती है। इस बीच ल्हबदग व ल्हऊपा दोनों रात को दस-साढ़े दस बजे देवालय यानि थास के घर जाकर वहां से देव स्तुति की सामग्री को लेकर अप्पर केलंग जाकर

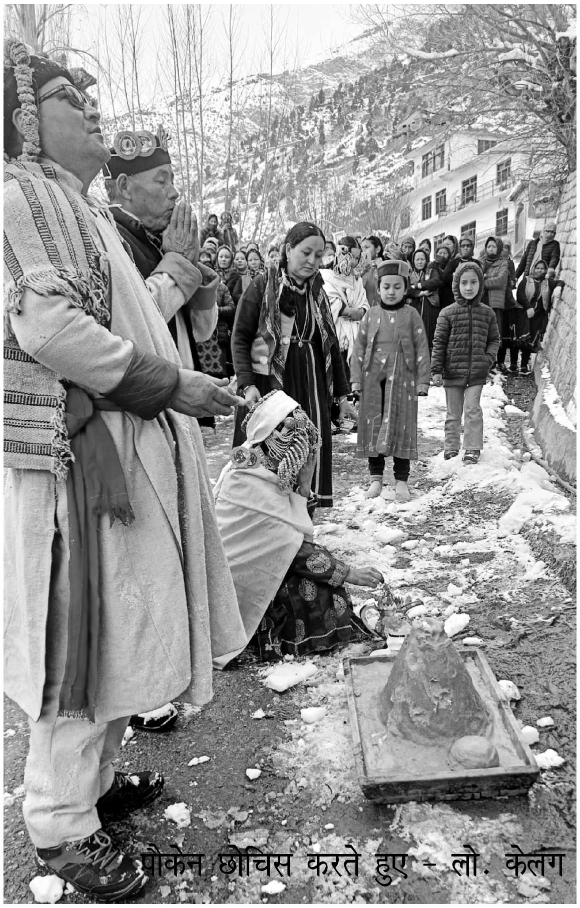

पौकेन छोचिस करते हुए - लो. केलंग

हैं। जब पौकेन (पिण्ड) तैयार हो जाता है तो उसे एक लिंगाकार आकृति बनाया जाता है व उसमें नौ छेद भी बनाए जाते हैं, जो कि बाद में (गु-फवस्) नौ अलग-अलग व्यंजनों के साथ पूजा विधि से बंद किया जाता है। इन नौ व्यंजनों में 1. डो छग, 2. बगशचि़, 3. मरज्वग्, 4. फोकेन, 5. छ़ः शः, 6. ड्रु मा, 7. युशिः, **8.** छा, 9. मर आदि होते हैं। इसके अतिरिक्त सत्तू व मरज्वग से इनकी पुनः पूर्ति होती है। पौकेन को

वहां भी देवता केलंग बजीर की स्तुति कर आशीर्वाद लेते हैं।

गोचि़ के दिन सुबह गांव के सभी पुरुषों को जिस घर में गोचि़ हो, वहां बुलाया जाता है। सभी गांव वाले इकट्‌ठा होने पर उस घर में एक कमरे में बैठकर पौकेन बनाने की रस्म शुरू करते हैं। पौकेन (सत्तू का पिण्ड) बनाने के लिए भी सत्तू (9 ब्रे) होता है। भट्‌ठी या गैस में एक बर्तन रखकर उसे उबाला जाता है। तब जो व्यक्ति गोचि़ के दौरान घर से देवस्थल तक सज- धज कर हल्डः ले जाता है, उनके द्वारा पौकेन बनाना शुरू हो जाता है। उस दौरान सभी गांव वाले भी जिन्हें कड़ीपा कहते हैं, चोलू-टोपी पहनकर (देवस्तुति) ल्हग्रेग्स को गाते

इष्ट देवता को समर्पित करते वक्त हल्ड़ः-पा व कलछोरपा दोनों पारम्परिक वेशभूषा में होते हैं। जो कि नौ बार पूजा करके उन नौ छेदों को बंद करते हैं। इस दौरान बार-बार शुर की आग से पौकेन की शुद्धि की जाती है।

तत्पश्चात् मण्डली में विराजमान कड़ीपा द्वारा थोद् ग्रेग्स (पगड़ी रस्म) गाया जाता है, जिसके साथ खुलचि़पा को पगड़ी पहनाई जाती है। इसके बाद कलछोरपा द्वारा सभी कड़ीपा, हल्डः-पा व खुलचि़ पा को पुष्प अर्पित किए जाते हैं। उसके बाद सभी कलछोरपा, हल्डः-पा खुलचि़पा, कड़ीपा व बच्चे की मां भी घर से बाहर निकलकर देव-स्थल पर जाते हैं। इस दौरान कड़ी पा लोग 'हई श्वरा के' करके बार-बार उद्घोष करते हुए चलते हैं।

देव-स्थल पर पहुंचकर यहां ल्हबदगपा व ल्हऊपा द्वारा पूजा विधि के साथ पौकेन व कलछोरपा द्वारा कलछोर का शागुन कर ग्राम देवता को अर्पित किया जाता है। कलछोरपा द्वारा जन-समूह को कलछोर के छङ को देवता के प्रसाद स्वरूप सभी को पिलाया जाता है। पौकेन का ल्हऊपा द्वारा सभी ग्रामवासियों को अपने घर के जितने सदस्य हैं, उनकी गणना के हिसाब से हिस्सा दिया जाता है। उसके बाद तीरंदाज़ी की रस्म शुरू होती है। ल्हबदगपा द्वारा खुलचि़ (मेमना की खाल में भूसा भरा हुआ) पर तीर मारा जाता है। परम्परा रही है कि जितनी बार खुलचि़ को तीर लगे, आने वाले साल में गांव में उतनी ही बार पुत्र उत्पति होगी।

आखिर में सभी कडीपा-हल्डः-पा व खुलचि़पा ल्हऊपा के नेतृत्व में एक श्रेणी नृत्य करते हैं, जिसमें तोङ्रा गीत गाया जाता है। इस तरह यह गोचि़ का रस्मो-रिवाज़ यहीं पर खत्म हो जाता है। और अब घर की तरफ पुनः प्रस्थान करते हैं व घर में खाना-पीना व नाच-गान चलता रहता है।

संपर्क :
मो. : 9459304327, 9418102627

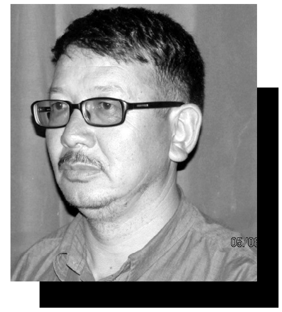

छ़ेशु दह़्-छङ/दरचे़स-मुस्कुन-लेचो़ग कुंस, तीरन्दाज़ी

✍ ठिनले नमज्ञल शास्त्री

पश्चिमोत्तर हिमालय में अनेक भागों में प्राचीनकाल से तीर खेलने की परम्परा प्रचलित है। चारों तरफ हिमाच्छादित लम्बी हेमन्त ऋतु के दौरान लाहुल में बाहरी लोगों का आवागमन पूरी तरह से ठप्प हो जाता था। लोग अपनी-अपनी उपत्पकाओं तथा गांवों तक सिमट जाते थे। संचार माध्यम न के बराबर थे। ऐसे में प्राचीन काल में लोगों ने अपसी मेलजोल एचं मनोरंजन बढ़ाने के लिए अनेकानेक त्योहारों एवं पर्वों का आयोजन करना शुरू किया। कालान्तर में क्रमशः ये उत्सव सांस्कृतिक धरोहर बनते गये। पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों ने इन सांस्कृतिक परम्पराओं को विरासती धरोहर के रूप में संजोए रख। परन्तु समय के साथ कुछ परम्पराएं टूट गईं और कुछ समृद्धता को प्राप्त कर आज भी अक्षुण्ण रूप से आयोजित की जाती रही हैं।

चूंकि बौद्ध बहुल क्षेत्र होने के कारण भोट पंचांग प्रथम मास को अत्यंत पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण मास माना जाता है। लोग इस माह पुण्य संचय एवं पाप शोधन हेतु उपवास, व्रत, धार्मिक पूजा-पाठ, तीर्थाटन आदि का आचरण करते हैं। परन्तु लाहुल जैसी उपत्यकाओं में प्राचीन काल से इस माह में आसुरी शक्तियों द्वारा लोगों को कष्ट पहुंचाने की दास्तानें भी सुनी जाती रही हैं। इन विघ्नकारी आसुरी शक्तियों से निजात पाने के लिए अनेक प्राकार के धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न करवाए जाते हैं। लोसर पर्व के पश्चात भोट पंचांग प्रथम मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को विशेषतः गुरु पद्मसंभव के जन्म दिवस पर तोद घाटी के सभी गांवों में बौद्ध परम्परानुसार पूजा-पाठ का आयोजन होता है। व्रत-उपवास के साथ-साथ मणि जाप तथा गुरु पद्मसंभव के धारणी मंत्रों का जाप भी किया जाता है। इस माह के शुक्ल पक्ष की अष्टमी जिस्पा और तिनों गांव में ''छेरज्ञद रिमडो'' (अष्टमी अनुष्ठान) और पूर्णिमा के दिन तीनो गांव में ''चोङ्ग रिमडो'' (पूर्णिमा अनुष्ठान) का आयोजन होता है, जिसमें प्रातः ग्राम देवता को भोग चढ़ाया जाता है। बौद्ध लामाओं के द्वारा सूत्रों का पाठ भी करवाया जाता है। पूर्णिमा के दिन भी कुछ गांवों में धार्मिक पूजा-पाठ का आयोजन करवाया जाता है।

प्रायः तोद घाटी के हर गांव में अष्टमी के दिन गांव के पास किसी समतल खेत में बर्फ को इकट्ठा कर 'बेनडा'' या ''बेन'' (लक्ष्य साधने हेतू बर्फ का चबूतरा) बनाया जाता है। दशमी के दिन दो विपरीत दिशाओं में एक मीटर ऊंचा बर्फ का ''बेनडा'' तैयार करवा दिया जाता है। इस ''बेनडा'' के निचले भाग में तीन पत्तों अर्थात् सफेद और काले रंग वाले गोलाकार ''च़ग'' (Bull's eye) जिसे लम्बी-पतली लकड़ी से बिद्ध कर बर्फ में ठूंस दिया जाता है। नीचे ज़मीन में लम्बे धागे से उसकी सीमा को तय करने के लिए धागे को दोनों छोर से बांध दिया जाता है। उस सीमा से पांच या छह इंच ऊपर ''च़ग'' को स्थापित कर दिया जाता है। ऊपर मोटी लकड़ी से निर्मित ''चो़न्दा'' जो काले रंग से रंगा हुआ होता है, को ''बेन्डा'' की चोटी पर रख दिया जाता है। इस ''च़ग'' और ''चो़न्दा'' को तीर द्वारा बिद्ध देने पर निम्न प्रकार से अंक प्राप्त करते हैं। ''च़ग'' के सबसे भीतर काला रंग और दूसरे में सफेद रंग और तीसरे में अर्थात् सबसे बाहरी काले रंग का गोलाकार होता है, जिसमें अंदर के दो रंगों को भेदने पर तीन अंक और बाहर के काले रंग को भेदने पर दो अंक प्राप्त होते हैं। जबकि ''चो़न्दा'' को भेदने पर दो

अंक प्राप्त होते हैं। परन्तु कुछ गांवों में अंक प्राप्त करने की परम्परा कुछ भिन्न होती है, जिसमें क्रमशः सबसे भीतर काले रंग में चार अंक, मध्य में तीन अंक और बाहर के काले रंग पर भेदने पर दो अंक मिलते हैं। प्रायः इन दो ''बेन्डा'' के बीच 40 से 45 मीटर की दूरी रखी जाती है।

इस तीरन्दाज़ी प्रतियोगिता के बारे में जनश्रुति है कि प्राचीन काल में इस तरह की प्रतियोगिताएं प्रायः लड़ाइयों की तैयारी हेतु हुआ करती थी। इसी प्रकार शिकार खेलने में दक्षता हासिल करने के लिए भी अभ्यास किये जाते थे। इसके अलावा यह भी कहा जाता है कि यह सामान्य पुरुषों द्वारा दुष्टात्माओं के विनाश हेतु ''टाड़ा'' अर्थात् बलि विसर्जन कर्मकाण्ड भी माना जाता है। यद्यपि प्राचीन काल में इसे युद्ध की तैयारी हेतु अभ्यास के रूप में आयोजित की जाती थी, परन्तु कालान्तर में लोगों के मनोरंजन एवं प्रतियोगितात्मक तीरन्दाज़ी पर्व के रूप में मनाने की परम्परा विकसित हो गई। गांव के प्रत्येक घर से जितने भी पुरुष जो 17—18 वर्ष से ऊपर के हों, उन्हें इस प्रतियोगिता में शामिल किया जाता है। लोग अपने घरों से बांस से निर्मित धनुष एवं तीर के कुछ जोड़ों को लेकर तीरन्दाज़ी हेतु मैदान में पहुंचते हैं।

'बेनडा' के साथ खड़े तीरन्दाज़ों का समूह

इस प्रतियोगिता में गांव के दो बुज़ुर्ग जिन्हें कप्तान के रूप में मनोनीत किया जाता है। शेष धनुर्धरों से एक तीर लेकर तीरों को बराबर संख्या में बांट कर दोनों कप्तानों के हाथ दे दिया जाता है। जिस व्यक्ति का तीर जिस कप्तान के हाथ होता है, वह उस टीम में शामिल माना जाता है। इस प्रकार गांव की जनसंख्या अनुसार 10—15 या इससे अधिक लोग एक ही टीम में शामिल हो जाते हैं। परम्परानुसार आयु में छोटे धनुर्धरों से शुरू कर अंत में बुज़ुर्ग कप्तानों द्वारा तीर से लक्ष्य भेदन करना होता है। इस खेल में यदि एक टीम को जीतना है तो उसे बेस्ट ऑफ फाइव के मैच में तीन मैच में जीतना होता है। इसमें 11 अंक के दो और 13 अंक के तीन मैच होते हैं। सामान्यतः प्रत्येक टीम को ''बेन्डा'' के ''चग़'', चो़न्दा और ''बेन्डा'' के भीतर भेदने पर क्रमशः ''च़ग'' पर दो-तीन अंक, ''चो़न्दा'' पर दो और ''बेन्डा'' पर दो अंक ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि एक ही टीम द्वारा सभी जगह अर्थात् ''च़ग'', ''चो़न्दा'' और ''बेन्डा'' पर तीर द्वारा विद्ध दिया जाता है तो वह टीम एक बार में जीत जाती है। परन्तु यदि प्रतिद्वंद्वी टीम पूर्व टीम द्वारा बिद्धे ''च़ग'' के स्थान पर पुनः बिद्ध देता है तो अंक प्रतिद्वंद्वी टीम को मिल जाता है। यदि दोनों टीमें 11 या 13 अंकों वाले मैचों में 11 या 13 अंक एक साथ पहुंच जाते हैं तो बैडमिन्टन, वॉलीबाल आदि गेम की तरह जीत हेतु अंक स्वतः बढ़ता ही जाता है।

छे़शु दह-छङ के दौरान तीन दिन तक इस प्रतियोगिता का आयोजन होता है। तीन दिन तक खाने-पीने की व्यवस्था गांव में रहती है। रात के समय भी खान-पान की व्यवस्था होती है। लोग खूब नाच-गान भी करते हैं।

इस लेख में वर्षभर कब और कहां तीरन्दाज़ी का खेल खेला जाता है, उस पर भी संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है ताकि आने वाली पीढ़ी को मालूम हो कि हमारे पूर्वजों ने इस पारम्परिक तीरन्दाज़ी को कितना महत्त्व दिया और वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता कितनी है।

तोद घाटी में लोसर के सातवें दिन ''पूनाः'' के दौरान अलग-अलग

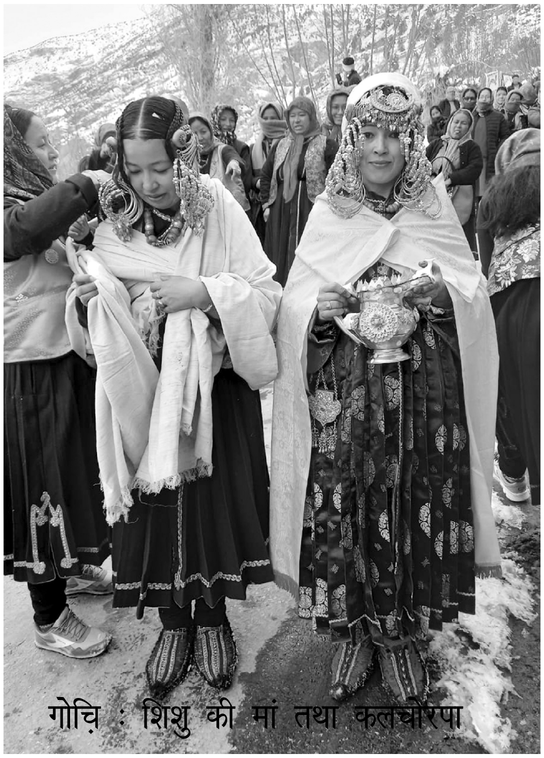

गोचि़ : शिशु की मां तथा कलचोरपा

गांवों में सफेद कागज़ पर याक, टंगरोल और सर्प का चित्रण कर तीर से निशाना साधे जाने की परम्परा है। इस घाटी के योचे़ गांव में आटे से निर्मित टंगरोल की आकृति तथा क्वरिङ गांव में ''पूनाः'' के कुछ दिन पश्चात ''फोलदा'' (आकृति पर तीरन्दाज़ी) के दिन आटे से निर्मित टंगरोल और मानव लिंग की आकृति पर तीर से लक्ष्य भेदन किया जाता है। तोद घाटी के सभी गांवों में इस दौरान लक्ष्य को भेदने के लिए हर व्यक्ति प्रतिभागी होता है। यद्यपि सबसे पहले ''ल्हबदगपा'' (देव पूजक) ही लक्ष्य भेदन करता है। जबकि पुनन वादी के अधिकांश गांवों में कागज़ पर या भोज पत्र पर याक की तस्वीर बनाई जाती है और केलंग आदि गांवों में ''गोचि़'' के दौरान मेमने की खाल में भूसा भरकर निशाना साधा जाता है। यहां केवल ''ल्हबदगपा'' ही लक्ष्य का भेदन करता है। इस तीरन्दाज़ी का अपना-अपना महत्त्व है। अतः विषय विस्तार के कारण इन पर विस्तृत उल्लेख नहीं किया जा सकता है।

तोद घाटी के तिनो गांव में भोट पंचांग प्रथम मास की अष्टमी को ''छेरङ्गद रिमडो'' के दिन कद्दू से निर्मित टंगरोल नर-मादा तथा उसके बच्चे की प्रतिमूर्ति जिसे स्थानीय भाषा में ''फोचे़'' या ''फो'' कहा जाता है। उस पर निशाना साधा जाता है, जो ''फोलदा'', ''गोचि़'' और ''पूनाः'' के समान पुत्र प्राप्ति हेतु लक्ष्य भेदन किया जाता है।

मयाड़ घाटी में चित्रौड़ि पर्व के दौरान एक या दो दिन बर्फ का 'बेन' (तारगेट) बनाकर तीर खेलने की परम्परा है। मयाड़ के चिमरेट से खंजर गांव तक लोग अपने-अपने गांवों में इस खेल का आयोजन करते हैं। इसी प्रकार वैशाखी के दिन भी एक या दो दिन तक तीरन्दाज़ी प्रतियोगिता का आयोजन होता है। परन्तु बीज-बुआई से पूर्व अप्रैल के अंत में या मई मास के प्रारम्भिक सप्ताह में ''दह छङ'' तीरन्दाज़ी प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है। इस दौरान मिट्टी का 'बेन' बनाया जाता है। यहां 'बेन' के बीच 'च़ग' और ऊपर चोटी पर 'गोशिङ' तारगेट के रूप में रखा जाता है।

चन्द्रघाटी के रङ्लो वादी में भी पूनाः उत्सव के दौरान ''पोपुन'' और ''किन्च़'' के दिन कद्दू और आटे का टंगरोल बनाकर निशाना साधने की परम्परा है। ऐसी मान्यता है कि कोई भी नव-विवाहित व्यक्ति यदि आराध्य देवता घेपङ आदि का स्मरण कर टंगरोल के दिल को अपने बाण से बिद्ध देता है तो निश्चित ही अगले वर्ष पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस खेल में सभी पुरुष भाग लेते हैं और काफी देर तक, जब तक कि निशाना बिद्ध न जाए, तब तक तीरन्दाज़ी का खेल चलता रहता है।

मुस्कुन/लेचो़ग कुंस

चंद्रभागा के तोद और गाहर घाटियों में भोट पंचांग के प्रथम मास के कृष्ण पक्ष के द्वादशी से चतुर्दशी तक पुनः ''मुस्कुन'' या ''लेचो़ग कुंस'' के नाम से तीर खेलने की परम्परा है। इसे तोद घाटी में ''मुस्कुन'' और गाहर घाटी में ''लेचो़ग कुंस'' के नाम से जाना जाता है। यद्यपि ''लेचो़ग'' अर्थात् ''डायन'' और ''कुंस'' अर्थात् लोसर के समान पर्व, जिसका शाब्दिक अर्थ डायनों का पर्व माना जाता है। तोद वादी में इसे ''मुस्कुन'' के नाम से जाना जाता है। सम्भवतः इस शब्द को सन्धि-विच्छेद करने पर मुः+कुंस किया जा सकता है। ऐसे में इस पर्व के दौरान तीरन्दाज़ी का आयोजन बर्फ के बीच में होता है। अतः ''मुः''

अर्थात् बर्फ और ''कुंस'' या ''कुन'' माने पर्व से है। यद्यपि यहां उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल में तोद वादी में पुननभाषी लोग रहते थे। ऐसे में खेतों दांगों आदि के नाम आज भी प्रचलन में हैं। उदाहरण के लिए गौरतलब है कि तोद घाटी में सिंचाई हेतु जल को यदि किसी घर को केवल 25 प्रतिशत मिलता है तो उसे ''बङ ती'' या ''गङ ती'' कहा जाता है। आलू की खेती में पहली बार सिंचाई हेतु पानी छोड़ा जाता है तो उसे ''फर ती'' कहा जाता है और जो पानी सिंचाई के दौरान खेत से बाहर बह जाता है उसे ''लिति'' कहा जाता है। यहां ''ती'' का अर्थ पुनन भाषा में पानी होता है। इस प्रकार अनेक उदाहरण मिल जाते हैं।

तोद वादी में कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन गांव के पुरुषों द्वारा एकत्रित होकर गांव के दक्षिण छोर में ''बेन्डा'' बनाने की परम्परा है। छेशु ''दहछङ्' में गांव के बीच या उत्तरी छोर में कहीं भी ''बेन्डा'' बनाया जा सकता है परन्तु ''मुस्कुन'' के दौरान अनिवार्यतः दक्षिणी छोर पर गांव से दूर बनाया जाता है। ऐसी प्राचीन परम्परा एवं मान्यता है कि इस मास के द्वादशी से चतुर्दशी तक घाटी में आसुरी शक्ति से युक्त नारियां वादी के उन प्राणियों का जीव हर लेती हैं, जिनकी ग्रह-दशा अच्छी नहीं चल रही होती है। प्राचीन मान्यतानुसार तांदी संगम के ऊपर ''करगा'' नामक स्थान पर ये सारी आसुरी शक्ति सम्पन्न नारियां एकत्रित होती हैं। जहां वे घाटी की विभिन्न वादियों से लाए प्राणियों के मांस को पकाकर स्वादिष्ट भोजन एवं पेय का सेवन करती हुई नाच-गान करती हैं। वास्तव में यह उन आसुरी शक्ति सम्पन्न डायनों का लोसर पर्व माना जाता है।

इस सम्बन्ध में प्राचीनकाल से ही बरबोग गांव के ठाकुर के घर तांत्रिक पूजा-अनुष्ठान सम्पन्न करवाया जाता है। सिद्धि प्राप्त लामा कई दिनों तक तांत्रिक धर्मपाल महाकाल की पूजा एवं साधना करते हैं। रात के समय सिद्धि प्राप्त लामा के स्वप्न में ये सारी आसुरी शक्ति सम्पन्न नारियां दिखती हैं। इनके द्वारा प्राण हरे प्राणियों के मृत शरीर को भी साक्षात देखा जाता है। वास्तव में इन प्राणियों को लोग अपने घरों में मृत पाते हैं। आज भी इस कर्मकाण्ड पूजा-अनुष्ठान की परम्परा निभाई जाती है। इन्हीं विघ्नों से पार पाने हेतु चंद्रभाग की उपत्यकाओं में प्राचीनकाल से तीर खेलने की परम्परा प्रचलित है। इस दौरान लोग अपने-अपने घरों की खिड़की-दरवाज़ों में ''पिलिच़ि'' नामक कांटेदार पौधों को इन डायनों से बचने हेतु लगाते हैं। 'मुस्कुन' के कुछ दिन पूर्व लोग अपने-अपने घरों में स्थानीय काला मटर, जौ आदि पकाते हैं, जिसे ''छनठू:'' कहा जाता है। किसी बड़े बर्तन में रख देते हैं, जो कि पौष्टिक माना जाता है, को रोज़ाना थुकपा के साथ मिलाकर खाते हैं। इसके साथ भेड़-बकरी की टंगड़ियों को 'खरोड़ा' के समान पकाया जाता है, जिसे 'थुकपा' के साथ परोसा जाता है।

तीरन्दाज़ी का यह खेल तीन दिन तक खेला जाता है। ''दह् छङ'' के समान इसमें तीरन्दाज़ी प्रतियोगिता होती है। दिन के समय पुरुष तीर खेलते हैं। शाम के समय बच्चे अपने-अपने घरों के सामने ''बिग'' (मुशुच़ि नामक घास का डण्ठल) को जलाते हैं। यह प्रक्रिया तीन दिनों तक लगातार चलती है। पहले दिन घर के आंगन में, दूसरे दिन घर से थोड़ा दूर और तीसरे दिन सभी ग्रामवासी गांव से दूर एक जगह ले जाकर जलाते हैं। बच्चे घरों से सत्तू, मिर्च आदि को ले जाते हैं। मिर्च को ''बिग'' में जलाया जाता है। ''ओम् मणि पद्मे हूँ'' को अनेक बार ऊंचे स्वर में गीत के समान गाते हैं। मंत्र को अनेक बार उच्चरित कर अन्ततः उन आसुरी शक्तियों को मार भगाने के लिए भद्दी-भद्दी गालियां दी जाती हैं। अपशब्दों से उन्हें भगाने की परम्परा है।

''मुस्कुन'' के दूसरे दिन कुछ शरारती लड़के गांव में या दूसरे गांव में जाकर घरों से सीढ़ी, पहनने योग्य कपड़े चुरा लेते हैं। कपड़ों में घास-फूस डालकर गांव से दूर बर्फ के बीच सीढ़ियों पर टांगने की परम्परा है। परन्तु यदि उन्हें धर-दबोच दिया जाता है, पहले तो उनकी खूब मेहमान-नवाज़ी की जाती है। उन्हें मादक पेय-छङ-अरक के साथ खरोड़े परोसे जाते हैं। खरोड़ों को खाने के पश्चात् उनकी हड्डियों को अपनी हथेली से तोड़ने की

प्रतियोगिता भी होती है। यदि कोई इसको तोड़ पाता है तो उसे एक और खरोड़ा खाने के लिए दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि ऐसे कर पाने पर डायनों पर विजय हासिल करने की कल्पना की जाती है। खंगसर ठाकुर के यहां उन शरारती लड़कों को हंसी-मज़ाक में पीठ पर काठी चढ़ाकर घोड़ी बनाकर सवार होने की परम्परा निभाई जाती थी। इस प्रकार पुरुष तीन दिनों तक तीर खेलते हैं। अंतिम दिन सीटियों और 'दमन' (नगाड़ा) के विशेष विघ्न नाशक राग द्वारा तीर से ''बेनडा'' में लगे तारगेट पर निशाना साधा जाता है। यदि ज़्यादा से ज़्यादा खिलाड़ी तारगेट को विद्ध देते हैं तो इसे आसुरी शक्तियों पर विजय हासिल करना माना जाता है।

''मुस्कुन' के अंतिम दिन क्वरिङ गांव में ''बेले'' अर्थात् बलि विसर्जन की परम्परा है। इसमें कद्दू के सत्तू से निर्मित एक औरत जिसके सिर पर 'बैरग' (लद्दाख के औरतों के सिर पर पहनने वाली रत्न जड़ित मुकुट) तथा पीठ पर बच्चा धारण किए, की आकृति बनाई जाती है। छाती पर 'पलबर' (पतली लकड़ी पर धागा लिपटाकर तेल से भिगोया गया मशाल) जलाया जाता है। एकत्रित गांव के लोग 'ओम् मणि पद्मे हूँः' का अनेक बार मंत्रोच्चारण करने के पश्चात् नगाड़ा वादक द्वारा ''शुग-शुग राग'' (बलि विसर्जन राग) पर सीटियों और ऊंची आवाज़ में चिल्लाने के पश्चात् उसे दक्षिण दिशा में फैंक दिया जाता है। तोद घाटी के समान पुनन घाटी में भी 'लेच़ोग कुंस' के दौरान तीर खेलने की पम्परा है। शकस नाला के ऊपर के गांवों में तथा दरिया पार के गांवों में भी बर्फ के बेनडा बनाया जाता है। द्वादशी के दिन गुमलिङ, त्रयोदशी के दिन युरनद और चतुर्दशी के दिन गुस्क्यर में 'बेनडा' बना कर तीर खेला जाता है। जबकि केलंग में आटा और कद्दू को गांव के प्रत्येक घर से इकट्ठा कर 'कुकुजि' परिवार के एक घर में 'फो' (आकृति) बनाने की परम्परा है, जिसमें आटा और कद्दू से निर्मित चौरस रोटी के आगे पांच रोटी तथा एक बकरीनुमा ''फोच़ि'' (आकृति) बनाया जाता है। इन्हें आग में पकाया जाता है। चौरस रोटी जिसमें हाथ के मूंठ से निर्मित दो सींग और एक पूंछ लगाई जाती है।

केलंग में पुराने समय में जिस खेत में फसल अच्छी नहीं आती थी, उस खेत में तीर खेलने हेतु खेत का मालिक 4—5 लीटर छङ और भोजन की व्यवस्था करता था। परन्तु आजकल जहां-तहां खेत खाली हो, वहां खेला जाता है। दूसरे दिन के लिए उस व्यक्ति के खेत में खेला जाएगा, जिसने पहले दिन खेल के दौरान अंतिम बारी में 'फो' पर निशाना साधा हो। उस व्यक्ति के घर में पुनः 'फो' बनाया जाएगा, जिसके लिए आटा और कद्दू उसे स्वयं देना होता है। इसी प्रकार तीसरे दिन के लिए भी यही परम्परा निभाई जाती है। 'लेच़ोग कुंस' के दौरान द्वादशी से चतुर्दशी तक सोम या शुक्रवार आए तो ''युल्लह तेते'' (ग्राम देवता) के नाम ''ब्रङ्ज्ञस'' का भोग चढ़ाया जाता है। शाम को छोलो (पासा खेल) नाम स्थानीय खेल का आनन्द (तोद और गाहर घाटी दोनों में) लेते हैं। मान्यतानुसार उक्त दिनों में पाश्विक शक्तियों से युक्त डायनों की शक्ति को क्षीण करने के लिए महाकाल की पूजा के साथ-साथ सामान्यजन तीरन्दाज़ी प्रतियोगिता का आयोजन अनुष्ठानिक कर्मकाण्ड के रूप में करते हैं।

पिछले दो दशकों में चंद्रभाग की घाटियों में यदा-कदा पारम्परिक तीरन्दाज़ी की प्रतियोगिताओं का आयोजन होता रहा है। ज़िला स्तर पर तीरन्दाज़ी सभाओं का गठन भी हो चुका है। उनके बेनर तले तीरंदाज़ी प्रतियोगिताएं भी आयोजित होती रही हैं। इसकी प्रासंगिकता तब है, जब हम अपनी युवा पीढ़ी को आधुनिक धनुष-वाण के माध्यम से इस प्रकार की प्रतियोगिताओं में खेलने के लिए प्रेरित करें। स्थानीय जनता यदि शासन-प्रशासन से मिलकर इस खेल को जगह-जगह आयोजित कर युवाओं को आगे लाने में प्रशिक्षण देती है तो निश्चित रूप से हमारे बीच से कुछ खिलाड़ी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की स्पर्धाओं में जीत हासिल कर सकते हैं। जो हमारी घाटी के लिए गर्व की बात हो सकती है।

संपर्क :
मो. : 7018902441

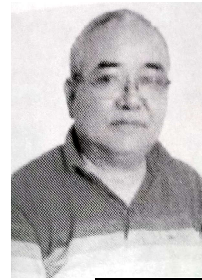

✍ रणवीर शाशनी

बराज़ा...

''बराज़ा" लाहुली समाज का एक आनुष्ठानिक चित्र ही नहीं वरन इन्हें यहाँ की संस्कृति का विशिष्ट प्रतीक चिन्ह कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। सभी समुदायों में एकत्व और भ्रातृत्व का भाव जगाने वाला एक शुभता और सर्व-कल्याणकारी मांगलिक चिन्ह या प्रतीक है...जिसका प्रतिष्ठापन एवं भित्ति आंकन केवल दो त्यौहारों के वक़्त ही होता है।

लाहुल में ''खोगल'' या ''हालडा" त्यौहार के वक़्त ''बराजा ठेह्ट्रि" अर्थात बराज़ा प्रतिष्ठापित तथा ''बराज़ा त्सेत्सि" अर्थात बराज़ा चित्रांकन की परम्परा केवल ''कुस" या ''कुंह" के दौरान ही है...यह प्रथा बहुत ही पुरानी है। इस प्रतिष्ठापन में पूरी घाटी में पर्याप्त समानता है, किन्तु इसके अंकन या चित्रण में भिन्नता है। किसी समुदाय विशेष में ''खोग्लाणु त्सेत्सि" अर्थात दीवार अथवा मुख्य द्वार पर स्वस्तिक के चिन्ह को अंकित करने का रिवाज़ भी है. उसके साथ कुछ अन्य चित्र भी अंकित किए जाते हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में ''प्य'ह् प्यूत्स'अ त्सेत्सि" कहा जाता है... कुस के समय बराज़ा प्रतिष्ठापन और आंकन दोनों किये जाते हैं। पिछले साल के चित्रित किए हुए बराज़ा को ''कुय्हग" अर्थात कुस के पूर्व संध्या के भोजन से पूर्व ही मिटा कर उस पर ''रोक्'षो" अर्थात काली मिट्टी की लिपाई सूख जाने के बाद, उस पर ''माकोल" अर्थात मक्कोल अथवा सफ़ेद मिट्टी के रंग से बराज़ा को चित्रित किया जाता है। यूँ कहें इसे हर साल नया ही चित्रित किया जाता है। बहुत सारे इलाकों में इस झंझट से मुक्ति पाने के लिए पूर्वतः कागज़ पर अंकित कर शीशा और फ्रेम चढ़ाकर रखे गए हैं, या कहीं किसी धात्विक पत्रक में उकेर कर रखा गया है... एक तरह से स्थायित्व प्रदान करने के लिहाज़ से.. मयाड़ घाटी में हर घर में बराज़ा अंकित करने का रिवाज़ है। वहाँ कुस के दौरान जब भी ''चिप्यक्सि" या ''क्वल्पि" अर्थात लोगों से मेल-मिलाप या भेंटने के लिए जिस भी घर में लोग जाते हैं, उनका बराज़ा आंकन में कोई कमी हो तो वे उन्हें गिन-गिन कर बताते हैं। इस प्रकार उस चित्र का परिमार्जन हो जाता है। इसी लिए उन सभी का बराज़ा आंकन कुछ-कुछ एक समान सा होता है। कुछ दूसरे इलाकों में जैसे तोद घाटी में इस बराज़ा आंकन से संबंधित गीत भी गाए जाते हैं।

खोगल पर्व पर बराज़ा स्थापन

बराज़ा चाहे ''ठेह्ट्रि" अर्थात प्रतिष्ठापित या फिर ''त्सेत्सि" अर्थात चित्रांकित करें, उन दोनों को बराज़ा क्योंकर कहा जाता है? यह प्रश्न ज़रा टेड़ा है। प्रतिष्ठापित किए हुए बराज़ा

को पूरी घाटी में सभी समुदाय ''शिखर अप'अ" या ''शिस्कर अप'अ" अर्थात शिखर की दादी अर्थात काली माता अथवा श्रीदेवी मानते हैं, किन्तु चित्रांकन में जो मुख्य आकृति होती है उसे राजा बलि की ही मानी जाती है... एकाध चित्रों में ये दोनों एक साथ दर्शाए गए हैं।

(सुदर्शन वशिष्ठ जी के अनुसार ''अप'अ" शब्द को बहुत विशिष्ट और स्थानीय भाषा या बोली अथवा हिंदी का शब्द न मान कर बल्कि सीधा वैदिक शब्द जो देवताओं की पत्नियों के लिए प्रयुक्त हुआ शब्द माना गया है। जैसे, उनके अनुसार, ऋग्वेद के 10.43.8 श्लोक में कहा गया है, ''यो आर्यपत्नीः अकृणोत इमा अपः" अर्थात जिनकी पत्नियां अपः हैं उनको मनुष्य कैसे कहा जा सकता है, अर्थात वे देवता हैं. इन्हें आर्यपत्नी भी कहा गया है. इस शब्द से इस आयोजन का संबंध वेदों से जुड़ता है। निर्मण्ड की बूढ़ी दियाली से खोगल की साम्यता है। खोगल में दोनों तरह की पूजा पद्धतियों का समावेश है। 'सद् हल्ळ'अ' अर्थात देवताओं की मशाल में वैष्णव पूजा होती है... जिसे भगवद् गीता में.. पत्रम् -पुष्पम् -फलम् तोयम् रूप में दर्शाया गया है वहाँ धूप, दीप, शुर, (अर्थात देवदार हरी डाल) फूल, छवा और मारचु अर्थात अनाज के दाने और पूरी आदि अर्पित किए जाते हैं। ''नम्म हल्ळ'अ" अर्थात जो मशाल नकारात्मक ऊर्जा के विसर्जन के समय ले जाया जाता है उस समय वैदिक विधि से पूजा की जाती है। बहुत से गांवों में ''पित्तर हल्ळ'अ" या ''देफ हल्ळ'अ" भी निकाले जाते हैं जो पित्तरों और पुण्यात्माओं को समर्पित होते हैं।)

तिब्बती और नेपाली लोग भी इसी तरह के देवी को ''पल्दन ल्हमो" अर्थात श्री देवी अर्थात सुख सम्पन्नता की देवी मानते हैं।

लाहुल में प्रायः यह बराज़ा घर के उत्तर पूर्वी कमरे के उत्तर-पूर्वी कोने में ही स्थापित किया जाता है। खोगल के दौरान पांच या सात हल्ळ'अ अर्थात मशाल के गठ्ठरों को आड़े तिरछे खड़े कर के यह स्थापित किया जाता है। इनके नीचे जो खाली जगह होती है वहाँ भोज्य पदार्थों के अंश और दीया बाती तथा धूण-धुपौती की जाती है.. 'कुस' के दौरान एक तीर के नोक पर ''थपग" अर्थात मोटी सुई (bodkin) फर्श पर, जहां गोबर की लिपाई की होती है वहाँ गाड़ कर यह टिकाया जाता है या फिर दो बांस के छड़ों को आड़े तिरछे रख कर उन पर सफ़ेद चादर या खेस ओढ़ी जाती है। फिर कंठी माला पहनाई जाती है. ..एक तिकोना या शंक्वाकार सी आकृति, जिसके सिरे पर ''यौर'अ या पंढ'ह्, झोलुणु'' अर्थात जौ का ज्वारा, फूल आदि पहनाए जाते है। इस प्रकार उसे एक स्त्री स्वरूप दिया जाता है, जिन्हें शिखर अप'अ अर्थात शिखर में वास करने वाली दादी कहा जाता है। इस बराज़ा के आगे ''लड़ दन्ज़'अ" तैल में पकायी हुई लिंग-योनि आकार की पूरियां, दंज़'अ अर्थात तेल में पकायी हुई टंगरोल की आकृतियाँ, उस दिन की घर में तैयार अन्य भोज्य पदार्थ, फल फूल आदि। ऊन का गोला और 'रेटु' अर्थात कताई किए हुए ऊनी धागे का गोला, 'रेन' अर्थात सेर या सवा सेर अनाज को मापने का लकड़ी का पात्र पूरा भर कर अनाज, उसमें गाड़े गए ''चुँह" अर्थात तीर.. ये सब उनके आगे रखे जाते हैं... बहुत बार भेड़ का दायां सूखा कंधा जिसे ''लक्श'अ" कहते हैं वह भी रखा जाता है।

अब जो बराज़ा अंकन होता है उसमें मुख्य चित्र दानव राज राजा बलि का होता है। स्वस्तिक के निशान, सूरज और चन्द्रमा, ''केरेत्स'अ" अर्थात दंतुरित चक्र.. जिसे कई सूरज मानते या फिर सुदर्शन चक्र... साथ ही साथ यौर'अ बलि, लक्श'अ, धुणकड़थ्सि, पदकु आदि। किन्तु यह ज़रूरी नहीं हर इलाके का बराज़ा आंकन में यही चित्र होंगे।

हर इलाके में, हर समुदाय के द्वारा अलग-अलग तरह का बराज़ा चित्रांकित किया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि दोनों को बराज़ा क्योंकर कहा जाता है..? यदि लिखे हुए को राजा बलि माना जाता है तो स्थापित किए हुए को शिखर अप'अ माना जाता है। बराज़ा शब्द आया कहां से. ..? बहुत से लाहुल के विद्वानों का मत है कि यह शायद पट्टनी शब्द ''बा+ रज़्ज़ा" अर्थात वामन अवतार के नाम पर बना है। राजा बलि के

काल में विष्णु भगवान वामन अवतार का रूप धर कर आए। सुना है कि राजा बलि बहुत बड़े दानी राजा थे, उनके राज में प्रजा बहुत सुखी थी.. .वामन अवतार ने दान में राजा बलि से तीन पग ज़मीन मांगी थी किन्तु दो पग में ही धरती और आकाश माप लेने के बाद राजा बलि और कुछ नहीं दे पाने के कारण तीसरे पग को धरने के लिए उन्होंने अपना सिर झुका लिया। इस का वर्णन मैं कुस नामक त्यौहार के लेख में पहले भी चंद्रताल पत्रिका में कर चुका हूँ। यह कथन कि, ''बा+ रज़्ज़ा" अर्थात छोटे राजा से बराज़ा शब्द बना...वैसे देखा जाए तो शब्दों की साम्यता से काफ़ी हद तक ठीक सा लगता है... किन्तु लाहुली लोग वामन अवतार को ज़्यादा महत्ता नहीं देते बल्कि वे राजा बलि को मानते हैं, इसीलिए इस कुस के त्यौहार को ''बड़ी दानो तिहारा" कहा जाता है...कई बार यह भी लगता है कि कहीं यह बराज़ा शब्द वर+रण्ड्राड़ या फिर वर +दा अर्थात वर-दाता या दात्री दो शब्दों के मेल से तो नहीं बना है... किन्तु यह भी अनुमान मात्र है...विद्वानों का एक और मत है राजा बलि को ''बलिराजा या बलराजा" भी कहते हैं... और शायद इसी शब्द से इस ''बराज़ा" शब्द की उत्पत्ति हुई है। ध्यातव्य है, खोगल के दौरान एक तो ''खोग्लाणु राग" अर्थात खोगल आगमन सूचक राग बजाने का रिवाज़ है और कुस के दौरान ''खोग्लाणु चित्रण" का.. चिनलभाषा के अनुसार खोग्लाणु, स्वस्तिक को कहा जाता है और उसी के अनुसार खोगल इस प्रकार हुआ एक ''मांगल्य पर्व"... यद्यपि खोगल और कुस या कुंह आदि शब्दों की न तो व्युत्पत्ति और न ही सही-सही अर्थ की जानकारी अभी तक मिल सकी, हो सकता है जिनको जानकारी है उन तक पहुंच नहीं पाए हों...यदि हम बात करते है बराज़ा की, तो दोनों बराज़ा से वर ही माँगे जाते हैं. अतः बराज़ा नामकरण ''बा +रज़्ज़ा" से उद्भूत इसलिए नहीं लगता क्योंकि एक तो वामन अवतार की उतनी महत्ता लाहुली समाज में नहीं। दूसरा, वामन अवतार कोई राजा भी नहीं हैं अतः उन्हें बा+रज़्ज़ा कहना उचित नहीं लगता है...बराज़ा अर्थात राजा बलि और शिखर अप'अ दोनों के लिए प्रचलित नामकरण अवश्य है। किन्तु ऐसा लगता है, मुख्यतः राजा बलि के लिए ही यह सम्बोधित है। दक्षिणी भारत में राजा बलि और उनकी पत्नी विंध्यावल्ली दोनों की पूजा की जाती है और इस बलि प्रतिप्रदा के दिन गोबर के तिकोने आकार की मूर्तियां बनाई जातीं हैं। जिन्हें गेंदे के फूलों से सजाई जाती है। लाहुल में इन्हें 'प्या' कहते हैं..!!

लोग बराज़ा पूजन की शुरुआत इस प्रकार करते हैं:--

ऊँ बराज़ा ओम्म'अ
शागुण परमेसर महाराज
अन्न'अ धनों बर'अ रोंउ
टंग'अ ढब्बो बर'अ रोंउ
त्राम्बा कांसो बर'अ रोंउ
हीरा प्रोउजो बर'अ रोंउ
तिङ टुको बर'अ रोंउ
त्सुर पुरतु बर'अ रोंउ
लत्स'अ कुर्त्सो बर'अ रोंउ
त्रेईं घ्वणो बर'अ रोंउ
उठ'अ हाथिउ बर'अ रोंउ
मिंह मनुक्खो बर'अ रोंउ
साल बूटी रुठे शुबि जुस
रोह्ग बीर दू:र ल्होउ
भत्तेतिङ सुख सांत रोंउ
क'अ अंजे न्येरे
रहुम्ज़ा महाराज
कुंजु ढाल जी

अर्थात बराज़ा को सर्वेसर्वा मान कर उन्हें नमन वंदन और शुभ शगुन की मंगल कामना करते हुए हमें....क्रमशः. .

अन्न-धन का वर दीजिए
रूपये पैसों का वर दीजिए
तांबा-कांसे का वर दीजिए
हीरा और फिरोज़े का वर दीजिए
मूंगा-मोती का वर दीजिए
छाग-शिशु और मेमनों का वर दीजिए
गाए-भेड़ का वर दीजिए
ऊंठ-हाथी का वर दीजिए
आदमी-मनुष्य का वर दीजिए
साल-फसल अच्छी हो
रोग-शोक दूर हों
सबका मंगल हो सब सुखी हों

आपके आने के लिए हम प्रतीक्षारत थे, महाराज।

कुस का ढाल अर्थात नमस्कार

ये वर या तो माता लक्ष्मी से अथवा महादानी राजा बलि से ही मांगे जा सकते हैं... इसलिए बा-रज़्ज़ा अर्थात वामन अवतार की बात यहाँ सही नहीं लगती है...इसी लिए एक माता स्वरूप और दूसरा महादानी राजा बलि के तौर पर यहाँ मान्य एवं पूज्य हैं.. . विद्वान जो बलराज से बराज़ा शब्द की उत्पत्ति बता रहे हैं वही सही बात लग रही है। कुल्लू के नशाला गांव में राजा बलि का मंदिर है। बलि प्रतिप्रदा का पर्व बहुत प्राचीन है जिसके बारे, सुना है, पतंजलि के महाभाष्य में भी वर्णन मिलता है। अधिकांश वर सांसारिक भोग्य पदार्थों की ही है... इसमें एक वर ऊंठ हाथी का भी माँगा जा रहा है जिन्हें लाहुल में तो शायद ही पाले जा सकते हैं। या तो यह मांग बहुत पुरानी है, या हो सकता है उनके पूर्वज लाहुल बसने से पूर्व जहाँ कभी रहते थे वे वहाँ उन्हें पाला करते थे। हो सकता है उनका इनसे कुछ नाता अवश्य रहा होगा।

बराज़ा शब्द दुनियां के अन्य भाषाओं में ढूंढें तो केवल मात्र अफ़्रीकी स्वाहिली भाषा में यह शब्द पाया जाता है। उस भाषा के अनुसार बराज़ा शब्द का अर्थ है... बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा मंत्रणा हेतु सभा बुलाना या फिर मिलन-स्थली। इस शब्द का प्रयोग कम्प्यूटर में भी हुआ है और कुछ होटल्ज़ और रेस्तराँ के नाम भी रखे गए हैं।

बराज़ा अंकन की विधि :-

बराज़ा दीवार पर 'रोक'षो' (काली मिट्टी) की लिपाई किए हुए पृष्टभूमि पर 'थ्सगर' ('थ्स' अर्थात रंग या स्याही और 'गर' अर्थात सफ़ेद रंग वाला चूने का पत्थर) जो एक कुदरती रंग है या फिर ''चोड़्ज़ि'' एक और कुदरती सफ़ेद रंग जिसे आग में बुझा कर उसका चूरा बना कर प्राप्त किया जाता है। इन्हीं रंगों का प्रयोग तर्जनी अथवा पँख से पोत कर बराज़ा चित्रण किया जाता है... दीवार के निचले हिस्से में एक हाशिए की तरह ''लोह्कि'' लिखा जाता है जो पूरे दीवार से लेकर दरवाज़े तक अंकित किया जाता है।

बराज़ा की साम्यता :--

बराज़ा आंकन की परम्परा जैसे हिमाचल के कई ज़िलों में ''लिखणु'' की परम्परा है, राजस्थान में ''फ़ड़'' या ''फ़ड़क्यूँ'' और मध्यप्रदेश में ''सांझी का किला कोट'' लिखने की परम्परा है। इनके चित्र में सूरज चाँद और अन्य चित्र (motif) बनाए जाते हैं। यह अविवाहित लड़कियों का एक पर्व है... इस दौरान गोबर की लिपाई के बाद खड़िया मिट्टी से चित्र बनाए जाते हैं। यह मान्यता है कि इस दौरान उनके पित्तर घर आते हैं। राजस्थान में ''थापा'' चित्रित करने की परम्परा है, जो कि एक ही रंग से बनाया जाता है। इसका सीधा संबंध कुलज देवी से है, जो ऊर्वरता और संतानोत्पत्ति की देवी है, उनका पूजन होता है। कुमाऊं में ''ज्यूँती'' लिखने की परम्परा है...वरली जनजाति की भित्ति चित्रण तो पूरे संसार भर में मशहूर है। कुछ-कुछ इन्हीं की तरह का भित्ति चित्रण की परम्परा लाहुली बराज़ा आंकन की परम्परा लगती है।

बराज़ा चित्रण लाहुली लोक संस्कृति का विशिष्ट प्रतीक चिन्ह :--

जैसे मैंने आरम्भ में ही कहा है कि बराज़ा लिखने की परम्परा लाहुली लोक संस्कृति का एक विशिष्ट परम्परा ही नहीं बल्कि एक विशिष्ट पहचान भी है। यह प्रथा पूरी घाटी के हर कोने में विविध तरह से प्रचलित है। ''कहा जाता है कि'' लोक कला वास्तव में सामाजिक चेतना का प्रतीक होता है...बराज़ा का चित्र (मिथकीय) प्रतीक भी हो सकता है या फिर (मिथकीय..) संकेत भी हो सकता है। मौलिक भी या फिर उधार का.. पर मौलिकता का दावा भी तो कौन करे. .. क्योंकि लोक कला का सर्जक जो भी रहा होगा उसकी कला, कला सर्जक के स्वयं तक सीमित न रहकर आजकल की भाषा में, वैसे ही ''वायरल'' हो जाता रहा है जैसे आज के युग का ''फेसबुक'' या ''वट्सएप'' या ''गूगल'' नेटवर्क के फोटो या उसमें चर्चा की गई कोई खास बात...!''

''संसार के अनेकानेक विख्यात चित्रकार भी लोक कला से उधार लेकर किसी कृति की रचना करते आ रहे हैं और वाहवाही लूटते रहे हैं, क्योंकि लोक कला की पेटेंटिंग नहीं होती न ही कॉपीराइट्स होते हैं। महान चित्रकार पिकासो अफ़्रीकी जनजाति के ज्यामितीय चित्रों से प्रभावित होकर ''क्युबिज़्म'' को जन्म दे जाते हैं, जिसका

वास्तविक रचनाकार या जन्मदाता कोई लोक कलाकार ही रहा होगा।"

''विद्वानों का मत है कि'' लोक कला के संकेत या प्रतीक जो प्रायः अनेकार्थक (polysemic) हो सकते हैं। कई बार तो ये इतने अमूर्त होते हैं, जिनके बारे कोई भी टिप्पणी करना अत्यंत मुश्किल हो जाता है... अतः प्रतीक विशेष के पीछे सदैव कोई न कोई आधारभूत तर्क अवश्य निहित होता है। इनके द्वारा परम्परागत रूप से स्वीकृत माध्यमों से संदेश प्रेषित किए जाते हैं। प्रतीक की मुख्य विशेषता यह लगती है कि इससे किसी न किसी सारगर्भित बात की अभिव्यक्ति होती है। हर प्रतीक किसी न किसी अर्थवान बात को संप्रेषित करने का माध्यम होता है."

प्रतीकों में हेर-फेर की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता... खास कर लाहुल के संदर्भ में तो प्रतीकों की व्यवस्था न तो संगत (consistent) है और न ही सुसंबद्ध (coherent)। वैसे ऐसी अपेक्षा भी नहीं की जानी चाहिए और यह आवश्यक भी नहीं कि एक घाटी का चित्र दूसरी अन्य घाटियों के चित्र या एक समुदाय विशेष का चित्र दूसरे समुदायों के चित्रों से मेल खाए। प्रतीकों के मनमाने ढंग से अपनाने के कारण उनका अर्थ या उद्देश्य भी मनमाने हो सकते हैं। इन प्रतीकों और संकेतों का अर्थ तो केवल मात्र उन सामाजिक संदर्भों में किस तरह प्रयोग हुआ है, तदानुसार ही निकाले जा सकते हैं।

हमारे गांव की एक दादी अम्मा जिनका नाम ''मुनि" था... सभी उन्हें मुनि अप'अ अर्थात मुनि दादी कह कर बुलाते थे... वे दिन के उजाले में अपने घऱ के आँगन में कुछ ढूंढ़ रही थी। कोई गांववाला पूछता है, ''दादी जी आप क्या ढूंढ रही हो, कुछ खो गया क्या..?" वे कहती है, ''मेरी सुई गुम हो गई है, मैं उसे कब से ढूंढ़ रही हूँ।" गांववाला कहता है, ''सुई कहां खो गई थी.... कुछ पता है आपको...?" दादी जवाब देती है, ''खास याद नहीं आ रहा, शायद भीतर ही खो गई थी।"

''तो फिर तुम यहाँ आँगन में क्यों ढूंढ़ रही हो... भीतर ही खोजो न...''मुनि दादी कहती है" भीतर अंधेरा है न, यहाँ धूप की रौशनी में मैं अच्छी तरह देख सकती हूँ..! बस उसी मुनि दादी का अनुसरण हो रहा है... हमारी सुई कहीं न कहीं खो गई है... उसे हम दिन के उजाले में अन्यत्र खोज रहे हैं। (मुनि अपो चेब पेट्रिमि ट्रोह्) हो सकता है वांछित सुई मिले न मिले किन्तु खोजने पर कुछ ऐसी दूसरी चीज़ें मिल जाती हैं, जिनके बारे हमें मालूम भी नहीं होता है कि वे कभी खो भी गईं थीं.... या फिर वे चीज़ें कभी हमारे पास थीं भी...

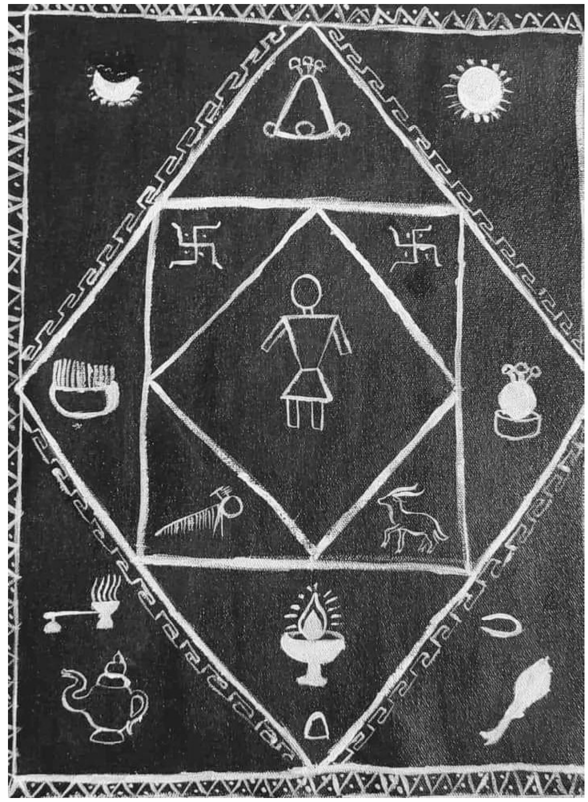

कूंह पर्व पर चित्रित बराज़ा

बस यह अध्ययन भी बस उसी तरह का हो रहा है.

बराज़ा के चित्र :--

बराज़ा का एक चित्र मैंने मैलिङ शिव मंदिर के पुजारी श्री सुख दयाल जी के थान में देखा। उस चित्र की पृष्टभूमि ''रोक'षो'' अर्थात काली मृदा की है उस पर ''माकोल" अर्थात श्वेत खड़िया मिट्टी से चित्रण उँगलियों से किया गया था... यह दोनों तरह की मिट्टी लाहुल में आसानी से उपलब्ध हैं। इस चित्र के (बतौर दर्शक अनुसार) दायीं ओर 'लत्सङ' अर्थात चन्द्रमा और बांयीं ओर 'एके' अर्थात सूरज है। फिर बीच में 'पदकू' अर्थात लॉकेट या 'गउ' (पट्टनी में) दांयीं ओर एक 'मिंह' अर्थात मानव आकृति, बांयीं ओर शिवलिंग, नीचे दांयीं ओर एक

'त्रेंईं' अर्थात भेड़ का चित्र, 'संज्वा' अर्थात एक दीया तथा बांयीं ओर एक 'लक्'श'अ' अर्थात भेड़ का दांयां कंधे का चित्र, एक 'टोटु' अर्थात सत्तू की पानी में गूंदी हुई शंक्वाकार पिंडी का चित्र, बीच में 'शङण' अर्थात देऊखेल वाला सांगल का चित्र, और सबसे नीचे दांयीं ओर 'यौर'अ बलि' तथा 'दन' अर्थात गेंहूँ या जौ का ज्वारा और टंगरोल का चित्र। बांयीं ओर 'शुक्त्स'अ' अर्थात कंघी और बीच में 'घण्डि' अर्थात घंटी का चित्र है। दीवारों पर बिंदुनुमा 'लोह्कि' अंकित हैं, जिन्हें लक्ष्मी जी के स्वागतार्थ ये अंकित किए जाते है। इस चित्र की विशिष्टता यह है कि यह चित्रांकन की परम्परा वंशानुगत न जाने कब से चली आ रही है। कुछ कुछ 'raw' भी है और मौलिक भी... चित्र दो भागों में विभाजित है... एक 'सर्ग' अर्थात आकाश और दूसरा है 'धरतिरी' अर्थात धारित्री अर्थात धरती। ये सभी चित्र धरित्री में ही अंकित हैं, दूसरे चित्र में जिसमें घंटी, चाँद दांयीं ओर सूरज बांयीं ओर तथा जग, गिलास और लक्'श'अ, धुणकड़थ्सि यौर'अ बलि दांयीं ओर, टोटु बांयीं ओर, दंज़'अ बीच में दर्शाए गए हैं।

तीसरे चित्र में सूर्य को दांयीं ओर सबसे ऊपर, चन्द्र को बांयीं ओर, धुणकड़थ्सि, संज्वा, शुक्त्स'अ, टोटु, लक्श'अ, म'कुड़ि अर्थात छोटी कुल्हाड़ी, यौर'अ बलि, दो दंतुरित वृत्ताकार आकृतियाँ 'केरेत्स'अ' तथा दो स्वस्तिक के चिन्ह जो उलटी दिशा में दर्शाए गए हैं, इन सब को अंकित किए गए हैं।

चौथे चित्र में 13 खाने हैं, इसके केंद्र में राजा बलि का चित्र और उसके चारों ओर के खानों में क्रमशः बांये चाँद और दांयीं ओर सूरज, इनके बीच में शाकाहारी अर्घ्य टोटू आदि के चित्र हैं। इनके नीचे के खानों में स्वस्तिक का चिन्ह, यौर'अ बलि तथा रेन के ऊपर ऊनी धागे का गोला (जिसे 'रेटु' कहा जाता है) जो झोलुणु फूल से सुसज्जित है, वे अंकित हैं... इनके निचले खानों में राजा घेपन, दन अर्थात टंगरोल, धुणकड़थ्सि, छपक्यन अर्थात सुरा पात्र, दीया और भेड़ के दांए कंधे का चित्र अंकित हैं।

पांचवां चित्र दलित समुदाय का चित्र है, इसमें कोई वर्गीकरण नहीं... बांयीं ओर के कोने में सूरज चाँद सितारे इकठ्ठे दर्शाए गए हैं... बीच में दीया जिसे बराज़ा नाम दिया गया है और दांयीं ओर राजा बलि घोड़े पे सवार और हाथ में तलवार लिए हुए दर्शाया गया है। मध्य में खोग्लाणु अर्थात स्वस्तिक का चिन्ह जो कि उलटी दिशा में गतिमान तथा एक 'नार' अर्थात नरड़ या नरेड़ या फिर हुक्का आदि चित्रित हैं। बांयीं ओर नीचे 'रेइत' अर्थात आम प्रजा, यौर'अ बलि, 'धड़च' अर्थात धुणकड़थ्सि, दांयीं ओर शिखर अप'अ अर्थात शिखर की दादी तथा इन सबके नीचे 'ढड़' अर्थात नगाड़ा बेलणियों (चौब) के साथ दर्शाए गए हैं। यह चित्र बहुत आधुनिक है... इसमें आधुनिक रंगो का प्रयोग हुआ है। यह ब्रश से बनाए गए हैं, किन्तु एक बात अवश्य है कि इस चित्र में जो भी बात छन कर आ रही है वह बड़ी गहरी और मूल तत्वों से जुड़ी हुई सी जान पड़ती है। इसी चित्र में राजा बलि और शिखर अप'अ एक साथ नज़र आ रहे हैं बाकी किसी अन्य में वे इकठ्ठे नज़र नहीं आते हैं। अंतिम चित्र बहुत अनूठा है, यह शायद बहुत नया भी है और बहुत हद तक परिष्कृत भी। इसे धातु के पत्रक पर बनाया गया है... एक तरह से स्थायित्व सी प्रदान कर दी गई है. ..शायद हर साल मिटाने और अंकित करने के झंझट से मुक्ति पाने के लिए और कुछ हद तक बिक्री के लिए भी। इसमें एक वर्गाकार क्षेत्र को 12 खानों में बांटा गया है जिस तरह राशिफल का होता है। इन खानों के सबसे ऊपरी दांए खाने में 'एके' अर्थात सूरज और बांये खाने में 'लत्सङ' अर्थात चाँद दर्शाए गए हैं। इन दोनों के बीच एक 'मिंह' अर्थात मानव का चित्र है, जिसे प्रायः सभी लोग राजा बलि का चित्र मानते हैं। इनके नीचे के खानों में दांयीं ओर टोटु और बांयीं ओर टंगरोल तथा यौर'अ बलि आदि के प्रतीक चिन्ह हैं। सबसे निचले खानों में दांयीं ओर धुणकड़थ्सि और बांयीं ओर संज्वा के प्रतीक चिन्ह हैं। शेष चारों कोनों में 'युङरुङ' अर्थात स्वस्तिक के निशान हैं। ध्यान देने योग्य निम्न बातें हैं :-

1. बारह खाने... ये खाने पूर्व के

चित्रों में देखने को नहीं मिलते हैं। क्या ये बाद के additions हैं... पुराने चित्रों में इस तरह की व्यवस्था न तो संगत थी और न ही सुसंबद्ध. .. यह चित्र पर्याप्त व्यवस्थित और सुसंबद्ध है और आधुनिक भी।

2. सूरज और चाँद के चित्र... लगभग सभी चित्रों में ये दोनों उपस्थित हैं। अनेक धर्मों के दर्शन में इन दोनों का बड़ा महत्त्व है... शायद इन्हीं विचारों से प्रभावित लाहुली समाज भी कहीं न कहीं रहा होगा। भारतीय दर्शन में 'पिंगला नाड़ी' दक्षिण पक्ष, दिन या रौशनी का प्रतीक माना जाता है और 'इड़ा नाड़ी' को वाम पक्ष अँधेरे और निष्क्रियता का माना जाता है। कहा जाता है अगर इड़ा नाड़ी किसी में सक्रिय हो तो उस व्यक्ति में स्त्रियोचित गुण ज़्यादा स्पष्ट नज़र आते हैं। यदि पिंगला नाड़ी ज़्यादा सक्रिय हो तो पुरुषोचित गुण ज़्यादा नज़र आते हैं। यद्यपि इन दोनों नाड़ियों का भौतिक अस्तित्व नहीं होता है।

लाहुल में पुरुषों के ''सुचङ आत्सि" अर्थात दाँयीं ओर तथा स्त्रियों के ''फुचङ आत्सि" अर्थात बांयीं ओर कपाल पर ''थ्सुङ्मर" अर्थात मक्खन का टीका केवल ''फम्थ्सईं" अर्थात सनात बालाओं द्वारा ही लगाने का रिवाज़ कहीं न कहीं इन्हीं मान्यताओं के आधार पर ही शुरू हुआ होगा। शादी ब्याह के दौरान ''शिरदार" अर्थात शायद श्री-धर को दक्षिण दिशा से आरम्भ कर ''ज़िरेके उ हक'अ" अर्थात पूर्वाभिमुख ही बिठाया जाता है उसके बांयीं ओर ''बक्ट्रिप'अ" अर्थात दुल्हन का तदर्थ भाई और फिर ''ब्यौहू" अर्थात दूल्हा। ''ब्योउथिरि" अर्थात दुल्हन को दूल्हे के बांयीं ओर ही बिठाया जाता है... विशेषकर लाहुली सेहणु अर्थात (master of marriage ceremonies) इस बात पर विशेष ध्यान देते हैं जब ''व्यौहू व्योउथिरि ट्रिल्ड्रि" अर्थात दूल्हा दुल्हन का सार्वजनिक और औपचारिक प्रथम परिचय या वरण करवाते हैं..

3. सफ़ेद और काली मिट्टीः-- एक sharp contrast जो प्रकाश और अंधकार, खुशी और गमी का एक ग्राम्य रंग... विभिन्न जनजातियों में यही दो रंग और कभी कभार गेरुआ रंग भी प्रचलित हैं।

4. आदमी का चित्र :-- देव-दानव का मिला जुला एक प्रतीक चिन्ह... जिसे बहुत से लोग राजा बलि का चित्र ही मानते हैं... प्रश्न उठता है हमारे समाज का उनके साथ क्या संबंध है..? वे सुदूर दक्षिण के, हम धुर उत्तर के...!!

5. अन्य चित्र :- बहुत सारे दूसरे चित्र जो जोड़े भी जाते हैं और पूर्व के चित्रों से कुछ हटाये भी जाते हैं... इन प्रतीकों के फेर बदल से इन चित्रों के अर्थ, भाव, उद्देश्य सब बातों में बदलाव तो आना स्वाभाविक ही है। किन्तु किसी भी फेर बदल को न तो कोई रोक सकता है न ही रोकने की आवश्यकता है। क्योंकि पूजा पाठ शुद्ध रूप से वैयक्तिक मामला है। अतः बराज़ा हर कोई अपनी मर्ज़ी से बनाता है, उसे भला किसी परामर्श की क्या आवश्यकता? हाँ एक बात की जानकारी ज़रूर हो, वह है, बराज़ा से जुड़ी सांस्कृतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि. ..अन्यथा यह केवल मात्र एक सजावटी चित्र बन कर रह जाएगा...!! ऐसा लगता है कि बराज़ा बनाने वाले लाहुली बुजुर्ग चित्रकार ने इन रंगों और चित्र प्रतीकों को बहुत ही सोच समझ कर ही अपनाया होगा। बराज़ा चित्रण या अंकन या प्रतिष्ठापन की प्रथा पूरे लाहुली समाज में है... चाहे वे किसी भी क्षेत्र, भाषा, सम्प्रदाय, धर्म, जाति और समुदाय से संबंध रखते हों। कई बार ऐसा लगता है कि यह वह सूत्र है जो पूरे लाहुल को एक लड़ी में पिरोने की क्षमता रखता है। इससे निःसंदेह एकत्व और भ्रातृत्व एवं अपनत्व का भाव जागृत होता है। यह केवल मात्र आनुष्ठानिक चित्र या प्रतिष्ठापन की रस्म भर ही नहीं वरन यह लाहुल की धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक एकता एवं सामाजिक समरसता का अनूठा चिन्ह अथवा प्रतीक है। एक स्वस्थ समाज की एक स्वस्थ परम्परा... इसका प्रयोग उन विशिष्ट त्यौहारों और पर्वों के समय अवश्य होना ही चाहिए, जिन जिन त्यौहारों और पर्वों के साथ यह जुड़ी है। इसी मंगल कामना के साथ... सभी को ''ढाल जी।"

संपर्क :
मो. : 8278707772

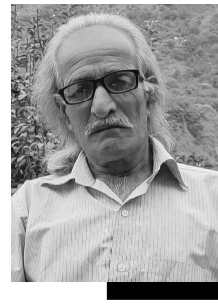

वह यात्रा एक जंग से कम नहीं होती थी

✍ लाल चंद ढिस्सा

अस्तित्व के लिए किये जाने वाले संघर्ष के एक अभिन्न अंग के रूप की जाने वाली लाहुल से कुल्लू की यात्रा का वृत्तांत अन्यत्र पहले दे चुका हूं, यहां कुल्लू से लाहुल वापसी की बात करता हूं। वह यात्रा, यात्रा नहीं एक जंग होती थी। अक्तूबर-नवम्बर के महीनों में अस्तित्व रक्षा के लिए कुल्लू पहुंच कर, पेट पालने का संघर्ष शुरू हो जाता था। ज़ाहिर है काम शारीरिक श्रम का ही होता था। उसमें पुरुषों का काम आम तौर पर दरिया-ए-ब्यास के किनारे पत्थर तोड़ना और उनको उनकी मंज़िल तक पीठ पर ढ़ोना था। काम साधारणतः ठेके पर होता था और ठेके दो तरह से तय होते थे। एक को कहते थे 'सैकड़ा' और दूसरा तरीका था 'चट्ठा'। पहले में मज़दूरी प्रति सैकड़े की दर तथा दूसरे में 'चट्ठा' यानि पत्थरों के विशेष माप व ढंग से बने ढेर के हिसाब से होता था। कभी-कभी दिहाड़ीदार मज़दूरी भी करते थे। लेकिन महिलाएं आमतौर पर दिहाड़ीदार मज़दूरी करती थी, जिसमें पत्थर ढोना, मिस्त्रियों के साथ कुली का काम आदि। सर्दियों में बारिश अधिक होने तथा अन्य कारणों से रोज़गार अनियमित था, कभी मिलता था तो कभी नहीं। इसलिए कहें कि पेट भरने का काम भर हो जाता तो गनीमत थी।

इस प्रकार का संघर्ष अक्तूबर-नवंबर से लेकर फरवरी के माह तक निरन्तर चलता था। फिर शुरू हो जाती थी लाहुल वापसी की तैयारियां। 'कुंस' या फागली बीती नहीं कि युवा एवं समर्थ पुरुषों का लाहुल जाने का सिलसिला शुरू हो जाता था। क्योंकि मार्च-अप्रैल के महीनों में लाहुल में बिजाई शुरू हो जाती थी। नौजवान किस्म के लोग अपने परिवार के सदस्यों जिनमें महिलाएं, वृद्ध तथा बच्चे शामिल थे, को पीछे कुल्लू में छोड़ कर लाहुल के लिए चले जाते थे और रोहतांग के भारी जोखिम को उठाते हुए लाहुल की तरफ रवाना होते थे। उनमें से कुछ भाग्यशाली तो सकुशल लाहुल अपने घरों तक पहुंच जाते थे लेकिन जो अधिक भाग्यशाली नहीं होते थे, वे रोहतांग में ठंड और बर्फ की बलि चढ़ जाते थे। हर वर्ष दर्जनों लोगों की बलि ले लेता था दर्रा-ए-रोहतांग और प्रकृति की शक्ति, जिसे आज लगभग जीत लिया गया है।

नौजवान लोग लाहुल में बिजाई के काम से निपट कर फिर अप्रैल माह में कुल्लू की तरफ निकल पड़ते थे ताकि अपने परिवार के शेष सदस्यों को लाहुल अपने घर ले जाएं। उधर कुल्लू में बच्चों के स्कूल के परिणाम भी आ चुके होते थे, लेकिन उन्होंने अगली कक्षा में प्रवेश नहीं लिया होता था, जाने के लिए एकदम तैयार होते थे। 28 अप्रैल को कुल्लू में 'पीपल जातर' का मेला लगता था, जिसे आज 'स्प्रिंग फेस्टीवल' के नाम से जाना जाता हैं। 29 अप्रैल को लगभग तमाम परिवार लाहुल जाने को तैयार हो जाते थे। तब कुल्लू से मनाली तक बस चलती थी। दिन में दो-चार बार। छोटी-छोटी पीले से रंग की बसें जिन्हें 'डाक गड्डि' कहते थे। उसके अतिरिक्त भी सूद साहब की बसें जो शायद सहकारी समिति की थीं भी चलती थी। जिनके नंबर मुझे आज भी याद हैं, 7016, 7017, 7018 आदि-आदि। लाहुल जाने वाले हर परिवार का एक-एक सदस्य बस में मनाली तक जाता था और सब सामान उसी के साथ भेज दिया जाता था। शेष लोग पीछे से पैदल निकलते थे, किराया बचाते हुए।

वापसी की यात्रा छह दिनों में समाप्त होती थी। क्योंकि वापसी पर

कहीं विश्राम करने या नहाने धोने के लिए नहीं रुका जाता था। लाहुल से कुल्लू आते हुए बशिष्ट या कलाथ रुक कर गरम पानी में नहाते थे। गरम पानी में इस प्रकार नहाने को हमारी भाषा (चिनलभाशे) में 'पाइन दुक्सी करबा' कहते हैं, जिसका अर्थ होता है 'पानी का सेक' देना। यह एक मान्य इलाज माना जाता है। बताया जाता है कि इस तरह से कई बीमारियों का इलाज होता है। जिसमें 'छुसेर' की बीमारी भी शामिल हैं। 'छुसेर' भोटी भाषा का शब्द है जिनका अर्थ है पानी का दर्द।

पहले दिन पूरा समूह कुल्लू से चलता था और 'जेंइडि' आज के पतलीकुहल में रात काटता था। क्योंकि यह स्थान कुल्लू और मनाली के मध्य में लगभग बराबर की दूरी पर स्थित है और लकड़ी, पानी और रुकने के लिए सुविधाजनक भी।

दूसरे दिन सुबह जल्दी उठकर चल देते थे और कलाथ जाकर सुबह का खाना बनाकर खाते थे और रात को मनाली या तो सराय में या 'गङ्टुर हाटि' (गंगटू की हट्टी) या फिर किसी बड़े पेड़ के नीचे डेरा जमा लेते थे।

तीसरे दिन मनाली से चलते थे रास्ते में कुडुंग में खाना खाकर रात के लिए राहला में रोहतांग की शुरुआती चढ़ाई पर बनी गुफाओं की शरण लेते थे। यहां से क्योंकि रोहतांग की शुरुआत भी होती थी इसलिए ठंड भी बढ़ जाती थी। इसलिए गुफाओं की शरण लेना भी अनिवार्य हो जाता था। वे गुफाएं, जिन्हें हमारी बोली में 'कुढ़' कहते हैं, कई वर्ग की थी और उसी आधार पर उनके नाम दिए गए थे। पहली 'कुढ़' (गुफा) का नाम था 'गुनफुग' भोटी शब्द, जिसका अर्थ था सर्दियों की गुफा, जिसका सीधा अर्थ था ऐसी गुफा जिसमें सर्दियों में भी रहा जा सकता था। उस गुफा की बनावट ही ऐसी थी कि वह काफी गर्म किस्म की थी यानि रोहतांग की ठंडी हवाओं का असर बहुत कम था। वह उस रास्ते की सबसे सुरक्षित व सुविधाजनक गुफा होती थी। यहां रुकने का प्रमाण आज भी मेरे दाएं घुटने पर ज़ख्म के निशान के रूप में विद्यमान है। घटना तब की है जब एक बार मैं अपने समूह के साथ लाहुल जा रहा था और हमारे समूह ने यहां पड़ाव डाला हुआ था। मैं अपने साथियों के साथ खेलते हुए गिर गया था, मेरे घुटने पर काफी गहरी चोट लगी थी और खून काफी निकला था। अगले दिन लम्बी यात्रा थी, उपचार के नाम पर खून निकलने को रोकने के लिए कपड़ा जला कर उसकी राख चोट पर डाल कर बांध दिया गया था।

गुफा के नज़दीक ही पत्थरों का एक चबूतरा बना होता था जिसके एक कौने पर एक बिल था। बताया जाता था कि इस बिल से 'नाग देवता' बाहर आते थे और चढ़ाये गए दूध आदि का सेवन करते थे। उस स्थान को 'नागो ड्वार' के नाम से जाना जाता था। दूसरी गुफा जिसे नाम दिया गया था 'पाइंर कुढ़' यानि पानी वाली गुफा, उस गुफा में पीने का पानी

निकट ही पड़ता था। तीसरी गुफ़ा जो कि ब्यास नाले के किनारे थी और जिसे नाम दिया गया था 'र्‌हङ्फुग्' यानि कि घोड़ों की गुफ़ा शायद घोड़ों को इसमें रखा जाता होगा। यह बहुत बड़ी गुफ़ा है और वर्तमान की मढ़ी के ठीक नीचे उतराई में ब्यास नाले के ऊपर पड़ती है और आज लाहुल के रास्ते में 'सात मोड़ों' से दिखाई पड़ती है। बताया जाता है कि इस गुफ़ा में लोगों को कुछ हथियार आदि भी मिले हैं, अनुमान लगाया जाता है कि 'आंग्लो-सिख' युद्ध में सिख सैनिकों ने इसे प्रयोग किया था। गुफ़ा के सामने ब्यास नाले के दूसरी तरफ एक बड़ी सी चट्टान, जो आज भी खड़ी है जिसका आकार उस समय के लाहुल में पानी ढोने के लकड़ी के वर्तन 'छुज़ोम' सा है। जिसे 'भिन्एर छुज़ोम' कहते थे। यहां यह बता दूं कि पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में हर अजीबो गरीब चीज़ों को पांडवों के साथ जोड़ कर देखने का रिवाज़ रहा है।

तीसरे दिन का यह पड़ाव बहुत महत्वपूर्ण होता था। क्योंकि अगले दिन इस यात्रा का सबसे कठिन और चुनौतीपूर्ण चरण शुरू होता था, रोहतांग दर्रा पार करना। अब यहां अन्य अवरोधों के अतिरिक्त एक मुख्य अवरोध था मौसम। मौसम यदि खराब हो जाये तो इन गुफ़ाओं में कई-2 दिन रुकना पड़ जाता था। जिसका परिणाम सदा ही बुरा होता था, मनाली से सीमित मात्रा में खाने पीने के सामान को लेकर चले हुए होते थे ऐसे में यदि मौसम खराब हो जाये तो खाद्य पदार्थ की कमी हो जाती थी। यद्यपि यदि अधिक दिन यहां फंस गए तो यहां पर खाने की वस्तुओं की राशनिंग की जाती थी। खाने में खाना कम होता था पीना अधिक। यानि खाने में पानी अधिक डाला जाता था। फिर जब मौसम साफ होता था तो समूह के 'मुसाफ़ुरों' (युवा एवं समर्थ) लोगों को मनाली भेजा जाता था और वे वहां से खाने की सामग्री लेकर शाम तक वापस पहुंच जाते थे।

चौथे दिन सुबह-सुबह ही रोहतांग की चढ़ाई चढ़ना शुरू कर दिया जाता था। हर समर्थ वयस्क की पीठ पर 'किल्टे' (बांस से बने) होते थे। महिलाओं के 'किल्टे' छोटे आकार तथा पुरुषों के बड़े आकार के होते थे। उन 'किल्टों' में रास्ते में खाने पीने का सामान, बिस्तर, कपड़े, बर्तन के अतिरिक्त कुल्लू से ले जाये गये उपहार जिसे 'कोशड़ि' कहते हैं, आदि होते थे। मर्दों के बड़े-बड़े किल्टों के अंदर उनके छोटे बच्चे भी डाले जाते थे। ताकि उन्हें ठंड न लग जाये। समूह जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता था, थकान और प्राकृतिक शक्तियों के प्रकोप से बचने के उद्देश्य से 'जय माता' और 'राजा घेपङ्की जय' के जयकारें लगाने की आवाज़ें अधिक तेज़ व बुलंद होती जाती थी और यह क्रम रोहतांग दर्रा के शिखर तक लगातार चलता था।

दादा जी बताते थे कि रोहतांग दर्रा (कुएर धार) में सिर्फ 'राजा घेपन' के या माता के जयकारे लगाए जाते हैं। जैसे कि मणिमहेश के रास्ते में सिर्फ शिव शंकर के ही जयकारे लगाये जाते थे। वह एक शिष्टाचार था या कि कोई राजनैतिक प्रभुत्व का मर्यादा प्रमाण? रोहतांग के शिखर पर पहुंचने पर सबसे पहला स्थान आता है 'घेपुनेर ठेल' यहां से घेपङ देवता को नमन किया जाता था। रोहतांग दर्रे के दूसरे किनारे 'हरच़ा गड्ड' पर पहुंच कर दिन का खाना खाया जाता था यहां से दर्रे की उतराई आरंभ हो जाती थी। 'हरच़ा गड्ड' का रूट सर्दियों में प्रयोग किया जाता था। यहां पहुंचने के बाद लोग चैन की सांस लेते थे। हरच़ा गड्ड' 'थेंबेचे़' वर्तमान का 'रक्शिढांक' और डोहरनी मोड़ के बीच में स्थित है और रोहतांग टॉप पर एक संकरे द्वार या गली के रूप में खुलता है। सर्दियों का यह सबसे छोटा, सुगम एवं सुरक्षित रास्ता माना जाता है। फरवरी-मार्च के महीनों में रोहतांग पार करने वाले इसी रास्ते से सीधे चंद्रा नदी के ऊपर पहुंचते हैं। उस समय लाहुल में बर्फ बहुत पड़ती थी जिसके कारण नदी का पानी जम जाता था और लोग दरिया के ऊपर से चलते थे, यह सिलसिला कम-अधिक 'सङ्म' (संगम, सुमदो) तक चलता था। इस रास्ते को आज पर्वतारोहण के बचाव दल के लोग प्रयोग कर रहे हैं। गर्मियों का पैदल रूट वर्तमान कोकसर से सीधा रक्शिढांक निकलता था। हम रात होते-होते 'ग्रम्फुक' आज के कोकसर

पहुंच जाते थे। तब वहां कुछ ही घर होते थे, उन घरों में रात को शरण लेनी होती थी। इसलिए उनसे खरीद कर पुरुष 'च़क्थि' (नशीला पेय) पीते थे। इससे मालिक मकान की कुछ आय हो जाती थी तो मुसाफिरों को शरणस्थल की प्राप्ति और रात कुछ बचा हुआ खाकर गुज़ार दी जाती थी। दूसरे दिन यदि मौसम साफ हुआ तो वहां से चल देते थे। लेकिन आमतौर पर इतने भाग्यशाली नहीं होते थे। बर्फबारी होने पर वहीं रुकना होता था और वह एक बहुत ही तकलीफ देह स्थिति होती थी। दशा कितनी खराब होती थी उसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि एक बार तो मेरी एक रिश्तेदार महिला ने खुले आसमान के नीचे, बर्फबारी के बीच में एक बच्चे को जन्म दिया था। बच्चा जो आज भी एक स्वस्थ युवक है, जबकि हमारी रिश्तेदार महिला उसके कई सालों बाद अप्राकृतिक मौत का शिकार हो गई। इस प्रकार की कठिन परिस्थितियों में जीवन संघर्ष चलता था।

पांचवें दिन सुबह बिना कुछ खाये-पिये जल्दी चल पड़ते थे। हां! यहां से एक अन्य समस्या शुरू हो जाती थी और वह थी ताज़ी सफेद बर्फ का आँखों में लगना, जिसे हमारी बोली में 'हिंवाखुर' कहते हैं, जिसमें आँखों में अत्यधिक जलन होती थी और आँखों से लगातार पानी बहता था। इसका कारण था रोहतांग में बिना चश्मे के नंगी आँखों से चलना।

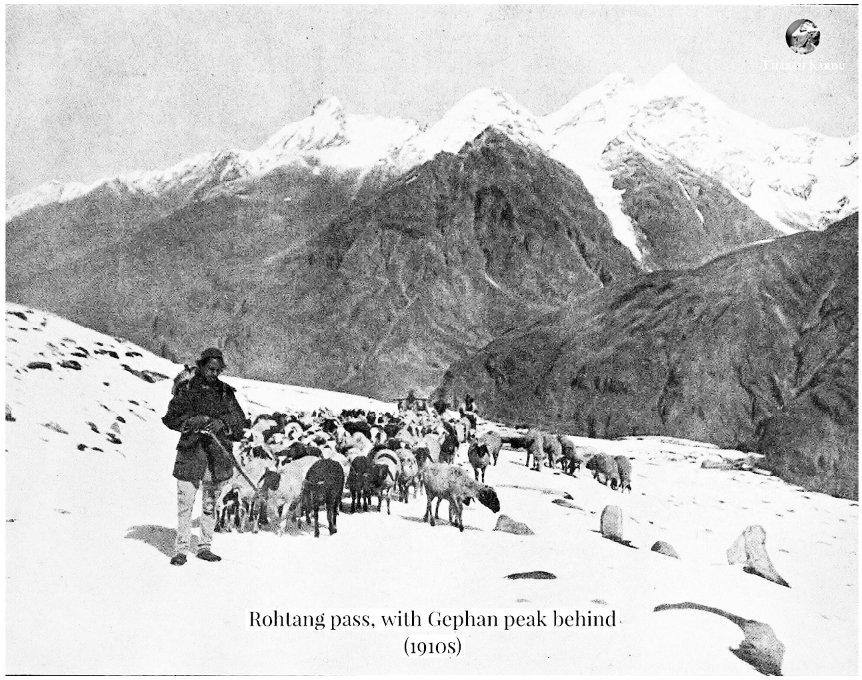
Rohtang pass, with Gephan peak behind
(1910s)

अब हम रंगीन चश्मे तो खरीद नहीं सकते थे। हां! कुछ जुगाडु लोग पारदर्शी रंगीन कागज़ से कम-अधिक काम चला लेते थे। किसी तरह गिरते-पड़ते, रोते-चीखते चलना ही होता था। उस दिन सुबह का खाना 'स्नस्नेन' (शाशिन), घेपङ्के गांव और 'ख्गलिङ' (सिस्सू) के बीच के नाले जिसे हमारी बोली में 'गुधुमगड़' कहते हैं, जहां हिमाचल प्रदेश बिजली बोर्ड का एक परित्यक्त बिजली घर है, में शाशिन वाले किनारे में आकर बनाते थे। यहां पर लोग पहली बार मसूर की दाल और चावल का आनंद लेते थे। रात को 'तिह्नन' (गोंधला) पहुंचते थे और गढ़ के करीब में डेरा डालते थे।

छटे दिन गोंधला से चलते थे और दालंग मैदान होते हुए एक चढ़ाई और चढ़ते थे। जिसे 'ग्रङ्ओ' कहते थे। दालंग गांव के अंतिम छोर पर जहां से एक नये क्षेत्र का आरम्भ होता है, पर मिट्टी का एक बड़ा सा ढेर है जिसे 'भिन्एर थोर्च़ा' कहते थे। दालंग मैदान के अंत से चढ़ाई शुरू होती थी, जहां आज के दिन एक स्टोन क्रशर लगा हुआ है और जो दूसरी तरफ 'छुरपक' जाकर उतरा जाता था। सर्दियों में चन्द्रा नदी का पानी जम जाता था इसलिए उस समय लोग दरिया के ऊपर से चलते थे। इस क्षेत्र को 'सिक्तिबली' कहते थे। आज के दिन इस प्रकार के पुराने स्थानों के नाम या तो बदल दिए गए हैं या चलन से बाहर हो गए हैं। इस रास्ते में पहली बार लाहुल के एक जंगली साग 'प्रेउ-एर शाग' इकट्ठा किया जाता था और फिर उसे ले जाकर तांदी गांव के ऊपर 'योह्न' यानि पानी के पारम्परिक टैंक के पास सुबह का खाना बनाया जाता था और 'प्रेउ' के साग का स्वाद लिया जाता था। अब आगे का क्षेत्र अपना क्षेत्र होता

था। जहां अपने लोग, रिश्तेदार आदि मिलते थे। लेकिन रास्ते में किसी के घर नहीं रुका जाता था और सीधा अपने घर जाहलमा। आराम और संतुष्टि की अद्‌भुत स्थिति। रात 'शागुण' और आवभगत में कट जाती थी और थके हारे चैन की सांस लेकर अच्छे से सो जाते थे।

सुबह से बड़ों की औपचारिकताएं आरंभ हो जाती थी। रिश्तेदार और गांव वाले भी 'भूड़ियारू' व 'कुएर घ्राख' से कई तरह की उम्मीदें रखते थे तो कुल्लू से गए लोग भी अपने कुल्लू से आए होने का एहसास करवाने के लिए उनमें उपहार आदि बांटते थे, जो वे बड़ी कठिनाई से सारी सर्दियों में अपना पेट काटकर बचाए रुपयों से खरीदे तथा पीठ पर ढोकर लाये गये होते थे। उन उपहारों को 'कोशड़ि' कहते थे, उसमें घर के लोगों के लिए कपड़े जूते आदि तथा अन्य रिश्तेदारों के लिए नहाने के साबुन, मिठाई (इलाइची दाना आदि) गरी, तम्बाकू (गुड़ाकू जो कि गुड़ मिलाकर तथा 'फीका' बिना गुड़ बना होता था) बांटते थे। इस बहाने रिश्तेदारों और गांव वालों के मेहमान बनते थे।

उधर हम लोगों को एक आध दिन के आराम के बाद स्कूल में दाखिल करवा दिया जाता था। अब हम लोग कुल्लू से गए होते थे तो हमारी शान कुछ अलग सी होती थी। कक्षा के सब साथी हमें उत्सुकता से देखते थे और कुल्लू की बातें पूछते थे। हमारी स्थिति विशिष्टों की होती थी। उसके अपने कारण भी थे, एक तो हम नए-नए कपड़े आदि पहने होते थे। उसके अतिरिक्त कुल्लू से अपने साथ स्लेट पर लिखने के लिए स्लेटी यानि मट्टी की पेंसिल और तख्ती पर लिखने के लिए कलम आदि लिये होते थे। कलम का तो हम व्यापार भी करते थे। उस सबके अतिरिक्त हमारे पास नई-नई पुस्तकें होती थी। विशेष कर सफलता की कुंजी भी हमारे पास होती थी। जिसकी मदद से हम हर प्रश्न का उत्तर निकाल लेते थे। इसलिए हमारी पूछ होती थी।

यहां कुछ स्थानों के नामों के बारे बताना आवश्यक लगता है जिनको आज भुला दिया गया है या उन नामों से नहीं जाना जाता बल्कि नये नाम दिये गये हैं। उनमें पहला स्थान नाम है आज का 'ग्रम्फुक' जो कोकसर गांव ठीक सामने चंद्रा नदी के पार है तब उस स्थान को 'शिबरहकी' कहते थे। आज का कोकसर जिसे तब 'ग्रम्फुक' के नाम से जानते थे, कुल्लू और लाहुल आने जाने वालों का शरणस्थल था। ग्रम्फुक से आगे (लाहुल की तरफ) जाने पर एक स्थान आता था, जिसे 'चिगा-बे' कहते थे। लाहुल के पट्टन घाटी की बोली में इस शब्द का अर्थ है काठीनुमा बड़ा पत्थर। 'चिगा' यानि घोड़े की काठी और 'बे' का मतलब बड़ा पत्थर। इस स्थान पर सड़क से नीचे समतल जगह पर एक बड़ा पत्थर था जिसे देखने पर लगता था जैसे घोड़े की काठी को उल्टा करके रखा गया हो। उस पत्थर की बनावट ऐसी थी कि उसके दोनों तरफ आश्रय लिया जा सकता था। उसके दोनों किनारे कोकसर और उसकी विपरीत दिशा में काफी बढ़े हुए थे। उस पत्थर के बारे में एक कहानी प्रचलित थी कि एक बार एक व्यक्ति लाहुल से अपने वृद्ध पिता (जो कुल्लू में था) को लेने के लिए चला। उधर उसके पिता जी भी लाहुल के लिए निकल चुके थे। बीच में मौसम खराब हो गया और उन दोनों ने उस पत्थर के विपरीत दिशा में शरण ली। अत्यधिक बर्फबारी हुई और दोनों की मौत वहां उसी पत्थर के अगल-बगल में हो गई। इसी के चलते वह स्थान प्रसिद्ध हुआ। उसके थोड़े आगे चलने पर एक स्थान आता है जिसे तब 'गोचाप्रङ' कहते थे। इस शब्द का अर्थ चट्टान के नीचे होता है। नाम शायद इसलिए पड़ा क्योंकि वहां पर रास्ता चट्टान के नीचे से 'चन्द्रा' नदी से ठीक लगता हुआ था। आज इस स्थान पर चट्टान को काट कर रास्ता बनाया गया है और यह स्थान आज के 'फुमण नाला' के पास है। इसी स्थान पर लाहुल में पहली बार मैंने जीप देखी थी।

(मेरी अप्रकाशित पुस्तक 'मेरी जीवन यात्रा' के एक अध्याय से।)

सम्पर्क :
मो. : 9418577886

राजा घेपङ की 1970 की मलाणा यात्रा

✍ प्रेम चंद कटोच

सन 1970! यह साल कृषि गतिविधियों के लिए लाहुल वालों के लिए काफी कष्टदायक रहा था। क्योंकि सभी क्षेत्रों में सूखे की स्थिति बनी हुई थी। बारिश होने का नाम नहीं ले रही थी। फसल सूखने लगी थी। जो थोड़ी बहुत फसल थी, उस पर भी कीड़ों का प्रकोप। मैं उस समय 18 वर्ष का नवयुवक था। दसवीं पास करके घर में बेरोज़गार पड़ा था। सूखे के प्रकोप से निजात पाने के लिए लाहुल के हर क्षेत्र में अपने-अपने इष्ट देवों से प्रार्थनाएं की जा रही थी। परन्तु कुछ असर नहीं होने पर लोग राजा घेपङ की शरण में गए। राजा घेपङ से शाशिन में पूछ डाली गई, तो राजा जी का फरमान हुआ कि उन्हें उनके भाई जमलू से मिलाने मलाणा ले जाया जाए। इस फरमान से 14 कोठी को अवगत करवाया गया तथा मीटिंग हुई। मीटिंग में निर्णय हुआ कि तमाम 14 कोठी से दो दो, तीन तीन लोग मनोनीत किये जायें। कारकूनों के अतिरिक्त सिस्सू से हम तीन लोग स्वेच्छा से तैयार हुए, जिन में मेरे अतिरिक्त श्री लक्ष्मण जो इस समय मेरे जीजा हैं तथा मेरे हमउम्र हैं और बिशन ठाकुर जो ग्रुप में सबसे छोटे थे जो उस समय 16 साल का था। पटन से हमारी उम्र के पलजोर टेलङ्बा और बीर सिंह पुजारा मार्बल से तथा प्रेमनाथ मालङ से थे। बाकी सभी हमारे से बड़ी उम्र के थे। घेपङ के पुजारी श्री रामचंद मास्टर जी थे, गूर श्री छोपल सिस्सु से तथा छेतुच़ गोंदला से जो शायद मलाणा से वापसी पर शामिल हुए थे। तथा मां हिडिम्बा के गूर भी थे। हिडिम्बा के पुजारी किशन यम्बा थे। बांसुरी बादक के रूप में एक चोलु पहने बुजुर्ग थे जिनका नाम शायद खोखु था जो मलाणा नहीं पहुंच पाए थे। एक वरि गूर थे। बाकी के नाम याद नहीं। ये लगभग 35, 40 लोगों का ग्रुप था शायद। फा श्री वङ्दन जी थे। यह शायद मध्य जुलाई का समय था, ठीक याद नहीं। घेपङ से पूछ डालकर यह निर्णय हुआ कि रथ नहीं ले जाया जाएगा। केवल घेपङ का छत्र ले जाया जाएगा। वापसी पर रथ मलाणा से तैयार करके लाया जाएगा। करीब 50, 55 भेड़ों का भी बलि के लिए इंतज़ाम किया गया था। जिसके लिए एक पुहाल अलग से ले जाया गया था। शाशिन से प्रस्थान से पहले दिन माता हिडिम्बा तथा अठारह नाग का अपने कारकूनों के साथ शाशिन में स्वागत किया गया। तथा दूसरे दिन से यात्रा आरम्भ हो गई। पहला पड़ाव खोखसर का था। जहां रात को गांव वालों ने जागरा दिया। दूसरे दिन जब रोहतांग जहां आजकल छोरतेन बना है, उससे थोड़ा नीचे पहुंचे तो वहां बलि दी गई। वहां पर वरि गूर को शिवजी का खेल आया। और कहा कि यह यात्रा बिल्कुल सही रहेगी, मैं तुम्हारे साथ हूँ। वहां से चले तो मढ़ी तथा राहला में जो व्यवसायी वहां थे उन्होंने राजा जी का स्वागत हर्षोल्लास के साथ किया तथा दूसरा पड़ाव कुलंग गांव था। कुलंग में जमलू देवता का मंदिर भी है। जब राजा जी कुलंग पहुंचे तो वहां घेपङके स्वागत के लिए देवरथ सहित लोगों का हजूम मौजूद था। देवों के मिलन के समय हम युवाओं ने कुछ अति उत्साह में अपने तरफ से भी जोर लगा दिया जो हमारे बुजुर्गों को बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। और हम पर कुछ नाराज़ से हो गए। उनका नाराज़ होना बिल्कुल वाजिब था। और हमे सलीके से व्यवहार करने की नसीहत भी दी। बहरहाल, रात को सभी लोगों को गांव में खिन्डु कहकर दो दो तीन तीन करके हर घर में ले गए। सुबह चाय नाश्ता करने के उपरांत वहां से चले जो अगला पड़ाव डुंगरी हिडिम्बा का मंदिर था। फिर उसके बाद हमें राजा जी का छत्र उठाने नहीं दिया गया यह कहकर कि तुम ओवरएक्ट कर रहे हो। उसके बाद राजा जी के छत्र उठाने की ज़िम्मेवारी वरि गूर को ही दिया गया। क्योंकि वे बहुत ही सच्चे पक्के इंसान थे और बहुत ही ईमानदार तथा देवता के प्रति बहुत ही श्रद्धा रखने वाले। फिर वहां से डुंगरी के लिए चले तथा लगभग बाहंग पहुंचने वाले थे कि वरि गूर एकदम पीछे मुड़े तथा लगभग दौड़ते हुए वापिस हो गए। सभी

हैरान परेशान हो गए कि राजा जी कहाँ को चल पड़े। हम लोग भी पीछे पीछे भागे तो कुछ दूर आगे जाकर एकदम दरिया की तरफ मुड़ गए जहां पर एक लकड़ी की पुलिया बनी हुई थी। उस पुलिया को पार करके राजा जी घुशाल गांव में सीधा एक मंदिर में पहुंच गए। जबकि वरि गूर कभी घुशाल गांव में उससे पहले नहीं गए थे। फिर वहां गांव के लोग भी इकठ्ठे होने लग गए। पूछने पर पता चला कि यह नाग देवता का मंदिर है। और बुजुर्ग कहने लगे कि यहां तो राजा जी ने आना ही था। पहले भी यहां आए हैं। थोड़ा समय गुज़ारने के पश्चात वहां से डुंगरी को चले। मनालसू नाले में पहुंचने पर राजा जी फिर वापिस मुड़े तथा ओल्ड मनाली गांव की तरफ चल पड़े। परन्तु 15, 20 कदम जाने के पश्चात फिर मुड गए तथा सीधा डुंगरी मंदिर जाकर रुके।

रात को खाना खाने के पश्चात सोने के लिए सभी हरियान को खिन्डु में डुंगरी गांव में बांट कर ले गए। दूसरे दिन हिडिम्बा माता के मंदिर में पूजा की गई। गूर के खेल हुए। जिसमें घेपङ के गूर और जसरथ हिडिम्बा के गूर ने भाग लिया। डुंगरी गूर भी खेले थे शायद मुझे याद नहीं रहा। ये सभी पूजा अर्चना के बाद आगे के लिए प्रस्थान किया। क्योंकि देवता के जाने के रास्ते का तथा कहाँ कहाँ उनका पड़ाव होगा, इसके बारे किसी को कुछ पता नहीं था सो यह निर्णय हुआ कि देवता स्वयं अपनी इच्छा से जहां जहां जाये वहीं ले जाएंगे। घेपङ का छत्र वरि गूर जी ने उठाया और मनाली की ओर चल पड़े। लोगों का हजूम जगह-जगह इकठे हुए थे। लोगों में बहुत जिज्ञासा थी, क्योंकि कभी राजा जी की यात्रा उन्होंने नहीं देखी थी। लोगों में राजा जी के प्रति आस्था भी बहुत थी। वरि गूर राजा जी को लेकर बाज़ार में से होते हुए सीधा सेठ पंछी राम जी के मकान में पहुंचे तथा लकड़ी के बने पौड़ी पर सीधा चढ़ने लग गए। उस समय उनके मकान के ऊपरी मंज़िल के लिए लकड़ी की पौड़ी हुआ करती थी। जैसे ही ऊपर चढ़ने लगे तो सेठ जी एक चादर लेकर उतरे और उन्होंने देवता को चादर चढ़ाया और पैसे भी दिए। शायद सौ रुपये दिए थे और हाथ जोड़ कर आशीर्वाद लिया। फिर वहां से लेफ्ट बैंक का रास्ता अपनाया। लाहुल के लोगों ने जगह जगह कलछोर का प्रबंध किया था। बाकियों का मुझे याद नहीं, पुरद निवासी अमरचंद जी जो मेरे गुरु रहे हैं, उन्होंने शामीनाला स्थित घर में कलछोर का प्रोग्राम रखा था। वहां से चले तो खखनाल में देवता जी स्वयं ही कार्तिकेय के मंदिर में पहुंच गए और रात के विश्राम का प्रबंध वहीं किया गया। गांव वालों ने खाने पीने और हारियान के रहने का प्रबंध किया। दूसरे दिन यात्रा फिर आरम्भ हुई। अगले पड़ाव के बारे कुछ पता नहीं था। चलते-चलते हम जब मंसारी में पहुंचे तो देवता एकदम पीछे मुड़े और लगभग दौड़ते हुए सोइल के रास्ते में चल पड़े और सभी लोगों को पीछे छोड़ दिया। हम युवा लोग उनके पीछे-पीछे भागे और देवता जी सीधे जाकर एक मंदिर के प्रांगण में रुक गए। थोड़ी देर में सभी लोग वहां हांफते हुए पहुंचे और तब तक स्थानीय लोग भी एकत्रित हो गए। फिर बताया गया कि यह जमलू देवता का मंदिर है। उस रोज़ वहीं सोइल में ही राजा जी का ठहराव हुआ

राजा घेपङ चचोगा मनाली में, 2008

और स्थानीय लोगों ने बहुत आवभगत की। रात को सभी हारियानों को खिन्दु में गांव में बांटकर ले गए। दूसरे दिन सुबह का चाय नाश्ता करके वहां से प्रस्थान किया। जब छाकी नाले में पहुचे तो यह तो मालूम था कि यहां से चढ़ना है तथा शाम को आखरी गांव पुलंग पहुंचना है जहां से दूसरे दिन का रास्ता नज़दीक रहे। परंतु रास्ते का किसी को पता नहीं था इसलिए यह देवता पर ही छोड़ दिया गया कि कौन सा रास्ता अपनाते हैं। फिर छाकी नाले से देवता ने रास्ता पकड़ा और हम पीछे पीछे चले। कुछ दूर चलने के बाद वरि गूर जिन्होंने देवता उठाया था, लगभग दौड़ते हुए चल पड़े। हम युवा लोग भी पीछे दौड़े। और फिर सीधा जाकर एक मंदिर के प्रांगण में रुक गए। यह रुमसू गांव था। मंदिर के दरवाज़े पर ताला लगा हुआ था। देवता ने जिस डंडे पर छत्र लगा था, से कई ठोकरें दरवाज़े पर मारी, और थोड़ी देर में मंदिर का पुजारी भी आया और स्थानीय लोग भी इकठ्ठे हो गए। तब मालूम पड़ा कि यह जमलू का मंदिर है। वहां थोड़ी देर प्रांगण में रुकवाया और चाय पानी करवाया। फिर वहां से पुलंग के लिए चले। यह मलाणा जाने के लिए अंतिम गांव है। रात को इस गांव में रुके। खाना सभी को इकठे खिलाया और रात को सोने गांव में बांट कर ले गए। दूसरे दिन चाय नाश्ता जल्दी करके मलाणा की ओर चले तो एक रोचक घटना घटी। इस गांव से ऊपर जंगल शुरू हो जाता है। जंगल में से एक रास्ता सा बना हुआ था, उस पर चलते रहे। सबसे आगे द्रागड़ी (नगाड़ा) चलता है। सिस्सु के ही ज्ञानदास निशाण उठाये हुए थे, जो सबसे आगे थे, फिर रास्ता भटक गए। सभी ने राजा जी से प्रार्थना की कि हमें रास्ता दिखाए। इतने में राजा जी ने लगभग दौड़ते हुए जाकर एक ज़ोर की ठोकर ज्ञानदास को मारी और फिर स्वयं आगे होकर सही रास्ता दिखाया। सभी लोग हैरान भी हुए और ज्ञानदास को ठोकर मारने पर सभी को हंसी भी आई। वहां से आगे निकले तो दो लोगों को आगे भेजा। क्योंकि यह पता लगा था कि चंद्रखणी जोत में गुज्जर अपने माल मवेशियों के साथ रहते हैं। इसलिये सभी को दूध का इंतज़ाम किया जा सके। और साथ लिए गए रोटी खाया जाए। फिर चंद्रखणी जोत के थोड़ा नीचे पहुंचे, जहां गुज्जर थे और दूध का इंतजाम तो किया गया था। मगर एक और रोचक घटना हुई। गुज्जर ने बताया कि उसने तो सुबह ही दूध दूह कर बेचने के लिए भेज भी दिया था। मगर एक भैंस ने दूध ही नहीं दिया था कुछ देर बाद उसने फिर दुहने की कोशिश की तो भैंस ने खूब दूध दिया लगभग एक पीपा दूध उसके पास था। और गुज्जर ने देखा कि देवता आ रहा और दूध की मांग है, उसके दिल में देवता के प्रति खूब आस्था हो गई और कहा कि शायद यह देवता के ही आदेश थे। गुज्जरों ने फिर दूध के पैसे भी नहीं लिए।

वहां से चलकर हम चंद्रखणी जोत के टॉप पर पहुंचे तो सभी आराम करने लग गए और कुछ लोगों ने कुछ खाना पीना शुरू कर दिया। उसके बाद जब टॉप पर भट्ट द्वारा बकरे की बलि देनी थी तो पानी डालने के वावजूद बकरा फुर्सि (शरीर को ज़ोर से हिलाना) नहीं किया। काफी देर के बाद जैसे तैसे बलि तो दे दी। मगर गूर ने कहा कि देवता नाराज़ हो गया क्योंकि यहां पहुंचते ही बलि देनी थी, मगर आपलोग आराम करने और खाने पीने में मस्त हो गए। फिर जैसे तैसे देवता से माफी मांग कर आगे की यात्रा शुरू कर दी। यहां से बिल्कुल खड़ी उतराई थी। और मलाणा तक का रास्ता काफी लंबा लगा। नीचे गांव दिखने लगा तो जान में जान आयी। उस समय यह गांव बिल्कुल एक दूसरे से सटे हुए घर थे पुरानी शैली में बनी स्लेट पोश मकान थे बिल्कुल एक दूसरे से लगभग जुड़े हुए। गांव से करीब आधा कि० मी० पहले एक टपरु सा बना हुआ था, उसके आगे चमड़े के जूते और बेल्ट ले जाना वर्जित था। यह बात हमें पहले ही मालूम हो गई थी इसलिए हमने मनाली से ही फ्लीट जूते ले लिए थे। परन्तु जिन्होंने चमड़े के जूते पहने थे, उन्हें उस टपरु के पास उतारने पड़ गए थे। अचरज की बात यह कि निशाण को ले जाने में कोई मनाही नहीं थी जबकि उसमें तो असली चमड़ा लगा होता है। खैर वहां से जब आगे गांव की तरफ गए तो जमलू का पूरा अमला राजा जी के स्वागत के लिए मौजूद था। जमलू देवता का रथ नहीं होता। उसका पूरा गाजा बाजा डिस्प्ले किया जाता है। वही रथ माना जाता है। राजा जी को देवता जमलू के सौह में बिठाया गया। तथा लोगों को खिन्दु के लिए गांव में ले जाया गया। उस वक्त गांव में इतनी गरीबी थी कि एक-एक घर में तीन-तीन, चार-चार परिवार अलग चूल्हे लगाकर रहते थे। लोगों के कपड़ों पर टल्ली पर टल्ली लगी हुई थी। गांव में गंदगी भी उस समय बहुत थी। क्योंकि शौच भी खुले में जहां-तहां किये होते थे। परंतु वे हम लोगों से छूने से परहेज़ करते थे। औरतें तो हम लोगों की छाया

से भी छूने से परहेज़ करती थीं। उस समय वहां के लोगों में मासूमियत बहुत थी। जमलू देवता में आस्था भी बहुत थी और डर भी। हाँ, राजा घेपङ के प्रति बहुत अच्छे भाव नहीं थे, परंतु डर का भाव अवश्य था। दूसरे दिन तय हुआ कि देवता का दार लाया जाए। तो कुछ लोग स्थानीय लोगों को साथ लेकर दार लाने के लिए जंगल गए। ऐसा कहा जा रहा था कि घेपङ के नाम का जंगल है, वहां से दार लाना है, मैं स्वयं नहीं गया था, इसलिए मैं इस बारे कुछ कह नहीं सकता। दार लाया गया और उसकी छिलाई बगैरा करके तैयार किया गया। फिर बलि देकर दार पर रक्त छिड़काया गया और फिर देवरथ तैयार किया गया। क्योंकि देवता को सजाने के लिए कपड़े कम थे तो सिर भी छोटा रहा और दार भी पूरी तरह से ढक नहीं पाया था। रात को जमलू देवता की तरफ से जागरा हुआ। जागरे में सिड्डू के साथ मीट दिया गया। जो युवा वर्ग को बिल्कुल पसंद नहीं आया। दूसरे रोज़ देव गूरों के खेल हुए। घेपङ के गूर ने देववाणी में कहा कि मुझे सिंहमुखी नरसिंगा दिया जाए जो कदाचित उनकी पुरानी मांग थी, ऐसा कहा जाता है। इसके जवाब में जमलू के गूर ने अपनी थड़ी में बैठ कर देववाणी की कि जो राजा जी की मांग है वह पूरी की जाए। जमलू के गूर का खेल बहुत देर तक चलता रहता है। जैसे लोग एक दूसरे से बात करते हुए सवाल जवाब करते हैं, वैसे ही सवाल करने पर काफी देर तक जवाब देते रहते हैं। ऐसा हमने पहली बार देखा। अन्यथा हमारे गूरों की देववाणी बिल्कुल संक्षिप्त होती है। जमलू के कारकून एक अन्य साधारण नरसिंगा देने के लिए तैयार हुए परन्तु घेपङ और घेपङ के कारकूनों को वह मंजूर नहीं था। कहा जाता है कि जिस नरसिंगा की मांग घेपङ करते हैं, वह शायद चांदी का है और सिंह मुख बना है, जिसमें जीभ भी है और नरसिंगा बजाने पर कहते हैं कि कई किस्म की आवाज़ें निकलती हैं। परंतु पता नहीं इसमें कितनी सच्चाई है। और यह भी कहा जाता है कि सुदूर अतीत में जमलू ने यह नरसिंगा देने का वायदा किया था। मगर मलाणा वाले इसे बिल्कुल नहीं देते और न ही कभी बाहर निकालकर किसी को दिखाते हैं। उनका यह कहना होता है कि यदि हम इसे ही दे दें तो हमारे पास बचा ही क्या रहेगा। खैर जिस थड़ी का ज़िक्र है, उसके बारे बताऊं कि इस थड़ी के तीन पायदान हैं। यह लोअर कोर्ट, हाई कोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट की तर्ज़ पर काम करता है। किसी वाद को लेकर सबसे पहले गांव के लोग चर्चा करके सर्वसम्मति से निर्णय लेते हैं शायद। यदि वहां फैसला न हो पाए तो वाद को दूसरे पायदान पर ले जाया जाता है, जहां गांव के चुने हुए प्रतिनिधिगण फैसला लेते हैं। यदि वहां के निर्णय से भी पक्षकार संतुष्ट न हों तो मामले को उच्चतम पायदान में ले जाया जाता है, जहां देवता जमलू का गूर देववाणी द्वारा अंतिम फैसला सुनाता है जो सर्वमान्य होता है। दण्ड के रूप में शायद आर्थिक दण्ड ही होता है। ऐसा बताया जाता है। हमने कुछ लोगों से यह पूछा कि हमें बताया गया कि काफी सालों पहले घेपङके प्रकोप से लोगों ने पहाडी से कूदकर आत्महत्या की थी, क्या यह सच है? उन्होंने कहा हां ऐसा हुआ सुना है। और मलाणा के नीचे एक पहाड़ी बताया कि यही वह पहाड़ी है। इसके बारे ज़्यादा नहीं बताया। उसके दूसरे दिन वापसी का दिन था। घेपङ के रथ को उठाने मलानियों को ही दिया गया। नरसिंगा न मिलने पर नाराज़ देवरथ ने मलाणियों को काफी इधर-उधर छकाया। मलाणी इसी कोशिश में थे कि देवता को जल्द से जल्द मलाणा से ले जाया जाए। मगर देवता बार-बार वापस हो जाते। फिर किसी प्रकार देवता को वापसी के लिए राज़ी किया जा सका। और मालाणी लोग देवता को चंद्रखणी तक पहुंचाने आए। उनके बिना हम ला भी नहीं पाते, क्योंकि यह खड़ी चढ़ाई थी। मालाणी भी देवता से किसी प्रकार शायद पिंड छुड़ाना चाहते थे।

चंद्रखणी जोत पर बलि दी गई और मलाणियों को वहां से विदा किया गया। थोड़ा उतरने के बाद वहीं पहुंचे जहां जाते समय गुज्जरों के पास दूध पिया था। गुज्जरों से दूध लेकर दूध पिया तथा मलाणा से लाया हुआ खाना खाया। वरि गूर जी ने चढ़ाई चढ़ते समय कहा था कि हिडिम्बा पीछे रह गई है। और अब जहां खाना खा रहे थे, वहां बताया कि अब हिडिम्बा वापिस पहुंच गई है। इसे मलाणा वासियों के लिए अशुभ माना जा रहा था। जो कुछ दिनों के बाद ऐसा समाचार आया था कि मलाणा के जंगल में आग लग गई है, और साथ लगते घेपङ के लिए चिन्हित जंगल बच गया है। परंतु इसकी पुष्टि की गई थी या नहीं, यह नहीं मालूम। अब घेपङ को उठाने का ज़िम्मा हम नौजवानों पर आ गया था। अब बुज़ुर्ग भी हमारी मिन्नतें कर रहे थे। शाम को रुमसू गांव पहुचे। वहां ग्रामीणों ने जागरा का इंतज़ाम किया था। दूसरे दिन वहां से चाय नाश्ता कर के

चले। यात्रा में लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। करजां गांव से गुज़रे ही थे कि देवरथ एकदम पीछे मुड़ा और एक मंदिर में चला गया जो एक देवी का मंदिर था। फिर रात को राजा जी को वहीं करजां मंदिर में रुकवायाद गया। हारियानों को खिन्डु में ले जाया गया। मुझे व मेरे साथियों को मेरे गुरु रहे मास्टर तारा चंद जी अपने घर ले गए जो हमें बहुत अच्छा लगा। दूसरे दिन सुबह देवी का रथ भी सजाया गया और दोनों देवों के आपसी मिलन से लोग भाव-विभोर हो गए। वहां थोड़ी देर के लिए लाहुल वालों ने देवी को उठाया और कुल्लू वालों ने घेपङ को। फिर घेपङ को भाव भीनी विदाई दी गई। तथा आगे की यात्रा शुरू हुई। रास्ते में लोगों की भीड़ उमड़ी जा रही थी। जगह-जगह लाहुल के लोगों ने कलछोर निकाला और कपड़े देवता को चढ़ाए। देवरथ कपड़ों से लद गया था। हां, कपड़े ज़्यादातर सफेद ही चढ़ा रहे थे। शाम को मनाली पहुंचना था जहां ढोक्को परिवार का जागरा था। जगह-जगह कलछोर होने के कारण शाम को ज़रा देर से मनाली पहुंच पाए। देवता सीधा ढोक्को के घर गया जहां पहले से ही इंतज़ाम किया हुआ था। वहां पूरा हजूम ही दर्शन को आने लग गया। भेंट में दिए रुपयों के ढेर लग गए। बहुत ही बढ़िया इंतज़ाम किया गया था। पूरे मनाली बाज़ार को छंदा दिया गया था। आधी रात को जो पंजबड़ बलि दी गई, बहुत ही बड़ा खड्डू था। दो गूर छोपेल और छेतुचा बमुश्किल उठा रहे थे। दूसरे दिन बाज़ार वालों का जागरा था जिन्होंने स्कूल प्रांगण में इंतज़ाम किया था। दिनभर ढोक्को के घर में ही रहे और शाम को जागरा स्थल पर देवता को

देवता जमलू का पुराना मंदिर, मलाणा

ले गए। बाज़ार वालों के जागरे में अन्य लोगों के खाने पीने का इंतज़ाम अच्छा नहीं था। हारियानों के खाने पीने का इंतज़ाम लक्ष्मी ढाबे में किया गया था। लोग काफी नाराज़ होते भी दिखे।

दूसरे रोज़ चाय नाश्ता करने के उपरांत यात्रा पुनः आरम्भ हुई और उस दिन रुवाडु गांव जिसे शायद डगेठ भी बोला जाता है, में राजा जी को रुकवाया गया। सभी इंतज़ाम गांव वालों की तरफ से था। शाम को स्थानीय नाटी दल द्वारा रंगारंग कार्यक्रम भी पेश किया गया। साथ लगते गांव के लोग भी काफी संख्या में आये। उसके दूसरे दिन राजा जी को राहला में रुकवाया गया तथा वहां के व्यवसाइयों ने जागरा दिया। तथा अगला पड़ाव मढ़ी था। यहां भी वहां के सभी ढाबा मालिकों ने जागरा का प्रबंध कर रखा था और हारियानों की पूरी सेवा की। दूसरे रोज़ चाय नाश्ता करने के उपरांत वहां से चले। इस वापसी की पूरी यात्रा में हम युवा वर्ग की पूछ बढ़ गई थी, क्योंकि देवता उठाने की ज़िम्मेवारी जो हम पर आ गई थी। हमारे गर्दन के पीछे बड़े बड़े घाव हो गए थे फिर भी आस्था के बल पर सब कुछ सहते गए। अगला पड़ाव खोकसर था जहां हिमाचल पथ परिवहन निगम वालों ने जागरा का प्रबंध किया हुआ था। रात को जागरे में काफी लोग इकठ्ठे हो गए क्योंकि लाहुल के विभिन्न क्षेत्रों से लोग खोकसर आ गए थे। खोकसर से मैं एक इंटरव्यू के सिलसिले में केलंग चला गया था। शाम को मैं घर पहुंचा तो देवता जी भी अपने यङ्लिङ थान में पहुंच गए थे। दूसरे रोज़ राजा जी अपने शाशिन स्थित थान में पहुंचे और हम सभी हारियानों को शुकराना के तौर पर पांच रुपए प्रतिदिन के हिसाब से 100–100 रुपए दिए गए। और फिर दूसरे दिन माता हिडिम्बा और अठारह नाग को अपने-अपने गंतव्यों के लिए विदा किया गया।। 'इतिश्री'।

जय राजा घेपङ, जय हिडिम्बा माई, जय अठारह नाग।।

सम्पर्क :
मो. : 9418118889

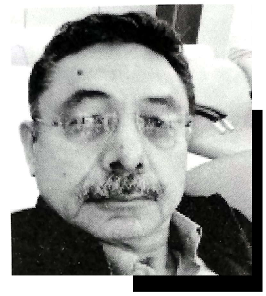

लाहुल-स्पीति : विशेषज्ञ चिकित्सकों का अकाल

✍डॉ. जय प्रकाश नारायण

जैसा कि हम सब जानते हैं कि भारत इस वर्ष G-20 की मेज़बानी कर रहा है। भारत के लिए यह सुनहरा मौका है जब देश एक ऐसे वैश्विक स्वास्थ्य संरचना की परिकल्पना करना चाहता है, जहां अमीर और गरीब दोनों तरह के देश अच्छे स्वास्थ्य के पात्र हैं। इस संरचना के अंतर्गत एक मज़बूत और लचीली देश व्यापी स्वास्थ्य-प्रणाली के निर्माण को सर्वोच्च प्राथमिकता दिया जाना ज़रूरी है ताकि कोविड-19 जैसी बीमारियों को रोकने, भविष्य में इनसे लड़ने और बीमारी के विरुद्ध सशक्त प्रतिक्रिया स्वरूप मज़बूत ढांचा तैयार किया जा सके। महामारी के दौरान स्वास्थ्य कर्मियों द्वारा दिए बड़े बलिदान को कदापि आसानी से नहीं भुलाया जा सकता है।

दुर्भाग्य से भारत में कई राज्य अभी भी अपर्याप्त स्वास्थ्य-प्रणाली से संबंधित चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। देश के दूरस्थ क्षेत्रों में जहां गरीब और साधनहीन लोग रहते हैं, स्थिति जर्जर है और सरकार इन स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रकोपों से बचाव के लिए मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने में असमर्थ रही है, जैसी सुविधाएं शहरों और बड़े कस्बों के लोगों को मुहैया कराई जाती हैं। हिमाचल प्रदेश का लाहुल-स्पीति ज़िला इसका ज्वलंत उदाहरण है।

ज़िला मुख्यालय केलंग स्थित ज़िला अस्पताल में तैनात स्वास्थ्य कर्मियों की बात करें, तो यहां स्वीकृत सात विशेषज्ञ चिकित्सकों में से एक को छोड़कर वर्तमान में सभी पद रिक्त पड़े हैं। इसका मतलब पूरे ज़िले में बीमार बच्चों के लिए एक भी बाल-रोग विशेषज्ञ नहीं है, महिला रोगियों के देखभाल हेतु स्त्री-रोग विशेषज्ञ, शल्य-चिकित्सक और आपातकालीन परिस्थितियों में देखभाल के लिए कोई विशेषज्ञ चिकित्सकों का उपलब्ध नहीं होना इक्कीसवीं शताब्दी के आधुनिक समाज में बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। क्या जनजातीय क्षेत्र के प्रति सरकार का कोई दायित्व नहीं है? जबकि, यहां की भौगोलिक परिस्थितियां देश और प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में बेहद कठिन हैं और दुर्गम है।

आज संयुक्त राष्ट्र संघ और हमारा देश सतत विकास लक्ष्य (UN Sustainable Development Goals to be achieved by 2030) के प्रति प्रतिबद्ध है, जिसके भीतर 'सार्वभौमिक स्वास्थ्य सुरक्षा' (Universal Health Coverage) की अवधारणा निहित है- 'हर किसी को, हर जगह गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा एक समान पहुंच होनी चाहिए, भले ही उनकी भौगोलिक स्थिति अथवा भुगतान करने की क्षमता चाहे कुछ भी हो।' लाहुल-स्पीति जैसे दूरस्थ जनजातीय क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाओं को ठीक किए बिना भारत अथवा हिमाचल प्रदेश कैसे सार्वभौमिक स्वास्थ्य सुरक्षा प्राप्त करने का लक्ष्य हासिल कर पाएगा ?

ऐसा नहीं है कि अतीत में ज़िला मुख्यालय अस्पताल में विशेषज्ञ चिकित्सकों की तैनाती हेतु प्रयास नहीं किए गए। जबकि, इसके विपरीत समय-समय पर विशेषज्ञ चिकित्सकों की तैनाती हेतु विभिन्न सरकारों ने अनेकानेक प्रयास किए। जिन में से अधिकांश नीतिगत कारणों और राजनैतिक हस्तक्षेप के चलते विफल रहे। अक्सर देखा गया है कि जब भी किसी विशेषज्ञ चिकित्सक का लाहुल-स्पीति में तबादला होता है,

दूरदराज़ क्षेत्र होने के कारण अमुक चिकित्सक अपनी जान-पहचान और प्रभावों का इस्तेमाल करते हुए तबादला आदेश निरस्त करवाकर राजनैतिक पहुंच के चलते कहीं और पदस्थापना करवा देता है। यदि संयोग से कोई कार्यभार ग्रहण भी करता है, तो संबंधित चिकित्सक को अपना कार्यकाल पूरा करने के पश्चात अकसर कार्यमुक्त होने से पहले एक उपयुक्त प्रतिस्थापन (Reliever) खोजकर विभाग को बताने की अनिवार्यता की शर्त रख दी जाती है।

विशेषज्ञ चिकित्सकों के अभाव का खामियाज़ा घाटी के लोगों को भुगतना पड़ रहा है। लोगों को उपचार के लिए पड़ोसी ज़िले कुल्लू अथवा अन्य स्थानों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। जिससे उन्हें अनजान जगह पर काफी परेशानियों और आर्थिक कठिनाइयों से दो-चार होना पड़ता है। क्योंकि, ज़िले में कोई निजी अस्पताल अथवा निजी डाक्टर उपलब्ध नहीं है। इसलिए स्थानीय लोग स्वास्थ्य देखभाल और उपचार के लिए पूरी तरह से सरकारी व्यवस्था पर निर्भर हैं।

विशेषज्ञ चिकित्सकों की कमी सिर्फ लाहुल-स्पीति में है, ऐसी बात भी नहीं है। वास्तव में देश के कई राज्य इस चुनौती से जूझ रहे हैं। लेकिन, राज्य सरकारें स्वास्थ्य सेवाओं में मानव-संसाधन की इस गंभीर कमी के निवारण हेतु अपने स्तर पर अभिनव प्रयोग कर रहे हैं। चिकित्सा विशेषज्ञों को अपने राज्यों में सेवाएं देने के लिए आकर्षित करने हेतु नये दृष्टिकोण और नई सोच के साथ अधिक वेतन के अलावा कई प्रकार के प्रोत्साहन दिए जा रहे हैं।

छत्तीसगढ़ का बीजापुर ज़िला मूलतः आदिवासी क्षेत्र है। घने जंगलों से आच्छादित नक्सल प्रभावित क्षेत्र है। पहले यहां भी चिकित्सकों की भारी कमी थी। लेकिन, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (National Health Mission) के समर्थन से आज यहां का ज़िला अस्पताल अब एक अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस अस्पताल में तब्दील हो गया है। इसके कारण हैं... बढ़े हुए वेतनमान, मुफ्त आवासीय सुविधा और कई अन्य प्रोत्साहन, जिनकी वजह से अनेकों विशेषज्ञ चिकित्सकों को ज़िला अस्पताल द्वारा सहर्ष अपनी सेवाएं देने लिए आकर्षित किया जा सका है।

इसी प्रकार अमूल्य जीवन बचाने के लिए विशेषज्ञ चिकित्सकों की तत्कालीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की उत्तराखंड इकाई ने हाल ही में रु. 2,25,000/— मासिक वेतन और मंहगाई भत्ते के आकर्षक प्रस्ताव के साथ 'आप बोलो, हम भुगतान करें' योजना प्रारंभ की है।

कुछ ऐसा ही अभिनव प्रयोग दक्षिणी राज्य आंध्र प्रदेश ने अपनाया है। यहां की सरकार ने आदिवासी क्षेत्र में सेवाएं मुहैया कराने वाले विशेषज्ञ चिकित्सकों के लिए प्रति माह रु. 2,50,000/— का आकर्षक वेतनमान निर्धारित किया है। दिलचस्प बात यह है कि राज्य के विज्ञापन में स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि 'इसके अलावा सरकार आपकी योग्यता, अनुभव और कार्यस्थल के आधार पर जितना चाहें, उतना पारिश्रमिक देने के लिए तैयार है।'

इसी संदर्भ में कुछ वर्षों पूर्व तत्कालीन केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री डॉ. हर्षवर्धन ने राज्यों से आग्रह किया था कि 'चिकित्सा विशेषज्ञों सहित स्वास्थ्य मानव-संसाधन के साथ संपर्क कर भर्ती प्रक्रिया को शुरू करें। भुगतान केन्द्र सरकार करेगी। क्योंकि, स्वास्थ्य राज्य का विषय है।' दुर्भाग्यवश हिमाचल प्रदेश जैसा पहाड़ी राज्य केन्द्र सरकार की इस अनूठी पहल को अपनाने के लिए आगे नहीं आया, जिस कारण योजना का फायदा आम आदमी नहीं उठा पाया।

अब मुद्दा यह है कि लाहुल-स्पीति की विकट स्थिति से कैसे निपटा जाए? कुछ सुझाव इस प्रकार हैं :

1. सबसे पहले और महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रदेश में नये खुलने वाले मेडिकल कॉलेजों की मूलभूत सुविधाओं को समयबद्ध तरीके से उपलब्ध कराया जाए। साथ में यह सुनिश्चित करना भी बहुत ज़रूरी है कि ज़िला अस्पताल और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में जहां विशेषज्ञ

चिकित्सक उपलब्ध हैं और वहां धन की कमी नहीं होनी चाहिए। ऐसा भी बिलकुल नहीं होना चाहिए कि ज़िलों में तैनात विशेषज्ञों को मेडिकल कॉलेजों में स्थानांतरित किया जाए, जिससे आम जनता को अपने घरद्वार पर स्वास्थ्य सुविधा से वंचित होना पड़े।

2. यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि ज़िला अस्पताल में सभी रिक्त पदों को ईमानदारी के साथ तुरंत भरने का प्रयास होना चाहिए। किसी भी राजनेता को विशेषज्ञ चिकित्सकों के स्थानांतरण/पदस्थापना में हस्तक्षेप करने के लिए ज़िम्मेदार पाया जाता है और इस तरह जनजातीय लोगों के स्वास्थ्य सेवाओं संबंधी समान नागरिक अधिकारों से वंचित रखने वालों की जवाबदेही तय होनी चाहिए। संबंधित विशेषज्ञ चिकित्सक को जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पीति में अपना कार्यकाल पूरा होने पर उसकी पसंद के स्थान पर स्थानांतरण की व्यवस्था करना सुनिश्चित करना होगा। उन्हें अपने प्रतिस्थापन (Reliever) की व्यवस्था करने की शर्त की वाध्यता नहीं होनी चाहिए। यही प्रथा विशेषज्ञ चिकित्सकों को दूर-दराज़ के क्षेत्रों में जाकर सेवाएं देने में एक प्रमुख निरुत्साहक कारण है।

3. ज़िला स्तर पर सेवा प्रदान करने का विकल्प चुनने वाले विशेषज्ञ चिकित्सकों को उनकी योग्यता और अनुभव के आधार पर अतिरिक्त वेतन-वृद्धि की पेशकश की जानी चाहिए। जैसा कि उत्तराखंड सरकार स्नातकोत्तर डिग्रीधारकों के लिए पांच वेतन-वृद्धि और सुपर-स्पेशलिस्ट डॉक्टर के लिए सात अतिरिक्त वेतनमान प्रदान करती है।

4. दूसरी ओर ज़िला प्रशासन को उपयुक्त वातावरण बनाना चाहिए। ताकि, भयमुक्त वातावरण में स्वास्थ्य कर्मी अपने कर्त्तव्यों का बखूबी निर्वहन कर सके। ज़िला प्रशासन को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि चिकित्सकों और उनके परिवारों के लिए अच्छी आवासीय सुविधा उपलब्ध कराई जाए। ऐसा करने की ज़िम्मेदारी न केवल अकेले सरकार की है, अपितु, स्थानीय जनता को समान रूप से इस हेतु आगे आना होगा। उपयुक्त आवासीय सुविधा के बिना चिकित्सकों का रहना और काम करना असम्भव है।

5. सरकारी क्षेत्र में चिकित्सा विशेषज्ञों की पर्याप्त उपलब्धता नहीं होने की स्थिति में राज्य सरकार को चाहिए कि खुले बाज़ार से आकर्षक वेतनमान पर विशेषज्ञ चिकित्सकों की तैनाती करे। जिस प्रकार का प्रयोग उत्तराखंड, छत्तीसगढ़ और तेलंगाना जैसे प्रदेशों में सफलतापूर्वक अंजाम दिया जा रहा है।

क्या हिमाचल प्रदेश इन राज्यों, विशेषकर उत्तराखंड के अनुभवों से सीख लेगा, यह देखना बाकी है। स्पष्ट तौर पर लाहुल-स्पीति जैसे भौगोलिक रूप से दूरस्थ जनजातीय क्षेत्रों के नागरिकों के लिए बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराना सरकारों का मूलभूत दायित्व ही नहीं है, अपितु, नैतिक ज़िम्मेदारी भी है। जिसे हर परिस्थिति में पूरा करना राजधर्म का निर्वहन करना है।

सम्पर्क : पूर्व डायरेक्टर, डब्ल्यू, एच. ओ. रीजनल ऑफिर फॉर साउथ ईस्ट एशिया, नई दिल्ली।

ई-मेल : narainjp88@gmail.com

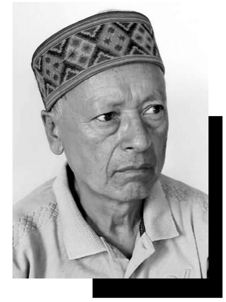

मिलेट्स : एक अनूठी खाद्य सामग्री

✍ टशि छेरिंग ठाकुर

आज के आधुनिक संसार में स्वास्थ्य और कुशलता हमारे जीवन की प्रधान जीवन-शैली बन चुकी है। इसलिए सभी खाद्य-पदार्थ, जो मार्किट में मिलते हैं, कीटनाशन व अन्य दवाइयों से दूषित हो चुके हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य व पोषण से जुड़ी कई प्रकार के खाद्य पदार्थ जैसे कि जौ, बाजरा, मक्की, रागी-कोदरा इत्यादि स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं और प्रचलित भी हो रहा है। इन खाद्य-पदार्थों का कोई भी खराब असर नहीं है। चिकित्सक और आहार-विशेषज्ञ लोगों को इनके सेवन की सलाह भी देते रहते हैं। ये सभी खाद्य-पदार्थ मोटे अनाज हैं, सभी ग्लूटन से मुक्त होते हैं और लोगों को अपना वज़न नियंत्रित करने व स्वस्थ रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन गुणों को मद्देनज़र रखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 2023 को अंतर्राष्ट्रीय मोटा अनाज वर्ष (International Millet Year-2023) घोषित किया है। ये मोटे अनाज परम्परागत तौर पर पुरातन काल से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उगाए जाते हैं, तथा लोग बड़े शौक से इनका अपने आहार में सदुपयोग करते आ रहे हैं।

वर्ष 1960 के दशक के पश्चात् तथा हरित क्रांति के पदार्पण से भारतीय लोगों के रहन-सहन में अभूतपूर्व परिवर्तन आया। इस दौरान आटे व चावल ने बाज़ार पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लिया था। उपभोक्तावाद मार्किट पर हावी हुआ ताकि देश में गरीबी का उन्मूलन हो। पुराने खानपान के तरीके खत्म कर नये अंग्रेज़ी खान-पान की प्रथा प्रचलित हुई। इन खान-पान और रहन-सहन में अमूलचूल परिवर्तन के कारण लोगों में हृदय रोग, मुधमेह, कैंसर व पाचन क्रिया से संबंधित कई प्रकार की बीमारियां घर कर गई। वर्तमान समय में भी खराब गुणवत्ता वाले और शीघ्र बनने वाले खाद्य-पदार्थ (फास्ट फूड) खूब प्रचलन में हैं। इनके निरंतर प्रयोग से हमारे स्वास्थ्य के साथ-साथ रोग प्रतिरोधक क्षमता पर भी बुरा असर पड़ रहा है।

इन सभी प्रकार की चुनौतियों से निपटने के लिए मैं मोटे अनाज यानि मिलेट्स का परिचय आप लोगों से करवाना चाहता हूं, जो हमें सामान्य व रोग रहित जीवन जीने में सहायक होंगे। आमतौर पर मिलेट्स को उसके बीज के आकार से आसानी से पहचाना जा सकता है। ये दो श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. मुख्य मिलेट्स : सोरगुम (Sorghum) ज्वार और बाजरा (Pearl Millet)। ये मुख्य मिलेट्स में आते हैं।
2. माईनर मिलेट : इसके अंतर्गत कई मिलेट्स आते हैं।

- फिंगर मिलेट (रागी या कोदरा)।
- फोक्सटैल मिलेट (Foxtail Millet), कांउणी
- लिटल मिलेट (Little Millet) स्वांक
- कोदो मिलेट (Kodo Millet) कोदन या कोदरा
- बार्नयार्ड मिलेट (Barnyard Millet) सांवा
- प्रोसा मिलेट (Proso Millet) चैना
- ब्राउन मिलेट (Brown Millet) हरी कंगणी
- काठू (Buckwheat) कुट्टू या काठू
- अमरन्थ (Amaranth) रामदाना
- ब्रूमकोर्न मिलेट (Broom Corn Millet) चैना

ये सभी मिलेट गौण मिलेट्स की श्रेणी में आते हैं। हमारे लाहुल-स्पिति के लोग वर्षों से काठू का सेवन करते आ रहे हैं, क्योंकि यह प्रमुख फसल के तौर पर उगाया जाता है। काठू को घर-घर शौक से पकाया जाता था और स्वास्थ्य लाभ मिलता रहा है। फास्ट फूड के दौर में इसका प्रयोग कम होता गया और फसल उगाना भी कम होता गया जबकि नकदी फसल से आमदनी तिगुना हो गई लेकिन कुछ लोग आज भी बड़े चाव से इनका सेवन करते हैं। स्वास्थ्य के पहलू से देखा जाए तो इन सभी मोटे अनाजों में पर्याप्त मात्रा में रेशा पाया जाता है, जो हमारी पाचनक्रिया को सुचारू

रूप से चलाने में मदद करता है। ये हमारे रक्तचाप को सामान्य रखने और शरीर में शर्करा की मात्रा को कंट्रोल करने में सहायक होते हैं। इनमें जीवाणुरोधक व रोगाणुरोधक क्षमता होने के कारण हमारे शरीर में कई प्रकार की गिलटी या गांठ बनने से रोकता है। इसके अतिरिक्त इनमें प्रचुर मात्रा में राईवोफ्लेविन, नाईसिन, मेग्निशियम, जस्ता और मैंग्नीज़ पाया जाता है, जो शरीर को कई प्रकार की बीमारियों से लड़ने में सहायता करता है।

इन मोटे अनाजों को लोकप्रिय बनाने व इन का प्रचार-प्रसार करने में कर्नाटक, मैसूर के एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा चिकित्सक डॉ. खादरवल्ली ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन्होंने भारत के साथ-साथ कई देशों में इसे सामान्यजन तक पहुंचाने का काम किया है, जिस कारण आज इन्हें मिलेटमेन ऑफ इण्डिया नाम से जाना जाता है। इनके निरंतर प्रयासों से आज बहुत से लोग मिलेट्स का प्रयोग करने लगे हैं। खादरवल्ली जी बताते हैं कि इन मिलेट्स में कई प्रकार के मिश्रित गुणी अनाज होने के कारण तथा अपने औषधीय गुणों के कारण हमारे शरीर में किसी प्रकार की हानि होने नहीं देते। इनमें चावल व आटे की तुलना में तीन गुणा अधिक कैलशियम और एंटी ऑक्सीडेंट पाए जाते हैं। अतः इसे चावल व आटे की जगह विकल्प के तौर पर सेवन किया जाना चाहिए। हमारे लोगों में आयु की मध्यावधि में होने वाले रोगों में कई रोग आटे के निरंतर सेवन से होते हैं, क्योंकि आटे में ग्लुटन (लेस) पाया जाता है, जो चिपचिपा होने के कारण हमारी आंतों की आंतरिक दीवारों पर चिपक जाता है, जो बाद में कब्ज़, बदहज़्मी और अपच का कारण बनते हैं। इससे कई प्रकार के पेट से संबंधित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आटे से कई लोग एलर्जिक होते हैं, जिनके लिए ये मिलेट्स बहुत लाभदायक हैं। मिलेट्स अपनी खूबी के कारण हमारे शरीर में धीरे-धीरे कार्बोहाइड्रेट्स को छोड़ता है, जिस कारण से रक्त में शर्करा की मात्रा नियंत्रित बनी रहती है। इस प्रकार ग्लुटन से मुक्त होने के कारण हम मिलेट्स का प्रयोग आटे व चावल के विकल्प स्वरूप कर सकते हैं। ये पेट की कौलियक (Coliac) बीमारी से हमें बचाते हैं।

मैं यहां आप लोगों को अपना एक निजी अनुभव भी सांझा करना चाहता हूं। मुझे काफी अरसे से पेट दर्द था व मेरा वज़न भी घटता जा रहा था। कई डॉक्टर, विशेषज्ञ व वैद्यों को दिखाने पर भी मुझे निजात नहीं मिली। अंततः मुझे एक दिन मिलेट्स व इनके गुणों का पता चला। मैंने मिलेट्स आहार और इसकी उपलब्धता के बारे में खोजबीन की। इसी दौरान मेरा संपर्क 15 मील वैदिक औषधालय के वैद्य से हुआ, उन्होंने मिलेट्स के सद्गुणों से परिचय करवाया। मुझे डॉक्टर खादरवल्ली के मिलेट आहार से अवगत करवाया। फिर मैंने नियमित तौर पर मिलेट्स शुरू कर दिया। इसमें मुख्यतः श्री धान्य नाम से मिलेट्स- कोदो, वार्नयार्ड, लिटल, ब्राउनटोप व फोक्सटेल जो कि बहुत आसानी से पाच्य हैं। तत्पश्चात् मेरा पेट दर्द सब ठीक हो गया। ये कैंसर,

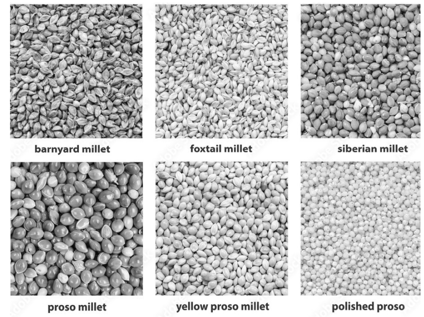

प्रोस्टेट व हृदय रोग में लाभदायक होते हैं। मैं इसे मिट्टी के बर्तन में भिगो कर रखता हूं और फिर 8–9 घण्टे बाद इसे पकाकर फरमेंट करने 8–9 घण्टे ढक कर रखता हूं और फिर बिना नमक, मसाला, घी आदि के इसे खाता हूं। यह बहुत लाभदायक होता है। इसे खमीर के लिए पकाने के बाद 8–9 घण्टे रखना पड़ता है और इसे अंवली कहते हैं। यह बहुत पौष्टिक व प्रीबायोटिक और प्रोबायोटिक होने के कारण पेट में कोई भी विकार उत्पन्न होने नहीं देता।

खानपान को जीवन में सहज व बिना तले व मसाला युक्त न बनाने से फायदा होता है। मिलेट्स के बारे में एक और आवश्यक सूचना है कि ये कहीं भी सूखे या कम उपजाऊ ज़मीन पर आसानी से उगाया जा सकता है। मिलेट्स की खेती के लिए ज़्यादा पानी की ज़रूरत नहीं है। इन सभी बातों को मद्देनज़र रखते हुए अब समय आ गया है कि हम स्वस्थ जीवन के लिए इस खानपान को अपनाएं और अपने समाज में स्वस्थ व निरोग रहें।

सम्पर्क : टशि छेरिंग ठाकुर, रालिंग
मो. : 9418104493

नदियों पर कारोबार जारी है

✍ गणेश ग़नी

पिछले साल ढालपुर में राय री जाच यानी पीपल मेला लगा हुआ था। इस बसन्तोत्सव के दौरान एक दिन घर लौटते समय नेचर पार्क मोहल के पास पिंजरों में बंद रंग-बिरंगे पंछी दिखे। कुछ पिंजरे सड़क किनारे ज़मीन पर थे तो कुछ पेड़ की टहनी पर टँगे थे। इनका आकर्षण ऐसा कि चलते पैर रुक गए और देखते-देखते एक फिरोज़ी और सफेद रंग के पिंजरे में दो पंछियों को खरीद लाया। ये अहस्ट्रेलियाई पक्षी हैं। एक हरा और एक पीला। घर पर इनका नामकरण किया गया। पीपल मेले के दौरान लाए गए थे तो पत्नी से कहा कि एक का नाम पीपल और दूसरे का नाम मेला रखते हैं।

कई बार मन में आया कि इन्हें आज़ाद कर दूं क्योंकि वे हमेशा बाहर आने को आतुर रहते थे। कई बार तो अपना दाना-पानी उलटा देते थे। मुझे उन्हें पिंजरे में बंद रखना प्रकृति के विरुद्ध लगा हमेशा। परन्तु इन दोनों से लगाव बढ़ता गया। समय बीतता रहा। रोज़ शाम को घर लौटने पर उनसे बातें करता। वे भी कान लगाकर सुनते और चींचीं करना बंद कर देते। दाना-पानी खा पीकर रात में एक दूसरे को खूब प्यार करते, पँख सहलाते और पास-पास चिपक कर पिंजरे के अंदर लटके झूले पर बैठ जाते। आज धूप खिली है। उन्हें बाहर निकाला। उनका पिंजरा रोज़ साफ करना पड़ता है। आज भी किया। उन्हें जब भी नल के नीचे रखता तो दोनों नहाने लगते। आज भी नहाए। अब बरामदे में धूप में बैठे हैं। बाहर निकलना चाहते हैं। आज 26 जनवरी 2023 है। मन हुआ कि इनको आज़ाद करूँ जोकि इनका अधिकार है। पत्नी और बेटे से पूछा। दोनों ने एकदम सहमति दी।

मैं अचम्भित हूँ। मेरे हृदय की गति बढ़ गयी है। पिंजरे का दरवाज़ा खोल दिया। हम तीनों एकटक देख रहे हैं कि कब आसमान में उड़ जाएं ये। मगर ये तो बाहर ही नहीं निकल रहे। फिर उनके दाने और पानी वाली जगह से बर्तन हटाए। अब तीन दरवाज़े बन गए। यह बहुत हैरान करने वाली बात थी कि वे फिर भी नहीं आए बाहर। बेटे ने कहा, पापा छत खोल दो। मैंने छत खोली। ये कितनी अजीब बात थी कि वे फिर भी नहीं उड़े और वहीं आसपास की पिंजरे की दीवारों पर ही फुदकते रहे। एक, दो मिनट बाद मैंने पिंजरा जब एक ओर ज़मीन पर पलटाया, तब जाकर वे दोनों उड़े। पूरी तरह उड़ नहीं पा रहे थे। थोड़ा समय लगाया और फिर उड़ान भरी। कारागर ने उन्हें उड़ना भुला दिया था। आज खाली लग रहा है। उदास भी हूँ। कुछ समझ नहीं आ रहा है। बस यही सोचकर सन्तोष कर रहा हूँ कि उन्हें कैद से आज़ाद किया। कुछ दिनों तक मन उदास तो रहेगा। यह भी सच है कि प्रकृति में ही उनका असली घर है। हमें भी तो पूंजी ने कैद किया है और हमारे मन अब मनमर्ज़ी नहीं करते। मन उड़ना भूल चुके हैं।

फैज़ अहमद फैज़ ने रावलपिंडी के कारावास में 29 जनवरी, 1954 को एक ग़ज़ल लिखी थी, ग़ज़ल के ये अशआर पढ़ें और गौर फरमाएं -

गुलों में रंग भरे बाद-ए-नौ-बहार चले
चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले।

क़फ़स उदास है यारो सबा से कुछ तो कहो
कहीं तो बहर-ए-खुदा आज ज़िक्र-ए-यार चले।

आज संयोगवश बसन्त पंचमी भी है। हालांकि इस बात का बिल्कुल

भी ध्यान नहीं था मुझे। फूलों में रंग उतर रहे हैं, बसंती हवा चल रही है, तुम भी चले आओ कि गुलशन का कारोबार चले। पीपल और मेला दोनों उड़ गए। क़फ़स यानी पिंजरा या कारागर उदास है, सुबह की ताज़ा हवा से कह दो कि खुदा के लिए आज सिर्फ यार का ज़िक्र हो। बसन्त पंचमी है तो जाहिर है सरस्वती का जन्मदिवस भी है। नवचेतना का दिन है, नयी ऊर्जा का समय है, सृजन का वक्त है और मौसम में परिवर्तन को महसूस करने की घड़ी है। माघ महीने में प्रकृति में सृजन और अंकुरण बसन्त के आगमन की सूचना देते हैं।

एक और बात फिर उदास करती है कि प्रकृति को हमने कितना अधिक प्रदूषित किया है! कितनी बेरहमी से पर्यावरण को हानि पहुंचायी है। पृथ्वी को कितना बीमार कर दिया है। एक और अचम्भित करने वाली बात फिर हुई अभी। हालाँकि ऐसा पहले भी कई बार हुआ है। अभी जब मैं अपने मोबाइल पर यह सब टाइप कर रहा हूँ तो गूगल एक चार्ट भेज रहा है हिमाचल की ग्लोबल वार्मिंग का। यह चार्ट दिखा रहा है कि 1950 से अब तक औसत तापमान में 5 डिग्री का इज़ाफा हुआ है। गूगल हमारे माइंड को भी स्कैन कर रहा है साथ-साथ। वह दिन दूर नहीं जब बिना अंगुली चलाए या बिना बोले भी वह सब कुछ लिख देगा जो हम केवल सोच रहे हैं। गूगल हमारे घरों से होते हुए दिमाग में दाखिल हो चुका है।

जब हमें बिजली की सुविधा चाहिए और विकास चाहिए तो अनगिनत वृक्ष कटेंगे ही, नदियों पर बांध बनेंगे, सड़कें बनेंगी और पानी के प्राकृतिक स्रोत नष्ट होंगे। खेत जलमग्न होंगे और विस्थापन होगा। ये सब हुआ है और हो रहा है। पृथ्वी हर रोज़ बीमार हो रही है। विकास होगा कहीं और, बलिदान कहीं और लिया जाएगा। आदिवासी क्षेत्र पाँगी में एक गाँव है शौर। अभी तक तो वहां के लोगों ने विरोध करके पूंजीपतियों से अपने जल, जंगल और ज़मीन बचा रखी है। लेकिन कब तक? सत्ता के पास ताकत है और पूंजीपति सत्ता के साथ हैं। लोग डरे हुए हैं कि न जाने कब पनविद्युत परियोजना वाले उनके गाँव को खेतों और नदी समेत निगल जाएंगे।

उसे याद हैं वे दिन जब सुविधाएं नहीं थीं बेशक, पर सुरक्षा, सुख और शांति थी। रात का भोजन करने के बाद ढिबरी की बत्ती को तार के बने हैंडल से घूमा कर थोड़ा और नीचे कर दिया जाता ताकि रोशनी भले ही थोड़ी कम हो जाए पर मिट्टी के तेल की बचत हो। इस झिलमिल रोशनी में किस्से और लोक कथाएं धीरे-धीरे भीतर के वायुमण्डल में तैरती रहतीं। घर से जाने के दिन करीब आने लगे तो किस्सों और नसीहतों के दौर रोज़ रात में भोजन के बाद चलने लगे। बादलों का किस्सा सुनाया जाता कि कैसे रटांग जोत (दर्रा) दोपहर तक लाँघ लेना चाहिए। दोपहर बाद हवाएं आवारा हो जाती हैं। कभी भी बादलों को उड़ा लाती हैं। पहले बारिश और फिर बर्फ गिरने लगती है। फिर न इधर के न उधर के। बर्फ की समाधि भले ही धीरे-धीरे बनती है मगर भयंकर डरावनी होती है। पैनी ठंढ साँसों की डोर को धीमे-धीमे काट डालती है।

बिजली पानी से बनती है। इसके लिए बांध बनाकर नदी के जल को अवरुद्ध कर दिया जाता है।

अवरुद्ध नदियाँ एक जलाशय बनाती हैं, जिसका जल आसपास के क्षेत्र में फैल जाता है। परिणामस्वरूप वहाँ मौजूद पारिस्थितिक तंत्र तथा आवास नष्ट हो जाते हैं। पौधों, वन्यजीवों और मनुष्यों सहित कई अन्य जीवों को या तो जलसमाधि लेनी पड़ती है या विस्थापित होना पड़ता है। बांधों के आसपास के इलाकों में बाढ़ आने से पेड़-पौधे और वन्य जीवन नष्ट हो जाते हैं जो अपघटित होकर वायुमंडल में बड़ी मात्रा में कार्बन का उत्सर्जन करते हैं। क्योंकि नदी का बहाव अवरुद्ध रहता है इसलिये पानी स्थिर हो जाता है और जलाशय के तल में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। ऑक्सीजन की कमी एक ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जो जलाशय के तल पर एकत्रित सामग्रियों के अपघटन से मीथेन उत्पन्न करती है, अंततः वैश्विक जलवायु परिवर्तन में योगदान करते हुए वायुमंडल में उत्सर्जित होती रहती है। नदियों के आंतरिक और बाह्य क्षेत्रों से कार्बनिक पदार्थ जो कि आमतौर पर नीचे की ओर प्रवाहित होते हैं, बांधों के पीछे एकत्र होते जाते हैं जो ऑक्सीजन का उपभोग करना शुरू कर देते हैं। कभी-कभी ऐसे शैवाल उगने लगते हैं जो बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन का उपभोग कर 'मृत क्षेत्र' का निर्माण करते हैं। इसके अलावा बांध के जलाशय में सतह और तल के बीच पानी का तापमान बहुत भिन्न हो जाता है। प्राकृतिक रूप से नदी में जीवों के जीवन-चक्र के लिये एक जटिल प्रक्रिया विकसित होती है। जब बांध संचालक द्वारा नदी में विषम तापमान एवं ऑक्सीजन रहित पानी छोड़ा जाता है, तो इससे नदी के वातावरण को भी नुकसान पहुँचता है। जलाशयों के स्थिर जल में पौधों के सड़ने से कार्बनिक पदार्थ का अपघटन अकार्बनिक पदार्थ के रूप में होता है। ऐसी स्थिति में मर्करी परिवर्तित होकर मिथाइल मर्करी बन जाती है, दुर्भाग्य से यह मिथाइल मर्करी नदी के जीवों में संचित हो जाती है जो जलाशयों से मछली खाने वाले मनुष्यों और वन्यजीवों में विषाक्त प्रभाव पैदा करता है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव अब साफ-साफ दिखने लगे हैं। लाहुल और पाँगी भी अब इस परिवर्तन से अछूते नहीं बचे। पाँगी घाटी के बाशिंदों ने अभी तक मच्छर नहीं देखे थे। उन दिनों जब ऋतु बदलती तो समय का हिसाब रखती। पृथ्वी खुश रहती कि सब कुछ समय-सारिणी से चल रहा है। बसन्त खेत-खेत, चरागाह-चरागाह खूब बिछकर खिलता। धूप पहाड़ दर पहाड़ खिल-खिल चमकती। नदी, झरने और चश्मे भर-भर वर्षा आती। हवा इतनी भर तेज़ चलती कि पके अखरोट पेड़ से ज़मीन पर आ गिरते। पीले-पीले सूखे पत्ते उन्हें सम्भाल लेते बस। बर्फ का क्या! उसे तो पूरी की पूरी घाटी में छा जाने के बाद ही आराम मिलता।

जूं के पेट में हाथी
असल में समय अब बदला है
ऐसा उसे लगता इन दिनों
क्योंकि पहाड़ से पेड़ ही नहीं
बर्फ भी चुरा ली गई है।

पहाड़ अतिथि हो गए हैं
बंगले की दीवारों के
और पेड़ खिड़की के

ताकि बंगले रातों में भी उजले दिखें
इसलिए पहाड़ में
नदियों पर कारोबार जारी है
पहाड़ सदमे में हैं
नदियाँ जड़ हो गई हैं।

और सच में समय बदल भी गया है
ऐसा उसे यकीन होने लगा है
किसान कम्पनी में क्लर्क हो गया
और गडरिया सिक्योरिटी गार्ड।

कसाई भेड़-बकरियाँ हाँक रहा है
इस बीच बड़े मालिक सब से कह रहे हैं-
जूं के पेट से हाथी पैदा होता है शहर में
उसकी बातों में पंख लगे हों जैसे
कि शहर का सपना दूर-दूर तक चहकने लगा है।

(कविता : वह साँप सीढ़ी नहीं खेलता, 2019)

सम्पर्क : गांव शौर, पांगी, जिला चम्बा, हि०प्र०।
वर्तमान पता : एमसी भारद्वाज हाऊस, भुट्ठी कॉलोनी, शमशी, जिला कुल्लू, हि०प्र०।
मो. : 9736500069

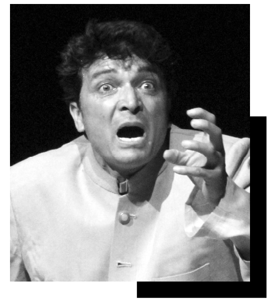

कुल्लू का राज्य स्तरीय नाट्योत्सव और रंगमंचीय दृष्टिकोण

✍ केहर सिंह ठाकुर

किसी भी स्थान का रंगमंच वहां की परम्पराओं, लोकानुष्ठानों, देवानुष्ठानों और धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ा होता है। वहीं से उन्नत होते होते वह रंगमंच समकालीन हो जाता है। अगर कुल्लू की बात की जाए तो कुल्लू का रंगमंच जिसमें लोकनाट्य हॉर्न का प्रमुखता से नाम लिया जाता है, एक समय में यहां का समकालीन नाट्य था। क्योंकि उस काल में इस लोकनाट्य में यहां की समकालीन समस्याएं उठाई जाती थी और व्यंग्य भी समकालीन परिथितियों और व्यवस्था पर नाटक के माध्यम से अभिनेताओं द्वारा जिन्हें स्वांगी कहा जाता है, कसे जाते थे। लेकिन आज यह जड़ हो गया है। क्योंकि इसके स्वांगी आज वर्तमान की परिथितियों और वर्तमान व्यवस्था पर व्यंग्य नहीं कस सकते। इसलिए यह लोकनाट्य प्राचीन हो गया वर्तमान का नहीं रह सका। जबकि इसमें हमेशा ही समकालीन होने के सभी तत्व मौजूद हैं। आज इसके स्वांगियों का समकालीन परिस्थितियों और व्यवस्था पर गहन चिन्तन नहीं है। वे सुन कर लाते हैं कि हॉर्न में स्वांगी बोरियों की ड्रैस पहनते थे या फटे हुए कोट और पजामे ही पहनते थे तो उसे ही ठीक वैसा ही उतार देने की कोशिश करते हैं और यह कहते हैं कि हम अपनी पुरानी संस्कृति का सम्वर्धन कर रहे हैं। लेकिन मुझे एक रंगकर्मी के रूप में कभी नहीं लगा कि बोरियों की ड्रैस और फटे कोट और फटे पजामे हमारी समृद्ध संस्कृति का हिस्सा रहे होंगे। इस तरह की ड्रैस का उस काल में स्वांगियों द्वारा हास्य उत्पन्न करने के लिए निश्चय ही प्रयोग किया गया होगा। लेकिन इसे ही संस्कृति के नाम पर सम्वर्धित और संरक्षित करना चाहिए ऐसा मुझे नहीं लगता। हां इस लोकनाट्य का एक खाका है उसे समझ लेना बहुत ज़रूरी है जो अपने आप में एक टोटल थिएटर की प्रस्तुति का खाका है जिसमें गीत संगीत भी है, नृत्य भी है और इस लोकनाट्य को हर समय में अपने आप को समकालीन नाट्य की श्रेणी में खड़ा रखने वाला संवाद पक्ष। आज का दर्शक इस लोकनाट्य को देखते हुए आज से 50 साल पहले की स्थिति पर व्यंग्य कसते स्वांगी के संवाद पर चुटकी नहीं ले सकता। उसे आज की परिस्थिति का व्यंग्य चाहिए है। अगर इस लोकनाट्य का स्वांगी आज की स्थिति का व्यंग्य प्रस्तुत करता है तो यह नाट्य अपने आप में समकालीन ही होगा। यही स्थिति हिमाचल के बाकि लोकनाट्यों के साथ है। मेरा कहने का मतलब यह है कि जो आज के समय में तथाकथित आधुनिक रंगकर्मी हैं वे लोकनाट्य के रंगकर्मियों को हीन भावना से देखते हैं क्योंकि इन लोकनाट्यों के रंगकर्मियों को पता नहीं है कि स्तानिस्लाव्स्की की थ्योरी ऑफ इन्वोल्वमेंट क्या है, बतोल्त ब्रेख्त की थ्योरी ऑफ ऐलिनेशन क्या है, आर्तो का क्रुअल थिएटर क्या है, ग्रोटोव्स्की का पुअर थिएटर क्या है। लेकिन ये रंगकर्मी शायद नहीं जानते कि दिए गए सिद्धान्तों का मूल इन्हीं लोकनाट्यों के रंगकर्मियों के पास है। यह दिखता नहीं यह हमारे सूक्ष्म शरीर सा है जिसका सीटी स्कैन, अल्ट्रासाउंड या एक्स रे नहीं होता, लेकिन है निश्चित रूप से। यह है लोकनाट्यों के वाद्य यंत्रों की धुनों में, गीतों में और नृत्यों में। लेकिन लोकनाट्यों के अभिनेता जिसे स्वांगी कहते हैं उसे आधुनिक होना ही पड़ेगा। उसे आज के सूचना तन्त्र से जुड़ना ही पड़ेगा। उसे मानव इतिहास में क्या हुआ, कहां से शुरू हुआ, कैसे चला, और आज क्या स्थिति है यह सब ज्ञान रखना ही होगा। तब जाकर वह स्थितियों और परिस्थितियों पर आधारित आज के कचरे मनोरंजन से

ग्रसित दर्शक पर अपने व्यंग्य का असर जगा पाएगा। पुराने चीथड़े पहन कर वह व्यंग्य कम और खुद को उपहास का पात्र ही ज़्यादा बनाता है और उसकी क्षमता पर, देखने वाला मात्र दया ही कर पाता है। उसे ताज़ा सूचनाओं से लैस और ज्ञान से भरपूर होना ज़रूरी है। भोले नाथ का ड्रैस चाहे जो भी हो ज्ञान में कौन जीत सकता है उनसे। अतः उनके आगे झुकना ही होता है। नाटक का यह नट तो उन्हीं भोले का प्रवर्तक है तो कुछ अंश मात्र ही सही ज्ञान तो रहे ही। मेरा पूर्ण विश्वास है कि भोले नाथ के उस अंश मात्र ज्ञान और साधना से ही आज का नट दर्शक को मंत्रमुग्ध कर सकता है।

खैर यह तो लोकनाट्यों की बात रही, जहां तक बात रही समकालीन नाट्यों की तो कुल्लू क्षेत्र में समकालीन नाटकों के मंचन का आरम्भिक दौर लगभग 1935 के आसपास का रहा है जब सुल्तानपुर स्थित सनातन धर्मसभा के हॉल में राजा हरिश्चन्द्र जैसे नाटकों का मंचन किया जाता था और लालटेन की रोशनी में होता था और वही लालटेन बाद में दर्शकों को घर तक छोड़ने के काम भी आते थे। यह स्पष्ट है कि उस काल के यह समकालीन नाट्य यहां के लोकनाट्यों से विकसित नहीं हुए थे बल्कि बाहर से आयातित संस्कृति के प्रभाव से पनपे थे। जबकि दुनिया का सबसे विकसित रंगमंच वहीं के लोकनाट्यों से पनपा है जैसे

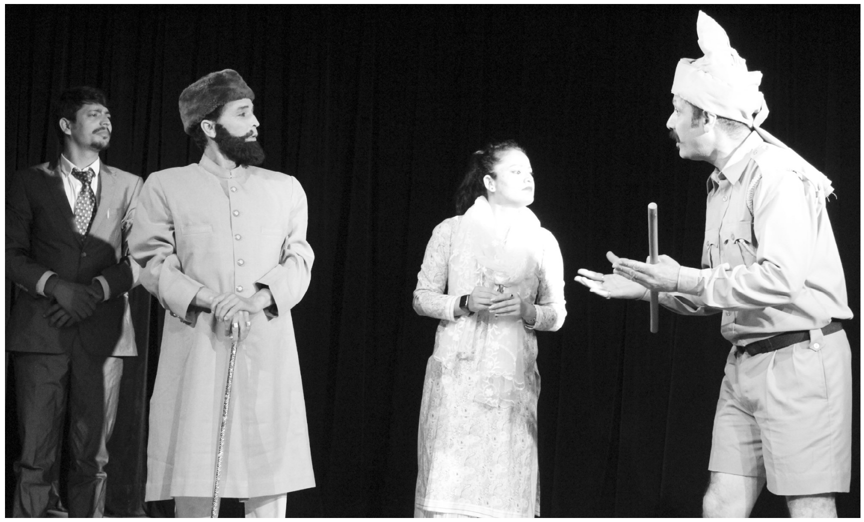

फ्रांस से सम्बंधित दुनिया के जाने माने रंगकर्मी मौलियर ने वहां की शैली 'कॉमेदिया दल आर्ते' को दुनिया के रंगमंच में फैलाया। यद्यपि यह शैली उनके नाम पर जानी जाती है जबकि उनसे भी पहले वहां के रंगमंच में यह शैली मौजूद थी। जापान की नोह शैली में आधुनिक नाटकों का विकास। अपने भारत में ही अवलोकन करें तो केरल से सम्बन्ध रखने वाले प्राख्यात रंगकर्मी के एन पणीकर ने वहीं की शैलियों कुट्टीअट्टम, कलैरिया पट्टू और कृष्ण अट्टम में नाटकों को गढ़ कर समकालीन कर दिया। हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ तत्कालीन मध्य प्रदेश की नाचा शैली में नाटकों को गढ़ कर समकालीन कर दिया। मणिपुर के रतन थियम ने अपने नाटकों में वहीं की लोक शैलियों और लोक संस्कृति के तत्वों का समावेश करके समकालीन कर दिया। उनका नाटक मैकबैथ इंग्लैड का कहीं से भी नहीं लगता ऐसा लगता है कि उत्तर पूर्व का मैकबैथ मंच पर उतर आया है। इस बात में कोई दो राय नहीं है कि हमारे भारत के इन तीनों विख्यात रंगकर्मियों के नाटकों को भारत के समकालीन नाटकों के रूप में विश्व ने सर माथे पर बैठाया। यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि बंगाल में उत्पल दत्त जैसे रंगकर्मियों ने वहां की लोक नाट्य शैली जात्रा में ही शेक्सपीयर के नाटकों को भी गढ़ कर कैसे समकालीन रूप दिया। कन्नड़ रंगमंच में इस फेहरिस्त में गिरीश कर्नाड और बाबा कारन्त का भी नाम आता है। बाबा कारन्त ने तो शेक्सपीयर के नाटक मैकबैथ को ही राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली के रंगमण्डल के साथ 'यक्षगान' शैली में तैयार कर दर्शकों को अचम्भित किया था। भारत में आधुनिक रंगमंच को विशेषकर हिन्दी रंगमंच को परिष्कृत करने में इब्राहिम अल्काज़ी को नहीं भुलाया जा सकता। इन शिल्पियों की सूची लंबी है, लेकिन यह समझ लेना आवश्यक है कि ये ही लोग हमारे आधुनिक भारतीय रंगमंच के शिल्पी हैं जिन्होंने लोक नाट्यों और लोक शैलियों को आधार बनाकर भारतीय रंगमंच की एक पृष्ठभूमि अपनी कड़ी

मेहनत, लगन और सृजनशील ऊर्जा से बनाई है। किसी भी जगह का रंगमंच अगर वहां की ही लोक संस्कृति से विकसित होकर समकालीन रंगमंच तक पहुंचा हो तो वह वहां के समाज की प्रगति और शिक्षा के स्तर को दिखाता है। अगर बाहर से प्रभावित होकर वही बाहर का तामाझामा हम यहां लाकर खड़ा करें और उसे ही परोसें तो वह कार्बन कॉपी ही होती है और कार्बन कॉपी हमेशा ही डुप्लीकेट होती है वह कभी ऑरिजिनल नहीं हो सकती। इसलिए अपनी ही संस्कृति की जड़ों का पोषण आवश्यक है। लेकिन हिमाचल के समकालीन रंगमंच में यह बिखराव आज के दौर में स्पष्ट दिखाई देता है। तो हिमाचली रंकर्मियों को अपनी जड़ें तलाशने की बहुत ही ज़्यादा आवश्यक्ता है।

उपरोक्त इन सब बातों को कह देने का मेरा मनसूबा यह है कि कुल्लू में भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश ने 13 से 18 मार्च 2023 के दौरान एक राज्य स्तरीय नाट्योत्सव का आयोजन किया जिसमें हिमाचल के छह नाट्य दलों ने समकालीन और छह नाट्य दलों ने लोकनाट्य प्रस्तुत किए। यह उत्सव इस दिशा में एक सफल प्रयास रहा जहाँ समकालीन और लोक नाट्यों के रंगकर्मी एक दूसरे के पास आए और एक दूसरे को समझने और समझाने की कोशिश करते नज़र आए। इस उत्सव को सफल बनाने के लिए जहां भाषा विभाग के कुल्लू कार्यलय ने एड़ी चोटी का ज़ोर लगाया तो वहीं कुल्लू के समकालीन नाट्य कर्मियों ने अपना पूर्ण योगदान दिया। इस नाट्योत्सव के आयोजन का स्थान था अटल सदन का अंतरंग सभागार, जहाँ 680 सीटों की क्षमता है। विशुद्ध नाटकों का मंचन यहां पहली बार आयोजित किया गया था। डर यह था कि दर्शक आएंगे भी या नहीं। सौ ढेढ सौ लोग तो इतने बड़े सभागार में दिखेंगे ही नहीं। लेकिन कुल्लू घाटी के दर्शक आए और खराब मौसम में भी अच्छी खासी संख्या में आए और नाटकों का आनन्द भरपूर लिया और आगामी मंचनों के लिए रंगकर्मियों का उत्साहवर्धन किया।

13 से 18 मार्च तक आयोजित इस राज्य स्तरीय नाट्योत्सव के पहले दिन समकालीन नाटकों में सोलन की संस्था प्रणव थिएटर बियोंड थिएटर ने प्रवीण पाटेकर का लिखा नाटक 'मैट्रिक' संजीव आरेड़ा के निर्देशन में प्रस्तुत किया। नाटक में एक लड़की के ज़िला में मैट्रिक में प्रथम आने के तथा उसके लिए उसके माता पिता के बलिदान के संघर्ष को खूबसूरती से दिखाया। उसी दिन लोकनाट्यों की कड़ी में सिरमौर की संस्था आसरा ने प्रसिद्व लोक नृत्य 'सिंहटू' प्रस्तुत कर दर्शकों को रोमांचित किया। दूसरे दिन 14 मार्च को समकालीन नाटक 'आखिरी खत' संवाद युवा मण्डल मण्डी के कलाकारों ने मंजीत मन्ना के लेखन व निर्देशन में प्रस्तुत किया। नाटक में बूढ़े माँ बाप का दर्द दिखा जिनका बेटा विदेश नौकरी करने जाता है, पैसे तो भेजता है परन्तु खुद नहीं आता जबकि उन्हें उसकी बुढ़ापे में सबसे ज़्यादा ज़रूरत है न कि पैसों की। उसी दिन वीर नाथ युवक मण्डल, फोजल ज़िला कुल्लू के कलाकारों ने कुल्लू क्षेत्र का प्रसिद्ध लोक नाट्य 'हॉर्न' प्रस्तुत कर समा बाँध दिया। तीसरे दिन 15 मार्च को शिमला के संकल्प रंगमण्डल के कलाकारों ने टेनिसी विलियम्ज़ का लिखा नाटक 'ग्लास मैनेजरी' नरेश मिंचा के निर्देशन में प्रस्तुत किया। नाटक में हमारे बदलते मानवीय मूल्यों और जीवन की टूटन का गहराई से प्रदर्शन किया गया। अभिनेताओं का अच्छा अभिनय भी देखने को मिला। उसी शाम साहिल म्युज़िकल ग्रुप हमीरपुर के कलाकारों ने लोकनाट्य 'दहाजा' प्रस्तुत किया। उसमें आग के अंगारे निगलने वाला चरित्र 'बौरा' विशेष आकर्षण का केन्द्र रहा। 16 मार्च को कुल्लू का हास्य नाटक 'भगवान का पूत' प्रस्तुत किया गया। दर्शकों के ठहाके हॉल में गूँजे। नाटक कुल्लू की संस्था ऐक्टिव मोनाल कल्चरल ऐसोसिएशन के कलाकारों ने प्रस्तुत किया। नाटक पंचतन्त्र की कथा 'विष्णु रूपी जुलाहा' से बांग्ला लेखक राजा चट्टर्जी ने विकसित किया है और प्रख्यात लेखिका व रंग व्यक्तित्व नूर ज़हीर ने इसका हिन्दी रूपान्तरण किया और हिमाचली परिवेश में इसे मैंने (केहर सिंह ठाकुर) ढाला और इसका निर्देशन करने के साथ साथ अभिनय भी किया। इसमें हमारी झटपट

चमत्कार की ओर आकर्षित होने की और किसी को भी अवतार मानने की हिन्दुस्तानी वृत्ति को व्यंग्य से उभारा गया। बाहरी रूप से हास्यपूर्ण लगने वाला यह नाटक जो एक जुलाहे के लड़के की राजकुमारी के साथ प्रेम कहानी है, जिसमें जुलाहे का लड़का राजकुमारी को पाने के लिए झूठ मूठ का भगवान विष्णु बनता है, गहरे में मनुष्य की राजनैतिक महत्वकांक्षा और देश के महत्वकांक्षी राजा के आसपास रहने वाले चाटुकारों, जो अपने आप को राजा और देश का वफादार दिखाते हैं और भीतर से इतने स्वार्थ से भरे और मौका परस्त होते हैं कि अपने फायदे के लिए देश के प्रमुख से प्रजा पर तरह तरह के कर लगवाते हैं, यहां तक कि दूसरे राज्यों पर आक्रमण कर उन्हें कब्ज़े में करने को भी विश्व शान्ति के लिए आवश्यक कहते हैं, को दिखाता है। यहां तक कि राजा से यह कहकर भी प्रचार करवाते हैं कि राजा के पूर्वज स्वर्ग से उतर कर आए हैं जन गण की सेवा के लिए और इस तरह राजा 'भगवान का पूत' है। नाटक में आश्चर्यजनक एवं व्यंग्यात्मक मोड़ तब आता है जब भगवान विष्णु भी ब्लैकमेल हो जाते हैं और अपना अस्तित्व खतरे में पाकर नकली विष्णु अर्थात जुलाहे के लड़के की युद्ध में मदद कर राजा को जिता देते हैं क्योंकि वह जुलाहा विष्णु बन कर युद्ध में जाता है। अन्त में मंत्री कहता है कि यह तो कोई विष्णु नहीं है बल्कि जुलाहे का लड़का है तो राजा और राजपुरोहित आदि उसके चमचे यह कहकर प्रचार करते हैं कि यह जुलाहा अवतार भगवान विष्णु हैं और सारी प्रजा से उसकी जय जयकार करवाते हैं। नाटक हिमाचली परिवेश में ढाला गया है और हिमाचली गीतों का समावेश भरपूर किया गया है। साथ ही साथ हिमाचली किंवदंतियों व देवभारथाओं के अनुसार सृष्टि का आरम्भ कैसे हुआ पर आधारित एक गीत तथा देव संस्कृति पर आधारित ध्वजा नृत्य इस्तेमाल भी किया गया था। नाटक की प्रस्तुति आधुनिक नाटकों की ब्रेख्तियन शैली और हिमाचली लोक नाटयों व लोक संस्कृति के परिशुद्ध समिश्रण को आधार में रखकर परिकल्पित किया गया था। नाटक इससे पहले भी देश व प्रदेश के बहुत से शहरों में सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया गया है। इस संध्या लोकनाट्यों की कड़ी में स्वर संगम लोक कला मंच शिमला के कलाकारों ने 'करियाला' प्रस्तुत कर दर्शकों का खूब मनोरंजन किया। 17 मार्च की शाम उड़ान थिएटर ग्रुप बिलासपुर के कलाकारों ने सआदत हसन मण्टो की प्रसिद्ध कहानी पर आधारित नाटक 'खोल दो' प्रस्तुत किया। निर्देशन युवा रंगकर्मी अभिषेक डोगरा का रहा। नाटक भारत पाक बंटवारों की पृष्ठभूमि पर बुना गया था। उसी शाम माण्डव्य कला मंच मण्डी के कलाकारों ने लोकनाट्य 'बांठड़ा' प्रस्तुत कर दर्शकों को खूब हंसाया। नाट्योत्सव के समापन पर 18 मार्च की संध्या स्टैप्को नाहन के कलाकारों ने रजित सिंह कंवर के निर्देशन में गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर का विश्व प्रसिद्ध नाटक 'डाकघर' प्रस्तुत किया। और साथ ही महादेव खेल एवं सांस्कृतिक कला मंच, किन्नौर के कलाकारों ने लोकनाट्य 'हॉरिङ फो' प्रस्तुत कर उपस्थित दर्शकों का खूब मनोरंजन किया।

सम्पर्क : अभिनेता, लेखक एवं निर्देशक, कुल्लू हि.प्र.।
मो. : 9816147176

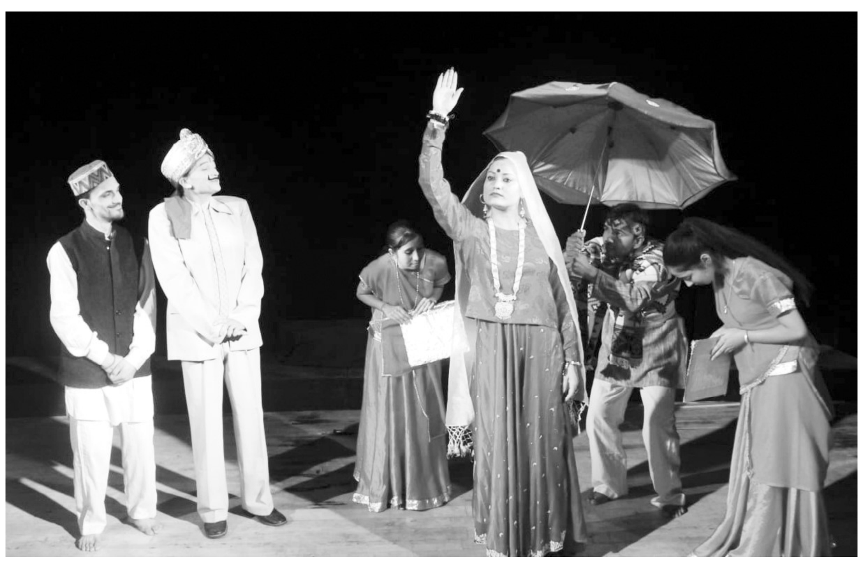

साहित्य हमारी आत्मा को झकझोरता है और उत्सव इसे नयी पीढ़ी तक पहुंचाते हैं

✍ कमलेश भारतीय

साहित्य हमारी आत्मा को झकझोरता है और उत्सव इसे नयी पीढ़ी तक पहुंचाते हैं। कुछ कुछ ऐसा ही जादू कर दिखाया कुल्लू साहित्योत्सव ने! इसने न केवल झकझोरा, आत्मा को जगाया बल्कि विचार के लिए अनेक बिंदु दिये। साथ ही साहित्य को नयी पीढ़ी तक पहुंचाया भी।

अभी चार दिन मैं धर्मशाला, हिमाचल में बिता कर हिसार लौटा ही था बल्कि लौटा भी नही था कि हिमतरु प्रकाशन समिति के समन्वयक व चार साल पहले मिले मनाली में मिले बने मित्र किशन श्रीमान् व रमेश पठानिया ने कुल्लू के साहित्योत्सव का निमंत्रण दिया तब मैंने एक बार तो असमर्थता जताई कि लम्बी अस्वस्थता के बाद दूसरी लम्बी यात्रा करना मुश्किल लग रहा है। पहले पता होता तो मैं एकबार ही कार्यक्रम बना लेता। फोन नीलम ने भी सुना और पूछा–आपका दिल है कुल्लू जाने का?

– हां, है तो! मैंने उदास होकर कहा।

– फिर फोन करो उनको कि हम आयेंगे। और मैंने श्रीमान् को फोन कर आने की सहमति दे दी। धर्मशाला से लौटते ही कुल्लू की तैयारियों में जुट गये हम तीनों और इच्छा थी कि 27 फरवरी को ही पहुंच पाऊं और उद्घाटन में भी मौजूद रहूँ लेकिन ऐसा हो न सका। हम 28 को ही निकल पाये और बीच में मंडी में तीन बजे से साढ़े चार बजे तक रुकना पड़ा क्योंकि कोई विकास कार्य चल रहा है और यह रोज़ ही होता है। आखिर हम सात बजे के करीब पहुंचे तब किशन श्रीमान् ने कहा कि आप एक बार सीधे देव सदन आ जाओ और अभी चल रहे सांस्कृतिक कार्यक्रम का आनंद उठाओ। थके होने के बावजूद इस सांस्कृतिक कार्यक्रम ने हमारी थकावट उड़न छू कर दी। पहले कुछ काव्य पाठ चल रहा था और फिर कबीर के दोहे और अंत में आज जाने की जिद्द न करो के साथ यह शाम सिमट गयी। आज ही तो साहित्योत्सव का उद्घाटन हुआ था, आज जाने की जिद्द कौन करता पर इस मधुरता से पहले दिन की शाम संपन्न हुई। संचालन रेखा ठाकुर और डॉ हेमराज ने किया।

वैसे जो पहले दिन मैं आ न सका उसमें प्रसिद्ध पर्यावरणविद् व पहाड़ पर भरपूर काम करने वाले शेखर पाठक ने पहाड़ व जीवन को एक होकर साहित्य में पर्यावरण को बचाने का संदेश दिया और दिल्ली से आई प्रो. नीलम ने नारी अस्मिता पर बात रखी, जिसमें तीन देवियों लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा का उदाहरण देते कहा कि असल में इन पर पुरुष का ही कब्ज़ा है और इनकी शक्तियों का नियंत्रण पुरुष के ही हाथ में है, जिसके कारण नारी पर अपराध बढ़ते जा रहे हैं। हेमलता महीश्वर ने आदिवासी जनजीवन की व्यथा को सामने रखा और उनकी तीजन बाई के बहाने लिखी कविता भी बहुत मार्मिक रही और उनकी आदिवासी जीवन पर अध्ययन की गहराई की ओर संकेत कर गयी। इस तरह पर्यावरण, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श पहले दिन की चर्चाओं के विषय रहे। सबसे बड़ी बात कि विभिन्न क्षेत्रों से, विभिन्न जगहों से युवा बड़ी सख़्या में इसमें भागीदारी निभाने आये यानी साहित्य और आज की चिंताओं को बड़ी ही गंभीरता के साथ नयी पीढ़ी तक पहुंचाने में यह साहित्योत्सव कामयाब कहा जा सकता है और सफल नहीं रहा भी।

अटल सदन में रात्रिभोज में सबसे थोड़ा थोड़ा मिलना हुआ लेकिन यह भांपने में देर नहीं लगी कि सुबह बहुत शानदार और भव्य उद्घाटन हुआ होगा। हमारी व्यवस्था सर्किट हाउस में थी तो हम वहाँ पहुंचे और दिन भर की थकान ने हमें अपनी बाहों में लेकर सुख सपनों में ले जाने में देर नहीं लगाई।

दूसरी सुबह नाश्ते पर फिर अटल सदन में सभी इकट्ठे हुए और पहले सत्र की शुरुआत दो जुड़वां बहनों पूर्वा और प्राची की बीस मिनट की फिल्म 'रजस्वला' से हुई, जिसमें पहाड़ में रजस्वला के तीन दिन के दौरान हर उम्र की नारी को जिन स्थितियों का सामना करना पड़ता है, उनका खूबसूरत फोटोग्राफी के साथ फिल्मांकन किया इन युवाओं ने! बीस मिनट की फिल्म ने विचार के लिए झकझोरा और प्रश्नोत्तर भी हुए। इनके बाद बंजार से देश दुनिया तक पहुंचे वरयाम सिंह ने हिमाचल की भाषाओं पर सारगर्भित व्याख्यान दिया और बताया कि आजकल वे इस पर काम कर रहे हैं। वरयाम सिंह ने रुसी भाषा और हिंदी के बीच एक पुल का काम किया, जिस योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। हिमाचल के वरिष्ठ लेखक डॉ सुशील कुमार फुल्ल ने अध्यक्षता की इस सत्र की और प्रसन्नता व्यक्त की कि कुल्लू की हिमतरु प्रकाशन समिति और भाषा व सस्कृति विभाग ने ऐसा कार्यक्रम किया।

इनके बाद गाजियाबाद से आमंत्रित फिल्म विशेषज्ञ संजय जोशी ने विनोद कुमार शुक्ल की कविता के प्रभावशाली पाठ के बाद भुवन शोम, पाथेर पंचाली और एक अन्य फिल्म के अंश दिखाकर फिल्म, फिल्मांकन, विचार और सिनेमा की ताकत के बारे में विस्तार से बताया। उनका कहना था कि बिना संवाद के खूबसूरत फिल्मांकन कैसे दर्शकों पर असर छोड़ता है और कि साहित्य से फिल्म तक, का माध्यम कैसे एकदम अलग हो जाता है। यदि वनमाली की कहानी पढ़ें और फिल्म देखें तो निराशा हाथ लगेगी क्योंकि सिनेमा एक अलग माध्यम है। यह संकेत था कि साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाना आसान काम नहीं। इस प्रभावशाली सत्र के बाद दोपहर का भोजन और भी स्वादिष्ट लगा। किताबों की प्रदर्शनी में कुछ पुस्तकों के कवर देखे, पन्ने पलटे और फिर दोपहर बाद का सत्र काव्य पाठ को समर्पित रहा, जिसका संचालन शिमला से आई युवा रचनाकार दीप्ति सारस्वत प्रतिमा ने किया। इसमें नयी प्रतिभाशाली कवयित्री रोमिता शर्मा मीतू की कविता 'रोपनी' ने खूब ध्यानाकर्षित किया।

शाम सात बजे के बाद अटल सदन का आंगन खूब भर गया, अलग अलग समूहों में सभी बैठ कर जान पहचान के साथ बतियाते लगे। हम प्रसिद्ध पर्यावरणविद् शेखर पाठक, दिल्ली से आईं प्रो नीलम, हेमलता महीश्वर, हिमाचल के चर्चित कवि गणेश गनी आदि के साथ बतियाते रहे कि बीच में से अचानक

गायब होकर गणेश गणी प्रकटीकरण हुए कुल्लू के प्रसिद्ध सिड्डू के तीन पैकेट के साथ कि इनका स्वाद चखिये! गर्मागर्म सिड्डु खूब भाये और सबने खूब खाये स्वाद ले लेकर! इतने में बेटी रश्मि आई और बताया कि पापा, अंदर तो कवि गोष्ठी चल रही है। आप भी आ जाओ। सभी अंदर चल दिये।

यह अनौपचारिक कवि गोष्ठी थी, जिसका संचालन संभाला चर्चित कवि अजेय ने और यह अनौपचारिक कवि गोष्ठी एक यादगार गोष्ठी बन गयी। इसमें शेखर पाठक ने पहाड़ की चिंता को लेकर बहुत छोटी सी लेकिन बहुत गहरी कविता सुनाई कि बस ड्राइवर हम तुम्हें पहाड़ का सब कुछ देंगे पर तुम हमें राजधानी लेकर चल क्योंकि हमने राजधानी से अपना गांव छुड़ाकर लाना है। इसी प्रकार प्रो नीलम की कविता– सबसे खराब लड़की भी याद रहने वाली है कि यदि लड़की तर्क वितर्क करती है तो वह सबसे खराब लड़की है। रमेश पठानिया की घर को लेकर सुनाई कविता भी साथ रहेगी।

तीसरे और अंतिम दिन हरिपुर में पेंटर आर्टिस्ट डॉ संजू पॉल की आर्ट गैलरी माइंडस्केप का उद्घाटन करते लिखा अपना संदेश कि पहाड़ हमें मनुष्य बनाने हैं। फिर सबने आर्ट गैलरी की विविध पेंटिंग्स का अवलोकन किया। इतने में बारिश ने जोर मारना शुरू कर दिया, फिर भी वाटरप्रूफ शामियाने ने लाज रख ली और गर्मागर्म चाय के बाद कुल्लू व आसपास की महिला पत्रकारों को कुल्लू प्रेस क्लब की ओर से शेखर पाठक ने सम्मानित करने के बाद कहा कि यह सम्मान पुरुषों को नारी की गरिमा और सम्मान देने से सचमुच पुरुष को मनुष्य बनाता है और

कि महिला पत्रकारों पर भी खतरे बढ़ रहे हैं। डॉ संजू पॉल की आर्ट गैलरी पर कहा कि इनकी पेंटिंग्स में विचार, यथार्थ और रंगों के साथ साथ हिमालयी विरासत दिख रही है। यह रोरिक की अगली कड़ी है। हमें इस हिमालयी विरासत को बचाना ही नहीं आगे भी बढ़ाना है। तेज़ बारिश के बीच ही स्वादिष्ट दाल भात परोसा गया और फिर यह काफिला चला नग्गर की रोरिक आर्ट गैलरी की ओर। जैसे ही नग्गर पहुंचे बारिश हिमपात में बदल चुकी थी, जिसके चलते जिन्होंने हिम्मत की, वे तो आर्ट गैलरी का आनन्द ले आये पर मैं अपनी ताज़ा अस्वस्थता से और डॉ सुशील कुमार फुल्ल अपनी उम्र के पड़ाव से डरते आर्ट गैलरी देखने ही नहीं उतरे और बस में ही बर्फबारी का आनंद लेते रहे। हमारे साथ रमेश मस्ताना और प्रभात शर्मा भी थे, जिन्होंने पहाड़ी कविताएँ सुनाईं। इस तरह अटल टनल का कार्यक्रम रद्द कर कुल्लू की वापसी करनी पड़ी। अटल सदन पर आते ही उत्सव के साथी एक एक कर बिछुड़ने लगे और हल्की सी उदासी ने घेर लिया। कल यही आंगन कितना भरा भरा और खिला खिला था और आज सूना हो गया। सन्नाटा छा गया। बाज़ार घूमने का एक बार कदम उठाया पर ठंड का इतना तेज़ झोंका आया कि विचार बदल लिया और हम अटल सदन और देव सदन में आयोजित साहित्योत्सव की मधुर स्मृतियों के साथ सर्किट हाउस लौट गये।

इस साहित्योत्सव से मैं अनेक नये पुराने मित्रों की यादें लेकर लौट रहा हूं। कुछ पुराने मित्र जैसे डॉ सुशील कुमार फुल्ल, शेखर पाठक, संजय जोशी, हेमा महीश्वर, रत्न चंद निर्झर, किशन श्रीमान्, रमेश पठानिया, निरंजन शर्मा, प्रतिमा शर्मा, डॉ राजेन्द्र पॉल, पौमिला ठाकुर, रमेश मस्ताना, प्रभात शर्मा, प्रो नीलम, प्रदीप सैनी, रोमिता शर्मा मीतू, अनंत आलोक और भी नये मधु, स्मृति, रेखा ठाकुर, प्रवीण आदि आदि... सब बहुत याद आते रहेंगे और सबसे बढ़कर वे विचार और संस्कार मिले इस उत्सव से, वे सदैव साथ रहेंगे और इंतज़ार रहेगा कुल्लू साहित्योत्सव का!

बहुत याद आयेगा किशन श्रीमान् और रमेश पठानिया और समग्र हिमतरु प्रकाशन समिति का यह आयोजन।

संपर्क –पूर्व उपाध्यक्ष, हरियाणा ग्रंथ अकादमी। 1034 बी, अर्बन एस्टेट–2, हिसार –125005 हरियाणा।

मो. : 9416047075

लाहुल में 1979 का हिमस्खलन : हिम के साथ पिघलते लोगों की व्यथा-कथा

✍ छेप राम

किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि बर्फ के जो तुहिन कण चराचर में प्राण फूँक कर धरा की तृषा को शांत करके प्रकृति में नवजीवन का संचार करते हैं, वही कोमल बर्फ की श्वेत फाहें एक दिन नश्वर जगत में घोर विनाश का कारण बन कर मानव को निराशा, पश्चाताप और गहरे अवसाद का ज़ख्म भी दे सकते हैं। प्रकृति का ऐसा विकराल रूप शायद ही कभी घाटी के बुजुर्गों ने अपनी बुझती हुई आँखों से देखा होगा। लोग 1979 की हृदय विदारक घटना का विवरण आज भी एक लम्बी उसांस लेकर सुनाते हैं, और उनकी आँखें नम हो जाती हैं। यद्यपि लाहुल में पूर्व भी हिमस्खलन के कारण लोगों ने अपनी जानें गवाई हैं, लेकिन 1979 के हिमस्खलन की गर्जन ने लाहुल वासियों के कानों में ताला लगा दिया था। सन् 1868 में हिमस्खलन से त्रिलोकनाथ का सारा गाँव नष्ट हो गया था और मात्र अवलोकितेश्वर का मंदिर बच गया था।[1] संभवतया इसी घटना का उल्लेख करते हुए वोगल लिखते हैं कि 1863 ई. के आसपास समूचा गाँव हिमस्खलन में बह गया था और 60 लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा।[2] खैर! पहाड़ियों पर हरहराती बर्फीली हवाओं के भीषण प्रकोप का दंश तो लोग आज भी झेल रहे हैं लेकिन आज परिस्थितियाँ बहुत बदल चुकी हैं।

धर्म शास्त्रों में जहाँ एक ओर धरती को माता की संज्ञा दी गई है, तो दूसरी ओर प्राकृतिक शक्तियों की पूजा का विधान है। प्रकृति हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है, लेकिन हमारी इच्छाओं, अभिलाषाओं और आकाँक्षाओं की नहीं। मार्च 1979 में घटित हिमस्खलन की घटना को यदि प्रकृति का भीषणतम क्रूर रूप कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस हिमस्खलन की दुःखद त्रासदी ने लगभग सभी लाहुलवासियों के मन-मस्तिष्क को अंदर तक झखझोर कर रख दिया। इस हिमस्खलन में जिस्पा, युरनद, गुस्क्यर, यड्.लिङ, जुंडा, गाल्लीं, बरदङ, शकौली और हिंसा के गाँव सबसे ज़्यादा प्रभावित हुए और जान-माल का काफी नुकसान हुआ। इस त्रासदी में लगभग 200 से अधिक लोगों की जान चली गई और लोगों के घर-द्वार में सन्नाटा पसर गया। स्वास्थ्य, बिजली और संचार जैसी मूलभूत सुविधाओं से वंचित इस घाटी में इस प्रकार की आपदा की परिकल्पना से आज भी हाथ-पैर काँपने लगते हैं। मौत... वह भी ठंडी मौत। आँखों के सामने लहू-लुहान देह और लोग असहाय, विवश और लाचार। लोगों की चीख पुकार कुछ पल के लिए तो पहाड़ों तक जाती और प्रत्युत्तर में फिर से चीख पुकार ही सुनाई देती। गड़ङ और वारिङ गाँव में तो एक भी घर नहीं बचा। काश! बर्फीली तूफान से बचने की कोई तदबीर रही होती।

“बर्फ के ठंडे मरुस्थल में
हवाओं की साजिश
और
नियति की
रंजिश तो देखो,
चूल्हा बुझ गया
राख उड़ गई
साँसें थम गईं
आँधी की वात का उपधान
लेकर
‘गड़ङ’ और ‘वारिङ’ गाँव की
खामोशी भी सो गई”

पट्टन घाटी के निम्नांचल में कुँह के पश्चात् सिल-पुना का दौर चल पड़ता है। लोग अपने-अपने सगे-सम्बन्धियों के पास क्वाबि अर्थात् ठेल (अभिवादन की परम्परा) के लिए

जाते हैं। बरदङ, शकौली और पिमल गाँव के आसपास के लोग क्वाबि की परम्परा का निर्वहन करने के पश्चात् पुना के दिन गुयों (जुलूस) की भूमिका में भगवान् त्रिलोकनाथ तथा नाग देवता (हिंसा) के लिए दीप-दान और यौरा (जौ के पीले फूल) अर्पित करने जाते हैं। आस्था और विश्वास की यह पावन परम्परा सदियों से चली आ रही है, परिणामस्वरूप आज भी लोग बुजुर्गों द्वारा प्रदत्त परम्पराओं, संस्कारों और विधि-विधानों का पालन करते हैं। इस बीच लोग सज-धज कर हर्षित मन से हिंसा और त्रिलोकनाथ में अपने-अपने रिश्तेदारों के पास क्वाबि के लिए जाते हैं। लोग हिंसा गाँव होते हुए त्रिलोकनाथ जाते हैं क्योंकि लोगों को नाग मंदिर में भी दीप-दान आदि करना पड़ता है। विशेषकर सिल-पुना के दौर में लोग घर-गाँव लाँघना अशुभ मानते हैं। 1979 के पुना में भारी बर्फवारी के कारण बरदङ, शकौली आदि गावों से लोग पहुँचे ही नहीं थे जबकि पिमल, नुजुम, चेल्ली आदि गावों से छिटपुट लोग ही हिंसा पहुँच पाए थे। किसे पता था कि सिल-पुना की यह शुभ घड़ी रौद्र रूप ले कर आएगी और घर-परिवार के लोगों को बिलखता छोड़ कर लोगों की खुशियों को चीख-पुकार में तब्दील कर देगी।

5 मार्च की सुबह लोग जल्दी-जल्दी छोटे-बड़े कार्यों से निवृत्त हो कर आतिथ्य-सत्कार में लगे हुए थे। सिल-पुना के दिनों में गाँव से बाहर ब्याही औरतें अपने-अपने परिवार सहित अपने मायके आते हैं। मायके वाले भी पहले से तैयारी कर रखते हैं, अतः इस शुभ घड़ी का सभी को विशेष इन्तज़ार रहता है। भारी बर्फबारी के कारण बहुत कम लोग ही हिंसा पहुँच पाए थे, क्योंकि बर्फ लगातार गिर रही थी और रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। धीरे-धीरे फागली का रंग चढ़ने ही लगा था कि सुबह के लगभग 9—10 बजे थे कि ह्यूँना के बर्फ की विशाल चट्टान ने हिमस्खलन का रूप ले लिया और हिंसा गाँव को रौंदता हुआ चंद्रभागा में पहुँच गया। गाँव वालों ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि प्रकृति एक दिन ऐसा कहर भी ढा सकती है। रूह को कंपाने वाले इस निर्मम हिमस्खलन में सुमति परिवार के दो घर तबाह हो गए और 11 लोगों की जान चली गई। चदरू परिवार में दो बच्चों सहित एक दम्पति (दिवंगत बलदेव और नरेणी) को भी जान से हाथ धोना पड़ा। कहा जाता है कि अलमारी में मिट्टी का तेल रखा हुआ था और परिवार के लोग छोटे-बड़े कार्यों में व्यस्त थे। मकान के हिम स्खलन की चपेट में आने के कारण अलमारी से मिट्टी का तेल तंदूर पर आ गिरा और आग पकड़ लिया। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार सभी दिवंगत लगभग इस दहकती आग में झुलस चुके थे। नुरदा परिवार में चार लोग इस अप्रत्याशित क्रूर घटना के शिकार हुए। एक माँ और बेटे को तीन दिनों के बाद ही बर्फ के मलवे में से निकाला जा सका। मलवे में फँसे होने के कारण एक ममतामयी माँ ने अपने बेटे को अपने आँचल की छाँव में तीन दिनों तक चिपकाए रखा, लेकिन नियति को कुछ और ही मंजूर था। आखिर तीसरे दिन गाँव वालों ने उन्हें खोज ही निकाला। संयोगवश माँ तो बच गई लेकिन बच्चे को नहीं बचा पाए। बर्फ की चट्टान के नीचे दबी माँ (टिम्बरु) का कहना है कि गाँव के बचाव दल के लोगों की बातें उन्हें स्पष्ट सुनाई देती थी, लेकिन असहाय, विवश और काल के पंजों में कैद! भला क्या करती? माँ टिम्बरु उस निर्दयी और क्रूर घटना को याद करके आज भी भावुक हो जाती है। हिम-स्खलन के समय जीवन और मृत्यु के इस अंतराल में इसी परिवार के सेठ हीरा सिंह की बुआ श्री मती नन देई किसी काम से बच्चों के साथ बलकोरना परिवार के घर गई हुई थी, संयोगवश सभी बच गए। हिम्बाडू परिवार ने भी इस हिमस्खलन में दो छोटे बच्चों सहित चार लोग गवां दिए। सोचते हुए लिखना पड़ रहा है कि विधाता भी कभी इतना क्रूर हो सकता है। बड़े तो बड़े लेकिन छोटे-छोटे बच्चों को भी नहीं बख्शा, जिन्होंने अभी-अभी जीवन के बसंत पर कदम रखा था। कहते हैं कि इस परिवार में एक महिला बच्चे को नहला रही थी और दूसरा उसे गोद में लेने के लिए चादर तपा रहा था। माँ के दुर्भाग्य का सागर तो देखिये! जैसे ही बच्चा गोद में रखता है सभी हिमस्खलन की चपेट में आ जाते हैं और सभी मृत्यु

की गोद में समा जाते हैं।

झुर्रियों के दलदल में डूबती हुई आँखों में कैद 1979 के काले दिनों को याद करते हुए बरदङ निवासी श्री राम दास जी (तागी) अतीत की स्मृतियों में खो जाते हैं और बरबस ही लम्बी साँस ले कर उस हृदयविदारक घटना को सुनाते हैं। जब श्री राम दास जी से उक्त घटना के बारे में पूछा गया तो उन्होंनें लगभग 43 वर्ष पूर्व में घटित हृदयस्पर्शी दास्ताँ को ऐसे सुनाया जैसे वह घटना अभी कुछ पल पहले ही उनकी आँखों के सामने घटी हो। उनके अनुसार 4 मार्च को पुना का त्योहार था। परम्परा के अनुसार इस दिन बरदङ, शकौली, चेल्ली, पिमल तथा आसपास के सभी गावों के लोगों को मिलजुल कर जुलूस की शक्ल में जय जयकारों की गूँज के साथ हिंसा नाग मंदिर तथा त्रिलोकनाथ जी के लिए दीप-दान पहुँचाने के लिए जाना होता है। साथ-साथ क्वाबि का सिलसिला भी चलता रहता है। लेकिन इस बार भारी बर्फबारी के कारण हिंसा नाग मंदिर तथा त्रिलोकनाथ पहुँचना तो दूर, साथ लगते दो छोटे-छोटे गाँव बरदङ और शकौली के लोग भी इकट्ठे नहीं हो पाए थे। हर्षोल्लास और भाईचारे के इस त्यौहार में लोग अपने-अपने घरों में दुबकने के लिए मजबूर हो गए थे, लेकिन गाँव में भला खाने-पीने का दौर कब तक रुका रहता? उस दिन बरदङ गाँव के लेगी परिवार में शोद (शोक समाप्ति की रस्म) परोसा जा रहा था अतः हिमस्खलन संभावित उड़नाला के बाएं पार्श्व में अवस्थित बरदङ, चड़ङ और मूरिङ के लोग दिनभर खाने-पीने में व्यस्त थे।

दूसरे दिन अर्थात् 5 मार्च को दिन के लगभग ढाई-तीन बजे थे। अचानक बर्फ की चट्टान निर्मम हिमस्खलन का रूप धारण कर शकौली गाँव को अपने आगोश में ले लिया। इस हिमस्खलन में शक्तु परिवार में तीन बच्चों ने अपनी जान गवां दीं। एक तो अभी दूध पीता बच्चा था, जबकि एक तीन साल की बच्ची और एक किशोरावस्था में कदम रखने जा रही थी। छ-ठौरा परिवार में कई लोग बर्फ के नीचे दब गए, जिन्हें समय रहते बचा लिया गया। बरदङ गाँव से राम दास, मंगल चंद, दिले राम तथा सुख दयाल इस भूस्खलन का जायज़ा लेने के लिए गाँव से नीचे खईंदी नामक स्थान तक गए ताकि हिमस्खलन का जायज़ा ले सके। उन्होंने बर्फ की फैलती धुंध में कोलास नामक स्थान के आस-पास कुछ गिरे हुए पेड़ों को देखा। लेकिन यत्न करने पर भी ये लोग मदद के लिए शकौली नहीं जा पाए क्योंकि उड्ना (नाला) की गिनती तब भी हिमस्खलन की दृष्टि से संवेदनशील नालों में होती थी।

6 मार्च अर्थात 5 मार्च, 12 बजे के बाद की रात्रि के आस-पास हुए विनाशकारी हिमस्खलन ने बरदङ गाँव के छ-पठा और खाँरदी गाँव को चपेट में ले लिया। छ.पठा में चड़ाफा

परिवार में एक दम्पति, बेटे और दो बेटियों सहित काल के शिकार हो गए। इस त्रासदी का शिकार दिवंगत पदम लाल के बड़े भाई पुरम चंद को ज़ख्मी हालत में बचा लिया गया। पुरम चंद का लड़का बीर चंद उस दिन घर में नहीं होने के कारण मृत्यु के मुँह से बच गया। इधर पिमल गाँव के लोप्पा परिवार से दिवंगत लेख राम नामक अभागा भी खाँरदी गया हुआ था, वह भी मृत्यु को प्राप्त हो गया। इस प्रकार छ-पठा में घटित हिमस्खलन में चड़ाफा परिवार सहित कुल छह लोगों की दर्दनाक मौत हो गई। मकान के दबने के कारण सभी माल-मवेशी भी दम घुटने या कुचले जाने के कारण मारे गये और जो बच भी गए थे उन्हें कंपकपाती ठण्ड ने ठण्डा कर दिया। हिमस्खलन के विराट रूप ने छ-पठा से लगभग 100 मीटर नीचे खाँरदी में एँगारी परिवार को भी बूरी तरह से तबाह कर दिया। इस अप्रत्याशित हादसे में श्री बलबीर के पिताजी, एक भाई और दो मासूम बेटियों सहित चार लोगों की दर्दनाक मौत ने सभी को भाव-विह्वल कर दिया। इस परिवार के तहस-नहस हो चुके घर में बाकी लोग कुदरत के इस प्रकोप से सकुशल बच गए। बलबीर जी उन दिनों में शमशी (कुल्लू) में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इस विपदा की घड़ी में उन्हें बीच में ही पढ़ाई छोड़ कर घर आना पड़ा। खाँरदी में ही एक अन्य एँगारी परिवार में किरपाराम की माताजी और भाई सजे राम संयोग से इस त्रासदी से बच गए। इस परिवार के सजे राम जी को हिमस्खलन की तेज़ आँधी ने बिस्तर सहित ही खिड़की से बाहर फैंक दिया था।

इस दुर्भाग्यपूर्ण त्रासदी पर प्रकाश डालते हुए गाँव वाले आगे बताते हैं कि 6 तारीख को सभी मृतकों का विधिवत् दाह संस्कार किया गया। शाम को बुद्ध राम (चड़ङ) राम दास, दिलेराम, मंगल चंद (बरदङ) और दिले राम (शकौली) खाँरदी में ही रुक गए। आज राम दास और मंगल चंद ही जीवित हैं। इन दोनों का कहना है कि 6 तारीख को लगभग रात 11 बजे एक बार फिर हिमस्खलन हुआ और छत के ऊपर से निकल गया। बाहर निकलने का रास्ता भी अंदर से अवरुद्ध हो गया। सब ने मिल कर रात को ही द्वार से बर्फ हटाया और बाहर का रास्ता निकाल खोजा लेकिन दो-तीन घंटे के अंतराल में लगभग 2 बजे के आस-पास फिर से आए भूस्खलन के कारण दम घुटने के कारण बहुत से माल-मवेशियों की जान चली गई और हम देखते रह गए। 7 तारीख की सुबह राम दास और मंगल चंद ने बरदङ पहुँच कर गाँववालों को रात की दयनीय स्थिति से अवगत कराया और सभी गाँव वालों को साथ ले कर पुनः खाँरदी पहुँचे। कहते हैं कि एक बार फिर से हिमस्खलन हुआ लेकिन गाँव वालों की किस्मत अच्छी थी कि छ-पठा में ही रुक गया। सभी गाँव वालों ने मिल कर निर्मम हिमस्खलन के हृदय विदारक त्रासदी से बचे हुए लोगों (सजे राम, धर्म दासी, राम देई, प्रभी और निहाल चंद) को बरदङ पहुँचाया, जहाँ लगभग एक सप्ताह तक राम दास (तागी) के घर रहे थे। 13 मार्च को चेतरोड़ि के दिन गाँव वालों के सहयोग से सभी लोगों को खाँरदी पहुँचाया गया।

साहनी के अनुसार 6 मार्च की मध्य-सुबह पट्टन के ऊपरी क्षेत्रों के लोग अपने-अपने घरों के छत की बर्फ को हटाने में लगे हुए थे कि घाटी के लोग हिमस्खलन की चपेट में आ गए। यद्यपि लोगों ने हिमस्खलन को भांप लिया था लेकिन कुछ भी नहीं कर सकते थे। बचाव दल के समय पर नहीं पहुँचने के कारण बहुत से लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा। कहा जाता है कि इस वज्रपात से पूर्व वारिङ की एक लड़की ने अपने माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों को बताया कि उन्हें हिमस्खलन की आशंका हो रही है, लेकिन घर के सदस्यों ने यह कह कर पल्ला झाड़ दिया कि यहाँ पूर्व में कभी हिमस्खलन नहीं हुआ है तो इस बार कैसे हिमस्खलन हो सकता है? लड़की उस स्थान को छोड़ कर कहीं ओर चली गई और संयोगवश बच गई। अनुश्रुति के अनुसार कई वर्ष पूर्व योचे़ गाँव में हिमस्खलन के कारण पूरा गाँव ही दब गया और कोई भी जीवित नहीं बचा। एक बूढ़ा आदमी जो तबाही से एक या दो दिन पूर्व किसी काम से पहाड़ की ओर चला गया था, उन्होंने

वापिस आ कर बताया कि उन्हें इस अनहोनी की खबर पहले ही हो गई थी। बाद में उस घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने लोगों को बताया कि अनोखे वस्त्रों से सुसज्जित वादक मंडली नृत्य कर रहे थे, अर्थात् बर्फ से लदे पहाड़ की चोटी पर कोलाहल करते हुए मनोरंजन कर रहे थे।

तोबदन, आठ मार्च 1979 को लाहुल में हुए विनाशकारी हिमस्खलन की दुर्घटनाएं : एक विवरण में लिखते हैं कि "8 मार्च 1979 का दिन, जब सारे लाहुल में व्यापक रूप से हिमस्खलन की अनेक दुर्घटनाएं घटीं, लाहुल के इतिहास में अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण और अविस्मरणीय दिवस था।"[3] लाहुल में ये दुर्घटनाएं अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग समय में घटित हुईं। मूलभूत सुविधाओं के अभाव में सांसारिक चकाचौंध से कोसों दूर की इस शांत घाटी में जब जीवनदायिनी बर्फ की कोमल फाहें हिमस्खलन का रूप ले कर कहर बरपाती हैं तो, यहाँ सन्नाटा ही करवट लेती है। लोगों की चीख पुकारों का प्रत्युत्तर पहाड़ तो देते हैं लेकिन सुनने वाले कुछ भी नहीं सुन पाते। क्योंकि अधिकतर चीखें ठंडी साँसों में तब्दील हो जाती हैं और चारों ओर कोहराम मच जाता है। इस विनाशकारी हिमस्ख्लन में कई घरों के चिराग बुझ गए। चाहे बच्चे हों या बुजुर्ग, बर्फ की चट्टान ने किसी पर भी रहम नहीं दिखाया। चाहे सोया हुआ अबोध बालक हो, हुक्का गुड़गुड़ाता बुजुर्ग हो या छतों से बर्फ हटाते युवक-युवतियां हों। जो जिस अवस्था में था, वहीं ढेर हो गया। पलक झपकते ही बहुत से गाँव तबाह हो गए। परिवार के परिवार खत्म हो गए और कुछ भाग्यशाली इस लिए बच गए कि या तो पढ़ाई के चलते घर से दूर थे या किसी रिश्तेदारों के पास सुरक्षित थे। इस विनाशलीला ने न केवल मानवों को प्रभावित किया बल्कि हज़ारों माल-मवेशी और जंगली पशु-पक्षी भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित हुए।

"सुदूर ठंड़े एकांत में
फैली हुई
श्वेत बर्फ की मखमली चादर
पहाड़ से दरक कर
गाँव की मुंड़ेर पर
बिछ गई थी
जिसके ऊपर
एक काली रेखा
उभर आई थी
मानो
किसी बंगड़ ने
गलती से स्याही गिरा दी हो
सामने खड़ी थी
निस्तब्ध पहाड़ की
निर्लज्ज नंगी पीठ
खेतों की मेंड पर
बिखरी पड़ी थी
खिड़कियों, दरवाज़ों
तथा
अलमारियों की पसलियाँ
खिंद-खँदौलू
काले मुरझाए बर्तन
एक बुझा हुआ
प्रागैतिहासिक टेबल लैंप
युवाओं, औरतों, बुजुर्गों
एवम्
बच्चों की अमर्यादित
नंग-धड़ंग लाशों का ढेर।"

मार्च एक-दो तारीख से ही लगातार बर्फ गिर रही थी और यह सिलसिला पाँच-छह दिनों तक जारी रहा। 3 मार्च 1979 के प्रलयंकारी अवधाव का उल्लेख करते हुए राजीव गोम्थङ्पा जी लिखते हैं कि, "..... जब होश आया तो मैंने अपने आप को किसी दूसरे के घर में पाया। अपने आस-पास के गाँव के लोगों को देख कर मैं परेशान हो उठा।" क्या बात है भइया, आप सब लोग एक साथ। और मेरी बीबी, मेरे बच्चे, मेरा परिवार, कहाँ पर हैं? मुझे यहाँ कौन लाया? तभी मेरे मित्र ने मेरे सर पर हाथ फेरते हुए मुझे बताया कि मैं अपना समूचा परिवार परसों रात आए ग्लेशियर में खो चुका हूँ। यह सुन कर मानों मुझ पर सैकड़ों बिजलियाँ एक साथ गिर पड़ीं। एक साथ अपने परिवार की आठ लाशों को देख कर मेरी आँखें फटी की फटी रह गईं।[4]

"बर्फ की चट्टान के
भीतर की खामोशी
हुक्के के गुड़गड़ाहट में
तब्दील हो कर
पूरे इलाके को निगल रही थी
बादलों के गहरे काले
धब्बों की ओट से

झांकता सूरज
बर्फ के अहंकार को
पी रहा था
और
पिघलते बर्फ के साथ
पिघलता हर दूसरा आदमी
आदमी होने की
सज़ा भुगत रहा था।''

1979 के हिमस्खलन में मयाड़ घाटी के चिमरट और चांगुट में सिर्फ बाड़े और घर के छत ही उड़े। जान-माल का कोई नुकसान नहीं हुआ। पट्टन घाटी में गड़ङ और वारिङ गाँव में एक भी घर नहीं बचा। इन दो गावों में 60 लोग बर्फ और मकान के मलवे के नीचे दब गए और ग्यारह घर समूल नष्ट हो गए। प्रारम्भिक बचाव अभियान में छह लोगों को बचाया गया, उनमें भी कुछ लोग बुरी तरह से ज़ख्मी और घायल हो गए। इन दो गाँवों में ही 48 लोगों की मृत्यु हो गई और पचास लोग पूरी तरह से बेघर हो गए। सैकड़ों माल-मवेशी मारे गए और लगभग 3000 के आसपास 'विलो' के पेड़ तबाह हो गए।[5]

अत्याधुनिक यंत्रों और सुविधाओं से युक्त पर्वतारोहण के लिए पुरस्कार दिए जाते हैं, खेल प्रेमियों को उत्कृष्ट योगदान के लिए सम्मानित किया जाता है, लेखकों को प्रोत्साहन राशि भेंट की जाती है। ये सब हमारे देश की गरिमा को गौरवान्वित करते हैं, अक्षुण्ण बनाए रखते हैं, यह हर्ष और संतोष का विषय है। लेकिन जो लोग बिना सुख-सुविधाओं और संसाधनों के हौंसले का उड़ान तय करते हैं, खाली हाथ ही मौत के साथ दो-दो हाथ करते हैं और मौत को भी मात दे देते हैं। उनकी उपलब्धि को कोई याद नहीं रखता, उन्हें कोई पुरस्कार नहीं दिया जाता है, और न ही उन का नाम 'गिनीज़ बुक' में दर्ज होता है। 1979 के इस अप्रत्याशित बर्फीले तूफान में अनेक लोगों ने अपनी जान गवां दी। काश! ये लोग भी बर्फबारी के बाद की पहली गुनगुनी ध ूप को महसूस कर पाते -

सुनहरे दिन
रुपहली रातें
और
चितकबरी यादों की बिवाई
बर्फबारी के बाद की
पहली धूप

छतों पर पैर लटका कर
सुरीली धूप के संग
सीगल की तरह उछलते
छोटे-छोटे नंगे पाँव
बर्फ की सिल्लियों का पिघलना
और
पानी पी कर जम जाना

धूप में नहाए हुए
श्वेत केशों वाले बुजुर्गों के
जीवन का अंतिम पर्व
बर्फबारी के बाद की
पहली धूप
स्नेहपालिता की चुहलबाज़ी
दादाजी की रुखाई
रूठी हुई यादों का पुनर्स्थापन
दूर तलक फैली
शांत स्निग्ध
संगीत लहरियों की खनक
बर्फबारी के बाद की
पहली धूप।

संदर्भ :

1. तोबदन, आठ मार्च 1979 को लाहुल में हुए विनाशकारी हिमस्खलन की दुर्घटनाएं : एक विवरण, 'चंद्रताल' अंकः 22, जनवरी 2004-दिसम्बर 2004, पृष्ठ, 23
2. J. Ph. Vogal [Antiquities of Chamba State Part – 1 Page 15]
3. तोबदन, आठ मार्च 1979 को लाहुल में हुए विनाशकारी हिमस्खलन की दुर्घटनाएं : एक विवरण, 'चंद्रताल' अंक : 22, जनवरी 2004-दिसम्बर 2004, पृष्ठ, 20
4. राजीब गोम्थङ्पा, दो रातें एक दिन, चंद्रताल, अंक 23, जनवरी 2005-दिसम्बर 2005, पृष्ठ 47
5. Ram Nath Sahni [The Mistry Land in the Himalayas] Page 42

सम्पर्क : प्रवक्ता हिंदी, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, उदयपुर, ज़िला लाहुल-स्पीति (हि.प्र.)।
मो. : 9015135773

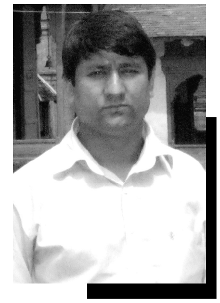

पर्यावरण तथा पत्रकारिता

✍ किशन श्रीमान

पर्यावरण शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है - परि और आवरण, 'परि' जो हमारे चारों ओर है, 'आवरण' जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है, अर्थात पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है- 'चारों ओर से घेरे हुए'। पर्यावरण उन सभी भौतिक रासायनिक एवं जैविक कारकों की समष्टिगत एक इकाई है, जो किसी जीवधारी अथवा परितंत्रीय (Ecosystem) आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं। सीधे रूप में कहा जाए तो पर्यावरण से तात्पर्य उन सभी वस्तुओं से है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमें प्रभावित करते हैं।

पर्यावरण के विविध पक्ष

मानव का प्राकृति से बहुत गहरा संबंध है। प्रकृति और वायुमंडल में मिलकर बने पर्यावरण के तत्व जहाँ, मानव को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करते रहे हैं, वहीं मानव प्रकृति में विद्यमान प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अपने हितों के लिए करता आया है। यही नहीं, वह पर्यावरण के प्रभावों को भी समय-समय पर महसूस करता आया है। पर्यावरण मानव जगत पर एक सामूहिक प्रभाव डालते आया है, जिसके संदर्भ में हमें कई विद्वानों के मत मिलते रहे हैं।

पर्यावरण के लिए तीन पक्ष विख्यात हैं - 1. ज्ञानात्मक पक्ष या कहें नियतिवाद पक्ष 2. सुरक्षात्मक पक्ष या सम्भाववाद पक्ष एवं 3. व्यावसायिक पक्ष या समन्वयवाद पक्ष

1. ज्ञानात्मक पक्ष या नियतिवाद पक्ष मानव एक जिज्ञासु प्राणी है, जिसे हमेशा अपने आस-पास हो रही घटनाओं के बारे में रुचि होती है। मानव हमेशा प्रकृति में बसे रहस्यों को जानने में उत्सुकता रखता है। शुरुआती चरण में जब लोगों ने पर्यावरण को जानना शुरू किया तब वे पर्यावरण को स्वामी मानते थे। उनके विचार में मानव प्रकृति का दास है और वह मानव का स्थान, विशेषकर पर्यावरण के अनुरूप ही जीवन जीने को प्राथमिकता दी गयी। यही नहीं, प्राकृतिक शक्तियों को देवी-देवताओं के रूप में मानकर उसकी पूजा को प्रचारित किया गया ताकि पर्यावरण का दोहन न हो सके और ऐसे में इसे आध्यात्मिक रूप देकर सुरक्षित करने का प्रयास किया गया, जो आज के वर्तमान युग में भी देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए आज भी हिन्दू धर्म में पीपल के पेड़ को उच्च माना जाता है उसकी पूजा की जाती है और इसी के साथ पीपल का पेड़ काटने से भी लोग डरते हैं। पर यह ज्ञात होना चाहिए कि पीपल का पेड़ हमेशा CO_2 लेता है और O_2 छोड़ता है। ऐसे में हम कह सकते हैं कि पर्यावरण को बचाए रखने के लिए कितना अग्रणी थे।

देश को प्राणवायु दे रहा देवभूमि का फॉरेस्ट कवर, हिमाचल की देव परंपरा भी सिखाती है पेड़ लगाना। हिमाचल प्रदेश छोटा सा पहाड़ी राज्य होने के बाबजूद पूरे देश को प्राणवायु देता है। हिमाचल का फॉरेस्ट कवर 27.73 प्रतिशत है और इसकी कुल वन संपदा 1.50 लाख करोड़ रुपये है। प्रदेश में देव परंपरा भी पौधारोपण (Forest Cover in Himachal) को प्रेरित करती है।

शिमला और कुल्लू में देवताओं के नाम पर करीब 561 जंगल

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में भोटी भाषा विभागाध्यक्ष विद्यासागर नेगी द्वारा प्रस्तुत एक शोध-सर्वेक्षण में उन्होंने कहा है कि पर्यावरण को बचाने देवताओं की भूमि या देवताओं के जंगलों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनका कहना है कि

अक्सर ये देखा गया है कि जहां-जहां देवताओं के नाम पर जंगल हैं, वहां-वहां अवैध वन कटाई के मामले नहीं हैं। हार्वेस्टर को ये डर रहता है कि कहीं देवता का गुस्सा उनके ऊपर ना फूट जाए। इस डर से लोग पेड़ काटने से कतराते हैं। कुल मिलाकर इसका फायदा पर्यावरण को मिल रहा है। अभी तक राज्य जैव-विविधता बोर्ड के पास जो जानकारी है उसके मुताबिक शिमला और कुल्लू में देवताओं के नाम पर करीब 561 जंगल पाए गए हैं, लेकिन इसका सही-सही आंकड़ा अभी किसी के पास नहीं है। बोर्ड अब पूरे प्रदेश में इस तरह की जंगलों पर स्टडी कर रहा है।

2. सुरक्षात्मक पक्ष या सम्भावबाद पक्ष प्राचीन तथा मध्ययुग में पर्यावरण अध्ययन का यह पक्ष गौण (minor) रहा है। इस पक्ष ने पर्यावरण के सोच और उसके आचरण दोनों को ही एक अलग नज़रिया दे दिया। मानव अपने बुद्धि, कौशल व ज्ञान के बल पर पर्यावरण के तमाम तत्वों-वनस्पति, खनिज, मिट्टी, जल तथा अन्य वन्य जीव-जंतुओं का उपयोग अपने जीवन-यापन के लिए करने लगा वह अपने आप को सर्वशक्तिमान प्राणी समझने लगा। जिस पर प्राकृत का कोई रोक-टोक अंकुश नहीं था। वह अपनी मर्ज़ी का मालिक था। इस विचारधारा को मानने वाले विद्वान फैब्बरे का मत था कि सब और संभावनाएं हैं, मानव इन संभावनाओं का मालिक है, इस कारण वह इसके

उपयोग का हकदार है। ऐसे में इस मानसिकता ने मानव और प्राकृति के बीच एक खाई पैदा कर दी जिससे पर्यावरण का पतन होना शुरू हो गया। इन संकटों से चिंतित होकर एक बार फिर पर्यावरण रक्षात्मक पक्ष पर ज़ोर दिया जाने लगा।

3.

व्यावसायिक पक्ष या समन्वयवाद पक्ष इन दोनों को देखते हुए एक बीच का रास्ता निकाला गया समन्वयवाद पक्ष कहा गया। इसको व्यावसायिक पक्ष इसलिए भी कहा गया क्योंकि इस समय विकसित देश विकास की गति बहुत तेज़ी से बढ़ रही थी। पर विश्व में अपनी साख को ऊपर बनाए रखने के लिए उन्होंने यह बात कही कि हमारा विकास प्रकृति का दोहन न करते हुए देश के विकास को बढ़ावा देना है। सीधा कहें तो इस पक्ष के तहत यह बताने का प्रयास किया गया है कि मानव पूरी तरह से पर्यावरण का दास नहीं है और अपने बुद्धि अनुसार प्रकृति को कम से कम नुकसान पहुंचाये वह अपना कार्य कर सकता है।

पर्यावरण पत्रकारिता का महत्त्व

पर्यावरण पत्रकारों को ग्रह की आवाज के रूप में देखा जाता है, जिन्हें इसकी ओर से शिक्षित करना होता है। उनके काम का एक बड़ा हिस्सा गैर-मानव दुनिया पर लेखन से संबंधित है और इसका प्रभाव मानवता पर पड़ सकता है। इसके लिए वैज्ञानिक अभ्यास के ज्ञान और पर्यावरण नीति और संगठनों में गहरी दिलचस्पी की आवश्यकता है।

20 सितंबर 2019 को अनुमानित 10,000 ग्लासगो प्रदर्शनकारी जलवायु के लिए वैश्विक स्कूल हड़ताल के लिए केल्विंग्रोव पार्क में एकत्रित हुए। 2018 पर्यावरण पत्रकारिता के लिए एक बहुत बड़ा

वर्ष था। ग्रीनपीस ने प्रमुख कहानियों का हवाला दिया, न्यूयॉर्क टाइम्स ने 2015 के पेरिस जलवायु परिवर्तन समझौते पर बढ़ती निराशा की बात की, प्रोपब्लिका ने इस तथ्य पर चर्चा की कि अमेरिका ने कैलिफोर्निया के जंगलों में लगी आग को देखा और तर्क दिया कि वे व्यवस्थित सरकारी विफलताओं का परिणाम थे और द गार्जियन ने चर्चा की कि यह क्या है? महसूस किया गया प्रवासी कारवां का मुख्य चालक था- दक्षिण और मध्य अमेरिका में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव।

हाल के वर्षों में हमने देखा कि जिस तरह उत्तराखंड, जम्मू-काश्मीर केरल सहित अन्य राज्यों में तबाही का मंज़र था या हिमाचल प्रदेश में टूरिस्ट के गाड़ियों पर पर्यावरण ने अपने प्रकोप दिखाने के साथ कितनों के जान अपने आँचल में समा लिए और जिस तरह मीडिया ने इन खबरों को दिखाया एक बड़ी चुनौती थी। मीडिया की खबरों में पर्यावरण को लेकर कई सारे पॉज़िटिव तो बहुत सारे नेगेटिव पक्षों पर भी लोगों ने चर्चा की। यहां हमारा मतलब स्थानीय लोगों और मीडिया लोगों से है। लेकिन एक बड़ा प्रश्न ज़रूर है हमारे देश की कि पर्यावरण से जुड़े मुद्दे खासकर जो पर्वतीय इलाके हैं, जिस तरह का विकास वहाँ हो रहा है, जिस तरह की मंज़िल वहाँ नापी जा रही हैं और जिस तरह समाज के सामने नई चुनौतियां आती जा रही हैं। इसके बरअक्स हमारा भारतीय मीडिया उन घटनाक्रमों को वहाँ की स्थिति को कैसे गौर कर रहा है? यह जानना बहुत आवश्यक है।

भारत की पर्यावरण स्थिति रिपोर्ट 2023

विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र (Centre for Science and Environment & CSE) तथा डाउन टू अर्थ (DTE) पत्रिका ने हाल ही में भारत की पर्यावरण स्थिति रिपोर्ट 2023 जारी की, जिसमें जलवायु परिवर्तन, कृषि एवं उद्योग के साथ-साथ जल, प्लास्टिक, वन एवं जैवविविधता सहित विभिन्न विषयों के आकलन की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है।

रिपोर्ट का प्रकाशन वार्षिक तौर पर किया जाता है, जो जलवायु परिवर्तन, प्रवासन, स्वास्थ्य एवं खाद्य प्रणालियों पर केंद्रित है। इसमें जैवविविधता, वन एवं वन्य जीवन, ऊर्जा, उद्योग, आवास, प्रदूषण, अपशिष्ट, कृषि और ग्रामीण विकास भी शामिल हैं।

CSE नई दिल्ली में स्थित एक गैर-लाभकारी सार्वजनिक हित अनुसंधान संगठन (Advocacy) है।

रिपोर्ट के मुख्य बिंदु :

अतिक्रमण : देश में 30,000 से अधिक जल निकायों पर अतिक्रमण किया गया है और भारत प्रतिदिन 150,000 टन नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (MSW) उत्पन्न कर रहा है, जिनमें से आधे से अधिक या तो लैंडफिल में फेंक दिया जाता है या अनुपयुक्त पड़ा रहता है।

वायु प्रदूषण भारत में वायु प्रदूषण के कारण जीवन की औसत अवधि 4 वर्ष और 11 माह कम हो जाती है। वायु प्रदूषण से संबंधित स्वास्थ्य मुद्दों के कारण शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण भारत में जीवन की औसत अवधि के अधिक वर्ष कम हो रहे हैं।

ग्रामीण भारत को 35 प्रतिशत अधिक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्रों की आवश्यकता है।

पर्यावरणीय अपराध : पर्यावरणीय अपराध बेरोकटोक जारी हैं और लंबित मामलों को निपटाने के लिये न्यायालयों को प्रतिदिन 245 मामलों पर निर्णय देने की आवश्यकता है।

चरम मौसमी घटनाएँ जनवरी और अक्तूबर 2022 के बीच भारत ने 271 दिनों में चरम मौसमी घटनाओं को देखा। इन चरम मौसमी घटनाओं ने 2,900 से अधिक लोगों की जान ले ली। गत वर्ष 8 जुलाई से 11 जुलाई के बीच कुल्लू ज़िला सहित पूरे हिमाचल में बाढ़ ने तवाही मचाई, जिसमें भारी जान-माल का नुकसान हुआ।

सतत् विकास लक्ष्य : पिछले पाँच वर्षों में संयुक्त राष्ट्र अनिवार्य सतत् विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals & SDG) को प्राप्त करने में भारत की वर्ष 2022 की वैश्विक रैंकिंग में नौ स्थानों की गिरावट दर्ज की गई है, जो अब 121 वें स्थान पर है।

भारत चार दक्षिण एशियाई देशों; बांग्लादेश, भूटान, श्रीलंका और

नेपाल से नीचे है।

भारत सतत् विकास लक्ष्य-2 (भुखमरी से मुक्ति), सतत् विकास लक्ष्य- 3 (लोगों हेतु स्वास्थ्य और आरोग्यता), सतत् विकास लक्ष्य- 5 (लैंगिक समानता) एवं सतत् विकास लक्ष्य-11 (संवहनीय शहरी तथा सामुदायिक विकास) सहित 17 सतत् विकास लक्ष्य में से 11 में चुनौतियों का सामना कर रहा है।

प्लास्टिक अपशिष्ट : भले ही प्लास्टिक अपशिष्ट की समस्या का पैमाना अभी भी बहुत बड़ा है, फिर भी कई नीतियाँ और तात्कालिकता सही दिशा में हैं। शहर प्लास्टिक के उपयोग को कम कर रहे हैं, स्रोत पर अपशिष्ट को अलग करना और आय का साधन बनाने हेतु अपशिष्ट का पुनः उपयोग एवं पुनर्चक्रण करना सीख रहे हैं।

कृषि : कृषि क्षेत्र में पारंपरिक और पुनर्योजी कृषि पद्धतियों की प्रभावशीलता के प्रमाण देखे जा सकते हैं। वनों और जैव-विविधता के मुद्दे देखें तो वनों को हो रहा नुकसान एक सर्वविदित सत्य है, लेकिन साथ ही अधिक-से-अधिक समुदाय वनों पर अधिकार की मांग कर रहे हैं, यहां तक बात ठीक है लेकिन कॉरपोरेट घरानों के संदर्भ में यह चिंता का विषय है।

सिफारिशें हमें एक सर्वसहमति आधारित बुनियादी कार्यक्रम की आवश्यकता है, जो सभी देशों को दो सबसे महत्त्वपूर्ण वैश्विक समस्याओं से निपटने हेतु एकजुट करता हो, वे समस्याएँ हैं- वर्तमान में हम जिस अस्तित्त्व संबंधी संकट का सामना कर रहे हैं उससे कैसे बचा जाए और एक न्यायसंगत तथा समावेशी विश्व व्यवस्था कैसे बनाई जाए।

पर्यावरण संरक्षण की दिशा में में किंकरी देवी, कुलभूषण उपमन्यु (जिन्हें हिमाचल का सुंदरलाल बहुगुणा भी कहते हैं) सहित अनेक लोगों का भी हिमाचल अवैध खनन और जल-जंगल-ज़मीन बचाओ अभियान में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

सोमालिया में पहला पर्यावरण पत्रकार नेटवर्क

हाल ही में सोमालिया की मीडिया ने पर्यावरण पत्रकारों का पहला नेटवर्क शुरू किया है।

प्रमुख बिंदु : सोमालिया के पर्यावरण पत्रकार नेटवर्क (The Somali Environmental Journalists Network & SEJN) का उद्देश्य देश में पर्यावरण चुनौतियों पर मीडिया रिपोर्टिंग को बढ़ावा देने के लिये पत्रकारों को एक साथ लाना है। यह शुरुआत देश के सभी पत्रकारों को एक साथ आने और उन्हें पर्यावरण संबंधी विषयों पर बात करने के लिये प्रोत्साहित करेगी। पत्रकारों का यह नेटवर्क सोमालिया सरकार सहित निजी क्षेत्र और संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों के सहयोग से कार्य करेगा। पत्रकारों का यह नेटवर्क पर्यावरण और सतत् विकास के मुद्दों पर चर्चा करने वाले सोमालिया के सभी पत्रकारों के लिये खुला है।

गौरतलब है कि वनों की कटाई और भूमि क्षरण सोमालिया में प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियाँ हैं ।

सोमालिया : सोमालिया गणराज्य का गठन वर्ष 1960 में किया गया था। सोमालिया, अफ्रीका के सबसे पूर्व में स्थित एक देश है, जिसकी राजधानी का नाम मोगादिशु है। सोमालिया का प्रमुख धर्म इस्लाम है। सोमालिया की अर्थव्यवस्था का मुख्य हिस्सा कृषि पर आधारित है, परंतु पशुपालन वहाँ की प्रमुख आर्थिक गतिविधि है।

संदर्भ :

1. जैव - विविधता बोर्ड , हि.प्र कृकी न्यूज़ - 18 पर रिपोर्ट
2. जनसत्ता
3. कृष्टि आइएएस
4. अपना रण डॉट कॉम

संपर्क : संपादक - हिमतरु, 201, कटोच भवन, नज़दीक मुख्य डाकघर, ढालपुर, कुल्लू, हिमाचल प्रदेश- 175101. **मो.** : 9418063231, 7018346682 **e- mail :** himtarunews @ gmail-com @ himtaru @ rediffmail-com

पटन की भाषा में हिन्दी-पहाड़ी शब्द

✍ डी०सी० ठाकुर

मैंने पटन की भाषा के बारे सोच-विचार कर अनुभव किया कि इस बोली में कुछ शब्द ऐसे हैं, जो हिंदी भाषा से मिलते-जुलते हैं पर यह नहीं समझ सका कि ये शब्द लाहुली बोली में कैसे शामिल हुए, क्योंकि सदियों पहले लाहुल वासियों का देश के हिंदी भाषा बोलने वाले क्षेत्रों में तो क्या कुल्लू वासियों से भी मिलना-जुलना नहीं होता था।

कुछ मिलते-जुलते शब्दों का विवरण संलग्न है। क्या कोई बुद्धिजीवी इस पर प्रकाश डाल सकता है:-

क्रं.सं.	पटन की भाषा	हिंदी में
1.	तवा	तवा
2.	टोबू	टोपी
3.	रात	रात
4.	चम	चमड़ा
5.	चुस्त	चुस्त
6.	ढिले	ढीला
7.	गाड़ी	गाली
8.	जड़	जड़
9.	धरती	धरती
10.	कुकड़ि	कुक्कड़
11.	उमर	उमर
12.	कटेक	कड़वा
13.	भिल्ळ	बिल्ली
14.	कड़छि	कड़छि
15.	कमर	कंधा
16.	धूड़	धूल
17.	दाह्च	दराट
18.	कमीच	कमीज़
19.	ज़राबा	जुराब
20.	कोपिलि	खोपड़ी
21.	रोह्ष	रोष
22.	दाह्ड़ि	दाढ़ी
23.	मुच्छा	मूंछ
24.	ढोल	ढोल
25.	थुह	थूक
26.	जोह्र	ज़ोर
27.	रोटि	रोटी
28.	अउषद	औषधि
29.	सरा	सुरा
30.	चपटे	चपटा
31.	घट्ट	घराट
32.	राघस	राक्षस
33.	भु–लिणि	भूकंप
34.	कब	कफ़
35.	स्वाद	स्वाद
36.	रोह्ग	रोग
37.	संसार	संसार
38.	सेठ	सेठ
39.	सोहुकार	साहुकार
40.	फालतू	फालतू
41.	च़लाक	चालाक
42.	झगड़ा	झगड़ा
43.	लतेक	लात
44.	चटेक	चांटा
45.	खाली	खाली
46.	रशि	रस्सी
47.	अकल	अकल
48.	मशाण	शमशान

49.	गलती	गलती
50.	सोह्च	सोच
51.	आदर	आदर
52.	इज़्जत	इज़्जत
53.	बेज़ती	बेइज़्ज़ती
54.	कचेह	कच्चा
55.	चा	चाय
56.	धोका	धोखा
57.	असली	असली
58.	नकली	नकली
59.	हुश्यार	होशियार
60.	ब्याह	ब्याह
61.	हल्ला	हल्ला
62.	पित्तर	पित्तर
63.	बेलचा	बेलचा
64.	उगाल	उबाल
65.	हजाह्र	हज़ार
66.	सचे	सच्चा
67.	ऋण	ऋण
68.	दुञ्ञा	दुनिया
69.	कुरकुर	कुरकुरा
70.	डाड़ि	डाली
71.	सचेह	सच्चा
72.	सेह्णे	स्याने
73.	घीत	गीत
74.	मह्मा	मामा
75.	जाणकार	जानकार
76.	मजा	मज़ा
77.	नाह्श	नाश
78.	दुःख	दुःख
79.	सुख	सुख
80.	पिपड़ि	पिपली
81.	शोऊंक	शौक
82.	सुर्गलोक	स्वर्ग लोक
83.	चिन्द	चिन्ता
84.	फल	फल
85.	फसल	फसल
86.	तमासा	तमाशा
87.	शब्बाश	शाबाश
88.	थोड़े	थोड़ा
89.	कम	काम
90.	तागत	ताकत
91.	होश	होश
92.	बेहोश	बेहोश

संपर्क : नीलकंठ निवास, शास्त्री नगर, कुल्लू, हि.प्र.।

हमें सोचना होगा

ञगः छेरिङ

जन चेतना

दिनांक 11.06.2023 को ''जन चेतना मंच'' ने केलंग में एक दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया। प्रतिभागी वक्ताओं ने लाहुल-स्पीति के ज्वलंत मुद्दों पर कुछ ज़रूरी सवाल उठाए।

पर्यटन उद्यमी विक्रम कटोच ने 'इको टूरिज़्म' और 'सस्टेनेबल टूरिज़्म' का मतलब समझाते हुए कहा कि 'मास टूरिज़्म' से लाहुल में प्लास्टिक तथा कूड़े की समस्या आने वाली है। इस से हमारा पर्यावरण खराब होने वाला है। इस के अलावा 'सोशल पॉल्यूशन' का खतरा भी पैदा होने वाला है और कहा कि टूरिज़्म आने से हमारे सामाजिक पारिवारिक मूल्यों में विघटन आ सकता है। बताया कि लाहुल आज अंतर्राष्ट्रीय टूरिज़्म मैप पर आ चुका है। पुलिस आंकड़ों के हवाले से यह भी बताया कि वर्ष 2022 में मनाली और लाहुल के बीच 6 लाख टूरिस्ट वाहनों की आवाजाही हुई। विक्रम ने स्वीकार किया कि जैसा कि हम ने सोचा था, लाहुल में वैसा अलग तरह का कस्टमर नहीं आ रहा। उसी तरह का कस्टमर ही आ रहा है जैसा कि मनाली में आता है। अतः हमें अपने संसाधनों को टूरिस्ट की नज़र से देखते हुए अपने 'टूरिज़्म मॉडल' पर पुनर्विचार करना होगा। इस के लिए बड़े स्तर पर प्लानिंग की आवश्यकता है। हमें इस बारे पूरी ज़िम्मेदारी के साथ सोचना होगा। यह सरकार, प्रशासन, पुलिस, होटेलियर, केम्प ओर्गेनाईज़र, टेक्सी युनियन... हम सब की साँझी ज़िम्मेदारी है।

ज़ाहिर है इस कथित 'सस्टेनेबल टूरिज़्म मॉडल' का कोई निश्चित एवम् स्पष्ट खाका न तो वक्ता के पास था, न ही ऊपरिलिखित कोई अन्य हितधारक इस मामले में कुछ खास कनसर्न दिखाता नज़र आता है। हम जब भी सस्टेनेबल टूरिज़्म के बारे गहराई से सोचते हैं, केवल बिज़िनेस को सस्टेन करने पर बात खत्म हो जाती है। इकोसिस्टम और पर्यावरण केवल बात करने के लिए मुद्दे बने हुए हैं। हर तरह का टूरिज़्म अंततः पैसा बनाने का ही एक उपक्रम है। उस से अधिक कुछ नहीं।

एक्टिविस्ट समाज सेवी रिग्ज़िन हयरपा ने कहा कि लाहुल-स्पीति की जनता को बड़े प्रोजेक्टों के विरोध में एकजुटता दिखानी चाहिए। और पंचायती राज संस्थाओं को अवेयर तथा सशक्त करने में हमें मिल कर काम करने की आवश्यकता है। साथ में विधायक श्री रवि ठाकुर से अनुरोध किया कि इस विरोध में वे भी जनता का साथ दें। हयरपा ने जिस्पा संघर्ष समिति के आरम्भिक दौर में न केवल नेतृत्व किया अपितु बतौर फ्रंट लाईन वर्कर काम भी किया। और वे अपने आप में इस आन्दोलन के एक महत्वपूर्ण थिंक टेंक हैं।

लेखिका सुनीता कटोच ने कहा कि हमारा समाज पुरुषों से संचालित है, जब कि समाज के निर्माण में वास्तविक योगदान स्त्री का होता है। गाँव का सेह्णू हमेशा पुरुष ही होता है। जब कि रीति रिवाज़ों के बारे उन के बराबर ही जानकारी बुज़ुर्ग महिलाओं को भी होती है। उन से सलाह भी ली जाती है। लेकिन उन्हें पुरुष सेह्णू वाला वह सामाजिक रुतबा हासिल नहीं होता। समाज बदल रहा है, लेकिन स्त्री के साथ भेद भाव बढ़ते जा रहे हैं। इस का कारण यह है कि महिला ही महिला को सपोर्ट नहीं करती। उन्होंने एक आमफहम धारणा के बारे इंगित किया कि जनजातीय महिला को आम स्त्री से अधिक सामाजिक आज़ादी मिली हुई है। सचाई इस के

विपरीत है। हमारे यहाँ स्त्री को सम्पत्ति के अधिकार नहीं है। रिवाज़-ए-आम के ये प्रावधान बदलने चाहिएं। श्रोताओं में बड़ी संख्या में महिला उपस्थिति के बारे चुटकी लेते हुए कहा कि निश्चित रूप से 'लाह्छग' (जुर्माना) के कारण यह सम्भव हुआ होगा। साथ ही यह भी कहा कि हमें जनजातीय अस्मिता को बचाना होगा। हमारी शादियाँ पंजाबियों की तरह हो रही हैं। इस से हमारी पहचान खत्म हो रही है। इको टूरिज़्म केवल कागज़ी सिद्धांतों की बात है। कहा कि केवल हाईडेल प्रोजेक्ट का नहीं अनियंत्रित टूरिज़्म का भी विरोध करना चाहिए। प्लानिंग के साथ टूरिज़्म होना चाहिए।

यहाँ यह स्पष्ट नहीं था कि इस अराजक टूरिज़्म पर नियंत्रण करने वाली अथोरिटी कौन होगी? क्या सरकार, स्थानीय समुदाय या कोई और एजेंसी? क्यों कि कुछ दिनों बाद ही कोकसर से घुषाल तक 6 पंचायतों को टी सी पी की ज़द में लाने की घोषणा हुई तो 18 जुलाई 2023 को हम ने जनता को इस सरकारी नियंत्रण के विरोध में सिस्सू नरसरी में मौन प्रदर्शन व भूख हड़ताल करते देखा। 2006 के 'जिस्पा बचाओ' आन्दोलन के बाद यह दूसरा बड़ा जन आन्दोलन था जिस में बृहत्तर जनजातीय हितों का उल्लेख हुआ। पहली बार जनता और नेताओं की जुबान पर, बैनर व नारों में PESA का ज़िक्र आया। इस आन्दोलन में पूर्व विधायक राम लाल मार्कण्डा तथा कोकसर के ग्राम प्रधान सचिन मिरुपा की सक्रियता रही। विरोध प्रदर्शन सप्ताह से अधिक चला। बुद्धि जीवी खुश नज़र आए। लेकिन जनजातीय विकास मंत्री जगत नेगी ने इस आन्दोलन को ठण्डा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने कहा कि PESA कुछ नहीं होता। बाद में यह भी कहा कि हम इस को पढेंगें। सचाई यह थी कि उच्च न्यायालय के आदेशों के तहत सरकार को यहाँ मजबूरन TCP की अधिसूचना जारी करनी पड़ी थी, जो इस रपट के लिखे जाने तक यथावत लागू ही था। आशंका यह है कि नियम सरकार तय करेगी लेकिन इन्हें लागू ग्राम सभाओं के माध्यम से किया जाएगा। चित्त भी सरकार की पट्ट भी सरकार की। चूँकि फिलहाल हमारी पंचायती राज संस्थाओं के पास इस परिस्थिति से निपटने के लिए कोई तैय्यारी नहीं है, स्थानीय स्वशासन और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की यह नई व्याख्या सरकारी तंत्र के लिए विन विन सिचुएशन पैदा करेगी।

जन प्रतिनिधि कुंगा बोध ने खुशी ज़ाहिर की कि यह सेमिनार कुल्लू की बजाय लाहुल में हो रहा है। हमारी खास सांस्कृतिक पहचान की वजह से सारी दुनिया हमें देखने आती है। इस पहचान को बनाए रखने के लिए हमें अपनी जड़ों से जुड़ने की ज़रूरत है। इस मे सब से ज़रूरी है भाषा। भोटी भाषा के संरक्षण और स्कूलों में इसे लागू करने हेतु 1986 में एक समिति बनी थी, लेकिन कुछ विषेष परिणाम सामने नही आ रहे। शादियाँ हमारी संस्कृति की मुख्य पहचान हैं। बाहरी असर से ये अशोभनीय हो रही हैं। शादी में बीयर का प्रचलन उचित नहीं है। केलंग पंचायत में इसे प्रतिबन्धित कर दिया गया है। उन्होंने अपील की कि अन्य पंचायतें भी ऐसा कदम उठाएं। इस से विवाह समारोहों मे फिजूल खर्ची पर रोक लगेगी। बताया कि टूरिज़्म के चलते लाहुल के युवाओं में नशे का प्रचलन बढ़ने लगा है। चरस और सिंथेटिक ड्रग्ज़ का प्रयोग खुले आम हो रहा है जो कि चिंता जनक है। कुंगा ने सोशल मीडिया के सकारात्मक योगदान को रेखांकित करते हुए कहा कि समुदाय में कुछ ज़रूरी मुद्दों पर गम्भीर चर्चाएं शुरू करने में इस बीच इस ने अहम भूमिका निभाई है। साथ ही इस चुनाव में राजनीतिक कन्सेंसस तैयार करने में भी सोशल मीडिया का सकारात्मक योगदान रहा।

यह वाक़ई बहुत महत्वपूर्ण है कि सोशल मिडिया में गत वर्षों में, खास कर युवाओं ने उन सभी मुद्दों पर काफी खुल कर चर्चा की जिन पर आम तौर पर चर्चा करना सामुदायिक टैबू (निषेध) की श्रेणी में आता था। चर्चा होती भी थी तो दबे स्वरों में होती थी। छोटे समूहों में होती थी पब्लिकली नहीं हो पाती थी। यह हमारा सामाजिक/राजनीतिक पिछड़ापन था जिस से बाहर कदम रखने की हमारे समुदाय ने इधर बड़ी सराहनीय हिम्मत की है। यद्यपि कुछ सियाने रूढ़ सोच के लोग इस से

काफी परेशान तथा असहज हुए और कुछ ने तो इन मुद्दों को गैर ज़रूरी बता कर विरोध भी करने का प्रयास किया। बहर हाल यह द्वन्द्व तो चलता ही रहेगा। इन चर्चाओं का अंजाम चाहे कुछ भी हो, यह एक ज़रूरी पहल थी, खास कर एक उभरते हुए शिक्षित मध्यवर्गीय समाज में।

94 वर्षीय सेवा निवृत्त अध्यापक छाया राम ने कहा कि जन चेतना समिति एक गैर राजनैतिक मंच है। जो लाहुल-स्पीति के सांस्कृतिक संरक्षण व उत्थान के लिए गठित की गई है। उन्होंने ने संयुक्त परिवार के विघटन पर भाव प्रवण भाषण दिया। उन्होंने टनल खुलने के बाद बढ़े हुए टूरिज़्म के चलते ज़मीन के बटवारे पर चिंता ज़ाहिर की। कहा कि संयुक्त परिवार प्रणाली में कोई दोष नहीं होता। इस में गुण ही गुण होते हैं। वे पुर उम्मीद थे कि इक्कीसवीं सदी में भी संयुक्त परिवार की प्रासंगिकता बनी रहेगी। बेशक उस का स्वरूप पहले से भिन्न होगा। हालाँकि अपने भाषण में वे इस सम्भावित नए स्वरूप का सुनिश्चित व स्पष्ट खाका नहीं खींच पाए। हम पारिवारिक न्याय व समानता का दावा करते हैं तो तय है कि ज़मीन के बटवारे सहने ही पड़ेंगें। यह व्यवहारिक सिरदर्दी शायद उन्होंने नई पीढ़ी के ज़िम्मे ही सौंप दी।

सेवा निवृत्त मुख्य सचिव शाम सिंह कपूर तथा आयोजन के मुख्य अतिथि एवम् विधायक रवि ठाकुर ने अपने आशीर्वचनों से श्रोताओं को लाभांवित किया। श्री कपूर ने कहा कि लाहुली समाज के त्वरित विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा । कहा कि महिला सशक्तिकरण महिला की शिक्षा से सम्भव होगा। युवा पीढ़ी से सम्बोधित होते हुए उन्होंने कहा कि यदि आप बड़े घरों, लम्बी गाड़ियों और सुन्दर बीबियों के सपने देखते हों तो नौवीं कक्षा से ले कर प्रोफेशनल कोर्स पूरा करने तक के दस बारह साल बहुत ही क्रिटिकल हैं। इसे तपस्या की तरह करना होता है। तभी ये सपना पूरा हो सकता है। उन्होंने लाहुल की नई पीढ़ी की करियर सम्बंधी उपलब्धियों पर खुशी ज़ाहिर की। कहा कि मैं सोचता था मेरे परिवार ने इस सम्बन्ध में बहुत तरक़्क़ी की है। लेकिन नौकरी से लौट कर समुदाय से मिला, चाहे सोशल मीडिया के माध्यम से, या वैसे भी; तो पता चला कि पूरे लाहुल-स्पीति के युवाओं ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। साथ में यह भी कहा कि हमारे विकास की राह में सब से बड़ा खतरा है आत्मतुष्टि और तुरंत तसल्ली। यह हमें कमज़ोर करती है। विकास का कोई अंत नहीं हो सकता। ठीक होना ही काफी नहीं, बहुत ठीक होना पड़ेगा। हमारा मुकाबला अपने गाँव के पड़ोसी से नहीं बल्कि राष्ट्रीय तथा वैश्विक स्तर पर होना चाहिए। दुनिया तेज़ी से बदल रही है। हमें दुनिया के हिसाब से बदलना होगा। हम ने नौकरियाँ अच्छी पाईं लेकिन उद्यमिता के क्षेत्र में हम बहुत पीछे हैं। लाहुल में आम धारणा है कि धन्धा करने के लिए पढ़ाई की ज़रूरत नहीं होती। जब कि इस के विपरीत, उद्यमिता और शिक्षा में कोई विरोध नहीं है बल्कि शिक्षा का इस क्षेत्र में भी बड़ा योगदान होता है। साथ में उन्होंने यह भी बताया कि पैसा कमाना आखिरी उपलब्धि नहीं है। श्री कपूर का भाषण मुख्यतयः युवाओं को ही अधिक सम्बोधित था। यही कारण रहा होगा महिलाएं बहुत तन्मय हो कर सुन नहीं पा रही थीं।

कुल मिला कर यह आयोजन पिछले आयोजनों के ढर्रे पर ही एक और आयोजन था। उम्मीद है कि इस बार आयोजकों ने यहाँ पढे गए पर्चों और वक्तव्यों को रेकार्ड करने अथवा प्रकाशित करने का ज़रूरी कार्य अवश्य किया होगा। आयोजन के पोस्टर में विषयों का घटाटोप था और वक्ताओं की भरमार थी। एक दिन के सीमित समय में यह सब कर पाना असम्भव था। फिर भी वक्ताओं ने यथासम्भव अपने विषय के साथ न्याय करने की कोशिश की। महिला सम्पत्ति अधिकारों के मुद्दे पर पूर्ववत सभी लोग खुल कर कहने से बचते नज़र आए। ऑडिएंस की ओर से प्रश्नों तथा सम्वाद सत्र का प्रावधान नहीं होने के कारण केवल एकतरफा बातें ही हो पाईं। सेमिनार यदि एक थीम पर केन्द्रित हो तो इंटरेक्टिव सेशन के लिए समय निकल सकता है। महिला अधिकार विषय पर सुनीता कटोच की बातों को महिलाओं ने उत्सुकता एवम् खूब आनन्द लेते हुए सुना।

लाहुल कुल्लू सौँस्कृतिक संगम

8 जुलाई 2023 को देवसदन कुल्लू में लायुल सुर संगम तथा भाषा एवम संस्कृति विभाग के संयुक्त तत्वाधान में एक साँस्कृतिक सन्ध्या का आयोजन किया गया। इस आयोजन का उद्देश्य युवाओं को अपनी लोक संस्कृति के प्रति सेंसिटाईज़ करना व उस में रुचि पैदा करना था। इस अवसर पर इस सभा के शुरुआती दौर से ले कर अब तक जुड़े समस्त लाहुली कलाकार उपस्थित रहे। चर्चित गायक राम देव कपूर, शकुन, देव

सूर्या कला मंच, बनोगी गाँव (कुल्लू) के युवा नर्तकों की टीम को कुल्वी नृत्य के लिए आमंत्रित किया गया था, जिसे दर्शकों से खूब पसन्द किया। यह एक सराहनीय पहल थी। प्रायः यह देखने में आता है कि हमारे आयोजन एक्स्क्लूसिवली लाहुल वालों के लिए होते हैं, जो कि कहीं न कहीं एकांगी साँस्कृतिक शो बन जाते हैं। अन्य समुदायों को शामिल करने से आयोजनों में विविधता तो आती ही है, साथ में समावेशी गतिविधियों के रूप में इन का बहुत महत्व बढ़ जाता है। साम्प्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देने की दृष्टि से यह एक ज़रूरी शुरुआत है, जिस के लिए लायुल सुर संगम बधाई का पात्र है।

षिड्ऊि ट्रोः -- मानो अभी बोल पड़ेंगीं

3 अगस्त, 2023 से 5 सितम्बर, 2023 तक लेह में लद्दाख आर्ट्स एंड मीडिया ऑर्गेनाईज़ेशन LAMO के तत्वावधान में लाहुली चित्रकार एवम् कवि कृष्णा टशि पल्मो के थंका तथा आधुनिक चित्रों की प्रदर्शनी रखी गई-- षिड्ऊि ट्रोः। यह प्रदर्शनी 17वीं सदी के एक नवीकृत लद्दाखी भवन में रखी गई थी। इस में मुख्यतयः कलाकार के निजी जीवन की झलकियाँ दर्शाती पेंटिंग्ज़ थीं तथा ग्रीन तारा सीरीज़ के थंका चित्रों के साथ कुछ कंटेम्परारी चित्र भी प्रदर्शित थे। लद्दाख की युवा पीढ़ी ने इस प्रदर्शनी को खूब सराहा। प्रदर्शनी के साथ इतालवी फिल्मकार कार्लो गिडीनी (Filming Lahaul) द्वारा निर्मित वीडिओ इंस्टालेशन भी था जिस में कुल्लू में अपने जीवन साथी तेंज़िन न्येंतक के साथ रह रही चित्रकार की रोज़मर्रा का सुन्दर फिल्मांकन हुआ है। इस प्रदर्शनी पर विशेष रूप से तारा के चित्र पर कला एवम् फिल्म जगत की सुपरिचित हस्तियों का फीड्बैक बहुत प्रेरक तथा उत्साहवर्द्धक था। कृष्णा के लिए यह बड़ा सुखद अनुभव था। इस आयोजन के क्यूरेटर केसंग ठाकुर ने बताया कि निकट भविष्य में इस प्रदर्शनी को भारत में अनेक महत्वपूर्ण स्थलों पर आयोजित करने की योजना है।

लोक संगीत : बीते ज़माने की याद

यू-ट्यूब पर लोक गीतों की भरमार में युवा गायक रवि नेमा के दो मैश अप अल्बम उल्लेखनीय लगे। पहला "गर्जी अचो" और दूसरा "सुनि बो लेणा"। गायक की आवाज़ खूब ऊँची और साफ है। उच्चारण सटीक। देव नेगी का संगीत उसी के मुआफिक है। धुन व बोल पारम्परिक होने कारण हल्के फुल्के और दिलकश। अधिकतर गीत पाँगी पाडर और मयाड़ की तरफ के हैं, लेकिन कुछ गीत ऐसे मिलेंगे जो पूरे लाहुल में खूब लोकप्रिय थे। हरामोनी बाजा, सेठा ए संते रामा ए, थर्मोसा चाय मज़ेदार, आँखों में गाँव के उन बुज़ुर्गों की छवियाँ तैर जातीं हैं, 70 के दशक में जो महफिल में गच्च नाचते थे...संगीत में लोक आस्वाद को सहेजने का सराहनीय प्रयोग! इसे भविष्य में और भी निखारा जा सकता है ।

बाढ़... हम नदी को सीधा कर देंगे

इस बार बरसात में बहुत तबाही हुई। 8 जुलाई, 2023 से 23 अगस्त, 2023 तक कुल्लू, मण्डी, शिमला, सोलन, चम्बा तथा सिरमौर ज़िला में बाढ़ व भूस्खलन से 400 से अधिक मौतें हुईं। इतने ही घायल हुए। 10140 पशु मर गए। 5644 गोशालाएं नष्ट हुईं । 2546 रिहाईशी मकान और 317 दुकानें ढह गईं। 10253 इमारतें क्षतिग्रस्त हुईं। वन सम्पदा, खेत बागान को भारी नुकसान

हुआ। सरकारी आकलन कह रहा है कि 12 हज़ार करोड़ रुपयों से अधिक आर्थिक नुकसान हो गया है। बुज़ुर्गों ने कहा बारिशें पहले भी होती थीं। बल्कि इस से ज़्यादा होती थीं। लेकिन ऐसी तबाही याद नहीं। गौर तलब है कि ज़्यादा तबाही शहरी तथा कस्बाई इलाक़ों में हुई। कारण एक दम साफ है... अवैज्ञानिक और अनियोजित विकास। पिछले कुछ दशकों में विकास के नाम पर सरकारी और निजी दोनों ही इदारों में बिना सोचे समझे बहुत गलत निर्माण कार्य को अंजाम दिया गया है। विशेषज्ञों की रपट ने इस विनाश के निम्न मुख्य कारण बताए हैं :

नदी तटों, नालों के बीचोंबीच, कूड़े और राख डम्पिंग स्थल पर और खड़ी ढलानों पर भवन निर्माण हुआ है। बिहाल इलाक़ों और में नौतोड़ आबंटित कर लोगों को बसाया गया है, बाज़ार विकसित किए गए हैं।

अवैज्ञानिक फोरलेनिंग, सड़कों में ड्रेनेज नहीं है और 90 डिग्री पर कटिंग़ हो रही है, अधिकतर हाईवे में डंगे/रिटेनिंग वाल नहीं है या बहुत कम और नाकाफी है।

- डेम सेफ्टी एक्ट के नियमों का उल्लंघन।
- केन्द्रीय जल आयोग की हिदायतों को नज़र अन्दाज़ किया गया।
- नदी तटों पर सुरंगों से उत्पन्न मलबे का अवैज्ञानिक निपटारा।
- नदी तटों पर अवैज्ञानिक व अवैध खनन।

आपदा के बाद मंथन जारी है। एक बात ताक़त के साथ उभर कर के आ रही है कि पहाड़ की वहन क्षमता (Carrying Capacity) तय करनी होगी जो कि अभी तक ठीक से परिभाषित नहीं हो सकी है। ईश्वर की तरह। सब जानते हैं कि यह कोई बला तो है, लेकिन क्या है, किसी को नहीं पता। तो पता करने के लिए उच्चतम न्यायालय ने एक समिति गठित करने की बात की है। समिति में कौन होगा, यह यक्ष प्रश्न है। दूसरी बड़ी बात यह निकल कर आ रही है कि माईक्रो और विकेन्द्रीकृत प्लानिंग की ज़रूरत है। सब स्वीकार कर रहे हैं कि हिमालय में इतनी भौगोलिक विविधता है कि ब्लॉक और पंचायत स्तर पर अलग से वहन क्षमता का आकलन करने की ज़रूरत है। स्थानीय स्वशासन को सशक्त करने की ज़रूरत है और यह सब पहले से हमारे संविधान में है। क्यों लागू नहीं हो पाता? बाद में भी बहुत से संशोधन हुए हैं स्थानीय निकायों को शक्तियाँ दी गई हैं। समय-समय पर बहुत से विशेष अधिनियम पारित हुए हैं, ऐसे नाज़ुक व भेद्य (Vulnerable) क्षेत्रों के लिए । उन का पालन क्यों नहीं हो

रहा? हाल ही में शिमला के कुछ पंचायत प्रधानों और पार्षदों ने अपील दायर की है कि उक्त समिति में जन प्रतिनिधियों की भागी दारी सुनिश्चित की जाए। यह आवाज़ बाक़ी स्थानों से भी उठनी चाहिए। क्या हमारी पंचायती राज संस्थाएं इस मुद्दे पर एक जन आन्दोलन के रूप में सामने आ पाएंगीं?

इधर सभी इंजीनीयर और पर्यावरणविद बन गए हैं। एक से एक अद्भुत मत और बहाने सामने आ रहे हैं। नेशनल हाईवे अथोरिटी के एक प्रवक्ता ने यहाँ तक कह दिया कि हमें ऐसे टेरेन पर काम करने का अनुभव नहीं था। केन्द्रीय मंत्री ने व्यास नदी पर टिप्पणी करते हुए कहा कि इस में मलबा भर गया है इस लिए यह तट तोड़ कर इधर उधर गाँव में भाग जाती है। इसे खोद कर सीधा करने की ज़रूरत है। इस से अधिकारियों और मंत्रियों का पहाड़ के प्रति सोच और रवैय्या उजागर होता है। पहाड़ में कहावत है कि पहाड़ के नीचे और नदी के किनारे घर नहीं बनाना चाहिए और हम इतने मूर्ख हैं कि अपने पूर्वजों से सीख लेते हुए नदी के इलाक़े में न घुस कर उस से सुनिश्चित दूरी बनाए नहीं रख सकते हैं । उन अधिकारियों और मंत्रियों को साधारण सा स्थानीय सुझाव नहीं दे सकते कि जनाब, आप हाईवे को ठीक कीजिए नदी को मत छेड़िए। नदी अपनी जगह की मालकिन है, अपनी इच्छा से बहेगी। बहरहाल, पानी के उतरते ही नदियों में जेसीबी घुस चुकीं हैं। ये मशीनें नदी में क्या करतीं हैं, सब जानते हैं।

लाहुल का जाहल्मा नाला, लिन्डुगु, रांग्बे नाला, तड़ङ, जसरथ और जोबरंग आदि इलाके भी इस बीच प्रकृतिक आपदाओं के कारण सुर्खियों में रहे। लाहुल स्पिति पूरे हिमालय में एक अकेला ऐसा भूखंड है जहाँ संसाधनों की बेहद कमी है। इसे अपनी अगली पीढ़ियों के लिए बचाना हमारा कर्त्तव्य है। हमें बड़ी परियोजनाओं के बारे गम्भीरता के साथ और बार बार सोचना होगा।

सेव लाहुल स्पीति

लाहुली जुराबों को 2021 में GI प्रमाणी करण दिलवाने के बाद इन दिनों SLSS जुराब बुनकरों को बतौर प्राधिकृत प्रयोक्ता (authorized user) के रूप में पंजीकृत करने तथा इस की मार्केटिंग व ब्रांडिंग को प्रोमोट करने का काम कर रही है। अध्यक्ष श्री प्रेम कटोच ने बताया कि इस काम में उन्हें विज्ञान एवम प्रौद्योगिकी विभाग के हिम्कोस्टे HIMCOSTE संस्थान की विशेष सहायता मिल रही है। अब तक जुराबों की अनेक प्रदर्शनियाँ लग चुकी हैं, जिनमें ग्राहकों का रेस्पोंस काफी उत्साहवर्धक रहा। इस रपट के लिखे जाने तक 600 से अधिक बुनकरों ने पंजीकरण हेतु आवेदन कर दिया है।

हम कौन हैं?

उल्लेखनीय है कि पिछले कुछ वर्षों में लाहुली लेखन, मीडिया व सोशल मीडिया में जो गरमागर्म बहसें हुईं और बहुतों ने उन पर चुप्पी साध रखी थी, उन का आकलन और विश्लेषण जन चेतना वाले आयोजन के तमाम वक्तव्यों में होता दिखाई दिया। यह शुभ संकेत है कि हमारे यहाँ सोशल अवेयरनेस का लेवल काफी बढ़ गया है और अब लोग वर्जित विषयों पर बात करने से बहुत घबरा शरमा नहीं रहे। इधर देश के संसद तथा हिमाचल विधानसभा में कुछ महत्त्वपूर्ण बिल पास हुए हैं, कुछ पर चर्चाएं हुईं, कुछ अधिनियमों में महत्त्वपूर्ण संशोधन हुए... मसलन नया FCA, नया FRA, UCC पर चर्चा, हिमाचल राजस्व अधिनियम के धारा 118 में संशोधन इत्यादि। ये ऐसे कानून व संशोधन हैं जिन से जनजातीय तथा हिमालयी अस्मिता पर सवालिया निशान लग सकते हैं। विडम्बना यह कि यह सब मणिपुर में आदिवासी दंगों की परिघटना के बीचोंबीच हो गया। दो आदिवासी महिलाओं को नंगा घुमाने और मोलेस्टेशन तथा बलात्कार का वीडियो इसी बीच वाईरल किया गया। मणिपुर का मसला सीधे सीधे दो समुदायों के बीच संसाधनों के असमान वितरण को ले कर था। आरक्षण, ट्राईबल लेंड रेवेन्यू एक्ट और पहाड़ मैदान का मसला भी इन दंगों से परोक्ष रूप से जुड़ा हुआ था। उस से ठीक पहले मध्य प्रदेश में एक आदिवासी के चेहरे पर पेशाब करने की अपमान जनक घटना हुई और इस वीडियो को भी जानबूझ कर वाईरल किया

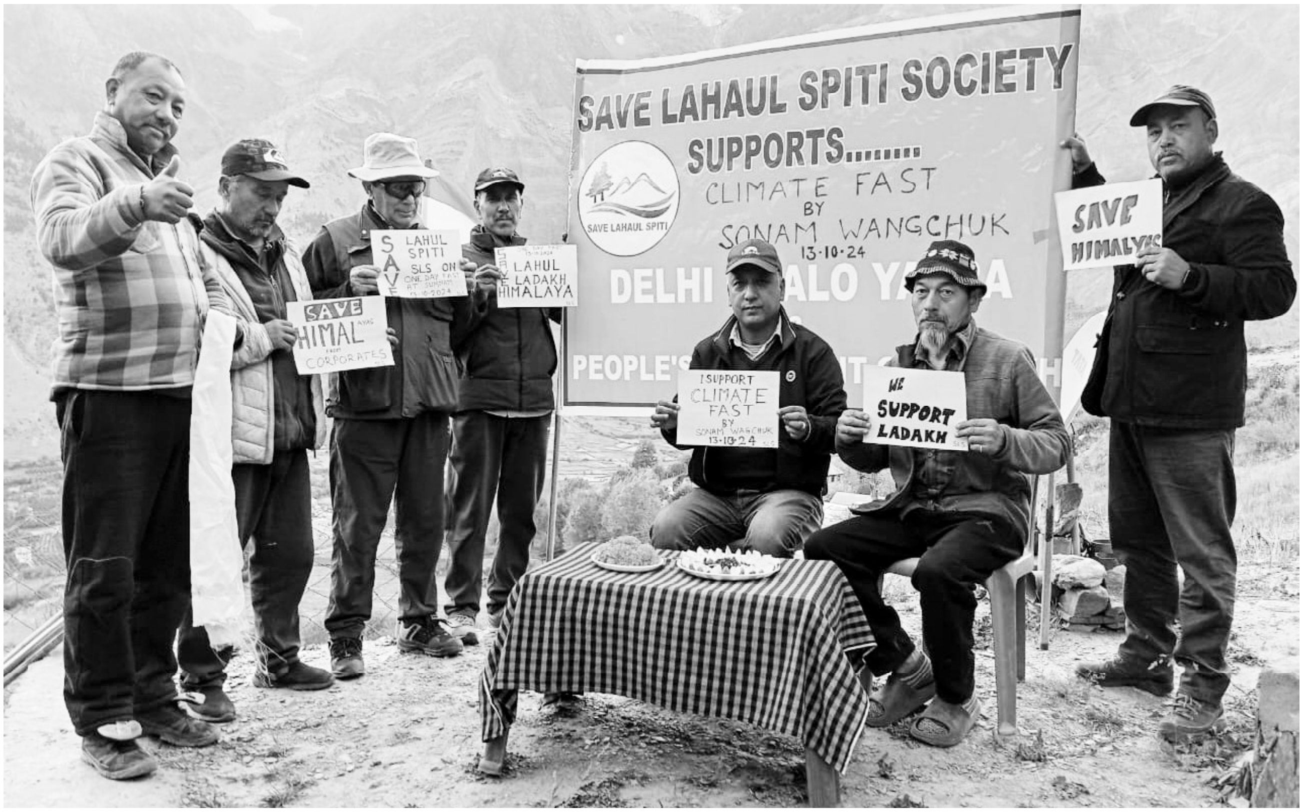

गया। दुर्भाग्य वश हमारा प्रबुद्ध वर्ग इन सम्वेदनाओं और सरोकारों के साथ खुद को रिलेट नहीं कर पाया। सोशल मीडिया पर भी बहुत ही कम लोगों ने इन पर टिप्पणी की। हम न तो आदिवासियों के अपमान पर और न ही आदिवासी विरोधी कानूनों पर दो शब्द बोल पाए। सरकारी नौकरी में आरक्षण तो आऊट्सोर्सिंग तथा लेटेरल एंट्रीज़ के चलते अब लगभग खत्म ही हो चुका है। ध्यान रहे कि हमारी छोटी सी टिप्पणी से देश के आखिरी छोर पर रह रहे आदिवासी का मनोबल बढ़ सकता है। द्रौपदी मुर्मू के राष्ट्रपति बनने पर हम परस्पर बधाई देते नज़र आए, लेकिन ऐसे अश्लील, अन्यायपूर्ण एवम् अपमानजनक मुद्दों पर हम एक दम से ''अभिजात्य मोड'' पर चले गए। मानो हम ऊँची केटेगरी के लोग हों और इन शर्मनाक घटनाओं का हम से कोई सरोकार ही न था। अपने इस मानसिक द्वैत पर हमें सोचना होगा।

17 मार्च 2024 को 'सेव लाहुल स्पिति' संस्था ने सोनम वङ्चुक् के क्लाईमेट फास्ट के समर्थन में एक दिन का टोकन अनशन रख कर पारिस्थितिकीय संरक्षण के प्रति अपनी संलग्नता दर्शाई। इस अनशन के मुख्य प्रतिभागी लाहुल के कवि अजेय, चित्र कार कृष्णा टशी पल्मो, जन चेतना समिति के अध्यक्ष नवङ् तंबा, सेव लाहुल स्पिति के अध्यक्ष प्रेम कटोच, कोकसर पंचायत के प्रधान सचिन मीरुपा, घुषाल (मनाली) के कवि पवन ठाकुर, कुल्लू के वरिष्ठ लेखक पत्रकार रमेश पठानिया सहित चार युवा छात्र शेरिक शर्मा, छेवङ् छोस्पेल, दिशि मोनसिल, और ढाडोन थे। (30 / 06, 18:08)। इस के अलावा अनशन कर्ताओं की हौसला अफ़ज़ाई के लिए वहाँ कुल्लू और लाहुल के अनेक प्रबुद्ध जन, एक्टिविस्ट, लेखक, समाज सेवी, बौद्ध भिक्षु, मीडिया कर्मी, व्लॉगर, शोधार्थी, फिल्म मेकर और सेवानिवृत्त व कार्यरत सरकारी अधिकारी दिन भर मौजूद रहे। जिन में वीरेंद्र रावल, बलवीर ठाकुर, प्रेमनाथ बौद्ध, पलदन, पद्मा ठिल्ले, केसंग ठाकुर और सुनीता कटोच आदि शामिल थे। इस अवसर पर्यावरण, जल जंगल ज़मीन, आदिवासी अस्मिता, फेमिनिज़्म और स्थानीय स्वशासन आदि विषयों पर अनौपचारिक परिचर्चाएं रखी गईं, जो दिन भर चलीं। प्रतिभागियों ने मौके पर प्लेकार्ड, पोस्टर और स्लोगन लिखे।

जन चेतना समिति की यात्रा

✍ टशि अंगरूप गड़फा

सम एवं विषम वर्षों में
(2015–2023)

चंद्रताल की सफल यात्रा में हमसफर बन कर गैर राजनैतिक जन चेतना समिति सम एवं विषम में अपनी स्थापना (2015–2023) के आठवें वर्ष को पूर्ण कर रही है।

सहज उच्छलन विचारों का अवचेतन मन में,

कुछ कर दिखाने को अपने ज़िले के लिए,

क्योंकि प्यार है, मौहब्बत है अपने इलाके से।

विभिन्न सरकारी पदों से सेवानिवृत्त अधिकारियों की सूझ-बूझ और सकारात्मक विचारों के कारण चिन्तन करने के बाद आपसी संवाद करने के बाद एक निर्णायक फैसला लिया गया कि एक गैर-राजनैतिक संस्था का होना समय की मांग है, जो कि इलाके की प्राचीन सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण के बारे रचनात्मक दृष्टिकोण रख सके। साथ ही इलाके की मूलभूत समस्याओं के बारे विभिन्न विभागों से वांछित सूचनाएं उपलब्ध करा के स्थानीय निकायों, ज़िला प्रशासन और अन्ततः विधायक महोदय के माध्यम से सरकार के सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

अपने सफरनामे में जन चेतना समिति ने अक्तूबर 2019 में देवभूमि कुल्लू के देवसदन में एक संगोष्ठी का आयोजन किया था, जिसमें अधिक संख्या में सेवानिवृत्त बुद्धिजीवियों और समाज के दूसरे वर्ग के लोगों ने अपनी भागीदारी सुनिश्चित की थी। इस कड़ी में समिति ने इस वर्ष जून 11, 2023 को ज़िला मुख्यालय केलंग में एक सेमिनार का आयोजन किया, जिसमें लगभग 400 लोगों ने अपनी गरिमामय उपस्थिति दर्ज की।

विशेषकर महिलाओं की भागीदारी प्रशंसनीय रही।

ज़िले के विधायक श्री रवि ठाकुर मुख्य अतिथि के रूप में सेमिनार में उपस्थित रहे। इसके अतिरिक्त प्रशासनिक सेवा के शीर्षस्थ पद से सेवानिवृत्त श्री शाम सिंह कूपर (आइ. ए.एस. मुख्य सचिव जम्मू कश्मीर) तथा डॉ. बी.एस. रावल सेवानिवृत्त उप-निदेशक, एड्स कंट्रोल सोसाइटी हिमाचल प्रदेश तथा वयोवृद्ध अध्यापक आदरणीय श्री छाया राम जी ने सेमिनार में अपने-अपने विषयों पर विस्तारपूर्वक जानकारी दी। सर्वप्रथम श्री छायाराम जी ने संयुक्त परिवार के गुण व दोषों के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। उन के अनुसार आज के वर्तमान समाज में जब लोगों की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई है और साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ है। इन हालातों में यदि व्यापक दृष्टिकोण को अपनाते हुए संयुक्त रूप से जीवन की गाड़ी को आगे ले जाने का प्रयास किया जाए तो इस से संयुक्त परिवार को अधिक बल मिलेगा क्योंकि इससे आपसी प्रेमभाव बढ़ने की हर संभव सम्भावना रहेगी।

श्री शामसिंह कपूर जी ने नौजवानों का आह्वान करते हुए स्पष्ट रूप से इस बात का ज़िक्र किया कि आज के इस वैज्ञानिक युग में नौजवानों को ईमानदारी से कठिन परिश्रम करके अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होना चाहिए। उनके अनुसार, नौजवानों को तब तक संघर्षरत रहना चाहिए जब

तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो। जीवन की दौड़ में गुणात्मक शिक्षा के महत्त्व को समझाते हुए अपने-अपने क्षेत्र में पारंगति (एक्सीलैंस) को पाना जीवन का ध्येय होना चाहिए। कपूर जी के अुनसार ईमानदारी और कठिन परिश्रम के बिना लक्ष्य को हासिल करना कठिन ही नहीं बल्कि कभी-कभार असम्भव भी हो जाता है।

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास करता है। इसका वर्णन करते हुए डॉ. रावल जी ने जीवन में स्वस्थ रहने के लिए जीवन शैली को संतुलित रखने के बारे में अधिक बल दिया। उन के अनुसार वर्तमान में ज़िले के अस्पतालों में चिकित्सकों की कमी के कारण लोगों को वांच्छित स्वास्थ्य सुविधाएं मिलना कठिन सा हो गया है। विशेषकर ज़िला अस्पताल केलंग में विशेषज्ञ चिकित्सकों की कमी के कारण स्थिति और अधिक खराब हो जाती है। उन्होंने विधायक महोदय से इस संवेदनशील समस्या का समय रहते समाधान करने के लिए आग्रह किया।

पर्यावरण से जुड़े श्री विक्रम कटोच ने इको-टूरिज़्म के बारे जानकारी देते हुए इस क्षेत्र में सम्भावनाएं ढूंढने पर बल दिया। उनके अनुसार इलाके में पर्यटक स्थलों की बहुतायत है, इसलिए उन स्थलों के बारे विस्तृत जानकारी पर्यटकों को उपलब्ध की जानी चाहिए। अटल टनल के खुल जाने के बाद पर्यटकों की आवाजाही में निरंतर वृद्धि हो रही है। अतः स्थानीय लोगों को ज़िला प्रशासन, महिला मण्डल और युवक मण्डलों के साथ मिलकर संयुक्त रूप से पर्यावरण को बचाने की दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता समय की मांग है।

श्रीमती सुनीता कटोच ने महिलाओं की सामाजिक और राजनैतिक सहभागिता के ऊपर गम्भीरता से विचार करने का आह्वान किया क्योंकि उन के अनुसार आज 21वीं शताब्दी में महिलाओं का जीवन के हर क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान मिल रहा है और उनकी सहभागिता बिना जीवन के इस दौर में आगे बढ़ना कुछ हद तक कठिन सा हो जाता है। उनके अनुसार महिला मण्डलों के गठन के बाद हर क्षेत्र में महिलाओं का योगदान मिल रहा है। सुनीता जी ने महिलाओं को सम्पत्ति के अधिकार दिए जाने की पैरवी की है। इसके अलावा उन का मत है कि महिलाओं को राजनैतिक क्षेत्र में भी बढ़-चढ़ कर भाग लेना चाहिए।

रिग्ज़िन हयरपा ने लाहुल की प्राचीन संस्कृति का वर्णन करते हुए बहुमूल्य धरोहरों को बचाने का आह्वान किया। इसके अतिरिक्त मैगा हाइडल प्राजेक्ट्स के दूरगामी दुष्परिणाम का ज़िक्र किया क्योंकि उन के अनुसार इन विशाल परियोजनाओं का इलाके के पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ने की सम्भावना है।

मुख्य अतिथि श्री रवि ठाकुर अपने सम्बोधन में जन चेतना समिति का सेमिनार के आयोजन के लिए धन्यवाद किया। विधायक महोदय ने विभिन्न वक्ताओं के विचारों से सहमति प्रकट करते हुए आग्रह किया कि इलाके के पर्यावरण को बचाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सजग रहने की आवश्यकता है। उन्होंने मैगा हाइडल प्रोजक्ट्स का विरोध करते हुए माइक्रो हाइड्रो प्राजेक्ट्स की पैरवी की है। महिलाओं के सशक्तीकरण के साथ इलाके में उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं के बारे में भी विधायक महोदय ने चर्चा की तथा अस्पतालों में रिक्त पड़े चिकित्सकों की नियुक्ति करने का आश्वासन दिया ताकि लोगों को स्वास्थ्य की मूलभूत सुविधाएं मिल सके।

अंत में श्री रंजीत क्रोफा ने सेमिनार में उपस्थिति सभी मेहमानों का समिति की तरफ से आभार प्रकट किया और भविष्य में भी अधिक संख्या में ऐसे कार्यक्रमों में भागीदारी सुनिश्चित करने की अपील की।

संपर्क :
मो. : 9418488801

✍ सुरिन्दर 'सूरी'

चार्ली हब्दोऊ वरका